आत्मा पूजा भाग-१

१ उपनिषदों की परंपरा व ध्यान के रहस्य

ओम्। तस्य निश्चितनं ध्यानम।

ओम्। उसका निरंतर स्मरण ही ध्यान है।

इसके पूर्व कि हम अज्ञात में उतरें, थोड़ी सी बातें समझ लेनी आवश्यक हैं। अज्ञात ही उपनिषदों का संदेश। जो मूल है, जो सबसे महत्वपूर्ण है, वह सदैव ही अज्ञात है। जिसको हम जानते हैं, वह बहुत ही ऊपरी है। इसलिए हमें थोड़ी सी बातें ठीक से समझ लेना चाहिए, इसके पहले कि हम अज्ञात में उतरें। ये तीन शब्द–ज्ञात, अज्ञात, अज्ञेय समझ लेने जरूरी है सर्वप्रथम, क्योंकि उपनिषद अज्ञात से संबंधित हैं केवल प्रारंभ की भांति। वे समाप्त होते हैं अज्ञेय में। ज्ञात की भूमि विज्ञान बन जाती है; अज्ञात–दर्शनशास्त्र या तत्वमीमांसा; और अज्ञेय है धर्म से संबंधित।

दर्शनशास्त्र ज्ञात व अज्ञात में, विज्ञान व धर्म के बीच एक कड़ी है। दर्शनशास्त्र पूर्णत: अज्ञात से संबंधित है। जैसे ही कुछ भी जान लिया जाता है वह विज्ञान का हिस्सा हो जाता है और वह फिर फिलॉसाफी का हिस्सा नहीं रहता। इसलिए विज्ञान जितना बढ़ता जाता है, उतना ही दर्शनशास्त्र आगे बढ़ा दिया जाता है। जो भी जान लिया जाता है विज्ञान का हो जाता है; और दर्शनशास्त्र विज्ञान व धर्म के मध्य बीच की कड़ी है। इसलिए विज्ञान जितनी तरक्की करता है, दर्शनशास्त्र को उतना ही आगे बढ़ना पड़ता है; क्योंकि उसका संबंध केवल अज्ञात से ही है। परन्तु जितना दर्शनशास्त्र आगे बढ़ाया जाता है, उतना ही धर्म को भी आगे बढ़ना पड़ता है; क्योंकि मूलत: धर्म अज्ञेय से संबंधित है।

उपनिषद अज्ञात से प्रारंभ होते हैं, और वे अज्ञेय पर समाप्त होते हैं। और इस तरह सारी गलतफहमी खड़ी होती है। प्रोफेसर रानाडे ने उपनिषदों के दर्शन पर एक बहुत गहन पुस्तक लिखी है, परन्तु वह प्रारंभ ही बनी रहती है। वह उपनिषदों की गहरी घाटी में प्रवेश नहीं कर सकती; क्योंकि वह दार्शनिक ही रहती है। उपनिषदों की शुरुआत दर्शनशास्त्र से होती है, परन्तु वह मात्र एक शुरुआत ही है। वे धर्म में समाप्त होते हैं, अज्ञेय में समाप्त होते हैं। और जब मैं कहता हूं अज्ञेय, तो मेरा तात्पर्य है वह जो कि कभी जाना नहीं जा सकता।

कुछ भी प्रयत्न हो, कितना भी हम प्रयास करें, जैसे ही हम कुछ जानते हैं, वह विज्ञान का हिस्सा हो जाता है। जिस क्षण भी हम कुछ अज्ञात महसूस करते हैं, वह दर्शनशास्त्र का हिस्सा हो जाता है। जिस क्षण हम अज्ञेय का सामना करते हैं, केवल तभी वह धर्म होता है। जब मैं कहता हूं अज्ञेय, तो मेरा आशय है उससे जिसे कभी जाना नहीं जा सकता; परन्तु उसका सामना हो सकता है, उसे अनुभव किया जा सकता है। उसे जीया भी जा सकता है। हम उसके आमने-सामने हो सकते हैं। उसका साक्षात्कार हो सकता है, परन्तु फिर भी वह अज्ञेय ही रहता है। केवल इतना ही अनुभव होता है कि अब हम एक गंभीर रहस्य में हैं, जिसे समझा नहीं जा सकता। इसलिए इसके पूर्व कि हम इस रहस्य में उतरें, कुछ सूत्र समझ लेने चाहिए अन्यथा कोई प्रवेश संभव नहीं होगा।

पहली बात तो यह है हम कैसे सुनते हैं; क्योंकि सुनने के भी कई आयाम होते हैं। आप अपने बुद्धि से अपने तर्क से सुन सकते हैं। यह एक तरीका है सुनने का, जो कि बहुत सामान्य है, बहुत सरल है और

बहुत उथला, क्योंकि तर्क के साथ आप सदैव या तो बचाव करने में लगे होते हैं या हमला करने में। तर्क के साथ आप सदैव लड़ते हुए होते हैं। इसलिए जब कभी कोई कुछ भी तर्क से समझने की कोशिश करता है, वह उससे लड़ता है; केवल एक परिचय हो सकता है। गहन अर्थ तो खा जाने वाला है, क्योंकि गहन अर्थ के लिए बहुत सहानुभूति के साथ सुनना अनिवार्य है। तर्क कभी भी सहानुभूति के साथ नहीं सुन सकता। वह तो बहुत तार्किक पृष्ठभूमि से सुनता है। वह कभी प्रेम से तो सुन ही नहीं सकता; वह तो असंभव है। इसलिए तर्क से सुनना ठीक है यदि तुम गणित समझने की कोशिश में हो, यदि तुम तर्कशास्त्र सीख रहे हो, और यदि तुम कोई ऐसी बात या विधि सीख रहे हो, जो पूरी तरह बुद्धिगत हो।

अगर तुमने कविता को भी तर्क से सुनो, तो तुम फिर अंधे हो जाओगे। यह ऐसा ही है जैसे कि कोई अपने कान से देखने का प्रयत्न करे अथवा अपनी आंखों से सुनने का प्रयत्न करे! तुम तर्क से कविता को नहीं समझ सकते। इसलिए एक गहन समझ भी होती है या दूसरी तरह की समझ भी होती है, जो कि तर्क से नहीं होती बल्कि होती है प्रेम से, अनुभूति से, भावना से, हृदय से।

तर्क सदैव ही द्वंद्व में होता है। तर्क कभी अपने में किसी भी चीज को आसानी से नहीं गुजरने देता। तर्क को हराया जाना चाहिए, केवल तभी कुछ भीतर प्रवेश कर सकता है। यह बुद्धि का एक सुरक्षा का इंतजाम है, यह अपने को बचाने की एक विधि है, एक सुरक्षा का साधन। यह हर क्षण सावधान रहता है, बिना उस के जाने कुछ भी गुजर नहीं सकता; और कुछ भी भीतर नहीं जा सकता बिना तर्क को पछाड़े। और अगर तर्क हार भी जाए, तो भी वह चीज आपके हृदय तक नहीं जा सकती, क्योंकि हार में आप सहानुभूतिपूर्ण नहीं हो सकते।

श्रवण का दूसरा आयाम है हृदय के द्वारा, भावना के द्वारा। कोई संगीत सुन रहा है, तब किसी विश्लेषण की आवश्यकता नहीं है। सच ही, यदि आप एक आलोचक हैं तो आप कभी संगीत नहीं समझ पाएंगे। हां, हो सकता है कि आप उसका गणित, उसकी छंद रचना, भाषा आदि सब कुछ संगीत के बारे में समझ जाए, परन्तु संगीत को नहीं समझ पाएंगे, क्योंकि संगीत की विवेचना नहीं की जा सकती। वह तो समग्र है। वह एक समग्रता है। यदि तुम विवेचना करने को एक क्षण भी ठहरे तो तुमने बहुत कुछ खो दिया। वह एक बहती हुई समग्रता है। हां, कागजी संगीत की विवेचना हो सकती है, परन्तु सच्चे संगीत की विवेचना कभी भी नहीं हो सकती, जब कि वह चल रहा हो। इसलिए आप अलग खड़े हो सकते, तुम दर्शक नहीं हो सकते; तुम्हें तो उसमें भागीदार होना पड़ता है। यदि तुम उसमें भाग लेते हो, तभी तुम उसे समझ पाते हो।

अतएव भावना में समझने का मार्ग हमारे स्वयं के भाग लेने से होकर आता है। आप दर्शन नहीं हो सकते। आप बाहर खड़े नहीं रह सकते। आप संगीत को एक वस्तु नहीं बना सकते। तुम्हें तो उसके हाथ बहना होता है; तुम्हें तो उसकी गहनता में पूर्णतः डूब जाना होता है। ऐसे क्षण आएंगे जब कि तुम नहीं होओगे और वहां केवल संगीत ही होगा। वे क्षण शिखर के क्षण होंगे; वे क्षण ही संगती के क्षण होंगे। तब तुम्हारे भीतर गहरे में कुछ प्रवेश कर जाता है। यह श्रवण का गहन तरीका है, पर फिर भी सर्वाधिक गहन नहीं। पहला ढंग है तर्क के द्वारा–बुद्धिगत; दूसरा है अनुभूति के द्वारा–भावात्मक; तीसरा है स्वरूप के द्वारा–अस्तित्वगत। जब आप अपनी बुद्धि से सुन रहे हैं, आप अपने स्वरूप के एक हिस्से से सुन रहे हैं। फिर जब आप अपनी भावना के द्वारा सुन रहे हैं, तब फिर आप अपने स्वरूप के एक हिस्से से ही सुन रहे हैं। तृतीय, सर्वाधिक गहन, श्रवण का सबसे अधिक प्रामाणिक ढंग है आपकी समग्रता–शरीर, मन, आत्मा सब मिलकर–एक एकत्व। यदि आप श्रवण से इस तृतीय ढंग को समझ लें, तभी आप उपनिषदों के रहस्य में प्रवेश कर पाएंगे। इस तृतीय श्रवण के लिए जो परंपरागत विधि है, वह है–श्रद्धा। अतएव आप विभाजन कर सकते हैं: बुद्धि के द्वारा समझने के लिए विधि है संशय की, शंका की; भावना के द्वारा विधि है प्रेम, सहानुभूति; परन्तु

स्वरूप के द्वारा विधि है श्रद्धा; क्योंकि यदि आप अज्ञात में प्रवेश कर रहे हैं। तो आप शंका कैसे कर सकते हैं? आप ज्ञात के प्रति संदेह कर सकते हैं। जिसे आप बिलकुल नहीं जानते, उसके प्रति संदेह भी कैसे किया जा सकता है? संदेह ठीक है यदि वह ज्ञात से संबंधित है। अज्ञात से संदेह असंभव ही है। आप अज्ञात को प्रेम भी कैसे कर सकते हैं? आप ज्ञात को ही प्रेम कर सकते हैं। आप अज्ञात को प्रेम नहीं कर सकते; आप अज्ञात से कोई संबंध स्थापित नहीं कर सकते। यह संबंध असंभव है।

आप उससे संबंधित नहीं हो सकती हैं; आप उसमें घुलमिल सकते हैं—वह दूसरी बात है; परन्तु आप उससे संबंधित नहीं हो सकते। आप उसके प्रति समर्पित हो सकते हैं, पर संबंधित नहीं। और समर्पण संबंध नहीं है। वह संबंध जरा भी नहीं है। वह तो मात्र दो का, द्वैत का घुलमिल जाना है। अतएव बुद्धि के साथ द्वैत होता है। आप दूसरे के साथ संघर्ष रत होते हैं। परन्तु स्वरूप के साथ द्वैत तिरोहित हो जाता है। न तो आप संघर्ष में होते हैं और न प्रेम में—आप जरा भी जुड़े नहीं होते। इस तीसरे को परंपरा के अनुसार श्रद्धा, फेथ कहते हैं। और जहां तक अज्ञात का संबंध है, श्रद्धा ही कुंजी है।

यदि कोई कहता है, मैं कैसे विश्वास करूं? तब वह समझ नहीं रहा है। तब वह फिर बिंदु को चूक रहा है। श्रद्धा विश्वास फिर एक बुद्धिगत बात है। आप विश्वास कर सकते हैं, आप विश्वास नहीं भी कर सकते हैं। आप विश्वास कर सकते हैं, क्योंकि आपके पास विश्वास करने के लिए तर्क हैं। आप विश्वास नहीं भी कर सकते हैं, क्योंकि आपके पास अविश्वास करने के लिए तर्क है। विश्वास तर्क से ज्यादा गहन कभी नहीं है। इसलिए आस्तिक, नास्तिक, विश्वास ही उथली सतह के लोग हैं। श्रद्धा विश्वास नहीं है, क्योंकि अज्ञात के लिए ऐसा कुछ भी नहीं है, जो कि पक्ष अथवा विपक्ष में हो।

न तो आप विश्वास कर सकते हैं, और न अविश्वास कर सकते हैं। तो फिर क्या करने के लिए बाकी रहा? या तो आप उसके प्रति खुले हो सकते हैं या बंद रह सकते हैं। यह विश्वास अथवा अविश्वास का प्रश्न ही नहीं है। यह केवल उसके प्रति खुले अथवा बंद रहने का प्रश्न है। यदि तुम्हें श्रद्धा है, तो तुम खुले हो। यदि तुम्हें श्रद्धा नहीं है, तो तुम बंद रहते हो। यह तो मात्र एक कुंजी है। यदि आप अज्ञात के प्रति खुलना चाहे, तो आपको श्रद्धा होनी चाहिए। यदि आप उसके प्रति खुले, रहना नहीं चाहते, तो आप बंद रह सकते हैं; परन्तु कोई भी आपके अलावा नहीं चूक रहा है। कोई भी इससे नुकसान को प्राप्त नहीं हुआ सिवा आपके। आप ही बंद रह गए एक बीज की भांति।

एक बीज को टूटना होता है—मरना होता है। केवल तभी वृक्ष पैदा होता है। परन्तु बीज ने वृक्ष को कभी भी नहीं जाना। बीज की मृत्यु केवल श्रद्धा में ही हो सकती है। वृक्ष अज्ञात है और बीज कभी भी वृक्ष से नहीं मिल पाएगा। बीज भय के कारण, मृत्यु के भय के कारण बंद रह सकता है। तब बीज बीज ही रह जाएगा और आखिर में मर जाएगा, बिना दुबारा जन्मे। लेकिन यदि बीज श्रद्धापूर्वक मर जाए, ताकि अज्ञात उसकी मृत्यु में से जन्म ले सके, तभी केवल वह खुल सकता है। एक तरह से वह मर जाता है, परन्तु एक तरह से वह दुबारा जन्म पाता है—बहुत बड़े रहस्यों में। जन्म पाता है ऊंचे जीवन में। यह घटना श्रद्धा में घटती है। इसलिए यह विश्वास नहीं है। इसे कभी भी विश्वास समझने की नासमझी न करें। यह भावना भी नहीं है। यह दोनों से ज्यादा गहरी है। यह आपकी समग्रता है।

अतएव कैसे कोई अपनी समग्रता में सुने—बिना बुद्धि के दुराग्रह में अटके और बिना भाव के सहमत हुए अथवा सहानुभूतिपूर्ण हुए, वरन अपने स्वरूप की समग्रता में? कैसे यह समग्रता कार्य करती है? क्योंकि हम तो केवल अलग-अलग अंगों का ही काम जानते हैं। हम तो नहीं जानते कि समग्रता कैसे कार्य करती है। हमें मात्र हिस्सों का ही पता है—यह अंग, यह हिस्सा काम कर रहा है; वह अंग काम कर रहा है। बुद्धि काम कर रही है; हृदय काम कर रहा है; पांव चल रहे हैं, आंखें देख रही हैं। हम केवल अंगों को जानते

हैं। समग्रता कैसे काम करती है? समग्रता काम करती है अपनी गहनता निष्क्रियता में। कुछ भी सक्रिय नहीं; सब कुछ चुप है। आप कुछ भी नहीं कर रहे हैं। आप सिर्फ यहां है, मात्र उपस्थित और द्वार खुल जाता है। केवल तभी आप समझ पाएंगे कि उपनिषदों का क्या संदेश है। इसलिए खाली उपस्थिति चाहिए; अपनी तरफ से कुछ भी नहीं करना, कोई काम नहीं। यही मतलब है समग्र रूप से तत्पर होने का—मात्र उपस्थिति।

मैं इसे थोड़ा और स्पष्ट कर दूं कि मात्र उपस्थिति से मेरा क्या तात्पर्य है। यदि किसी के प्यार में पड़े हैं तो कभी ऐसे क्षण आते हैं, जब कि आप कुछ भी नहीं कर रहे होते हैं। आप मात्र उपस्थिति होते हैं अपने प्रेम या प्रेमिका के पास—मात्र उपस्थित—बिलकुल मौन, यहां तक कि एक दूसरे को प्रेम भी नहीं कर रहे होते हैं—मात्र उपस्थित। तब एक विचित्र घटना घटती है।

साधारणत: हमारा अस्तित्व रेखा में चलता है। हम एक रेखा में जीते हैं, एक कड़ी में जीते हैं। मेरा अतीत, मेरा वर्तमान, मेरा भविष्य—यह एक रेखा है। आप एक रास्ते पर चलते हैं, मैं एक रास्ते पर चलता हूं। हमारे अपने रास्ते हैं—रेखाबद्ध रास्ते। वास्तव में, हम कभी नहीं मिलते। हम समानांतर रेखाएं हैं, जिनका मिलना संभव नहीं। यहां तक कि यदि हम बहुत लोगों से घिरे हों तो भी कोई किसी से मिलता नहीं; क्योंकि तुम अपने मार्ग पर हो और मैं अपने मार्ग पर। तुम अपने अतीत से आए हो और मैं अपने अतीत से। मेरा वर्तमान मेरे अतीत से निकला है, तुम्हारा वर्तमान तुम्हारे अतीत से निकला है। तुम्हारा भविष्य तुम्हारे अतीत व वर्तमान से अदभुत परिणाम होगा और मेरा भविष्य मेरे वर्तमान का परिणाम होगा।

अतएव हम मार्ग पर चलते हैं—रेखा बद्ध मार्गों पर, एक सीधी रेखा वाले मार्गों पर। वहां कोई मिलन संभव नहीं है। केवल प्रेम मिलते हैं, क्योंकि अचानक जब तुम किसी के पास मात्र उपस्थित होते हो; समय का दूसरा ही आयाम पैदा होता है। आप दोनों एक क्षण में मिलते हैं और यह क्षण न आपके प्रेमी का है और न आपका। यह कुछ ऐसा है, जो नया है। यह न तो आपे अतीत से आया है और न आपके प्रेम के अतीत से। समय एक भिन्न ही आयाम में मुड़ जाता है। यह रेखा बद्ध नहीं है; अतीत से भविष्य में जाता हुआ नहीं, वरन एक का वर्तमान दूसरे के वर्तमान में; और दो वर्तमान क्षणों का मिलन होता है—एक बिलकुल ही नया आयाम। इस आयाम को शाश्वतता का आयाम कहते हैं। प्रेमियों ने कहा है कि प्यार का एक क्षण भी अपने में एक शाश्वतता है। वह अंतहीन है; कभी खतम नहीं होता है। उसका कोई भविष्य नहीं है, उसका कोई अतीत नहीं है। वह तो मात्र उपस्थित है—अभी और यही। यही मेरा तात्पर्य है जब कि मैं कहता हूं कि यदि आप न तो अपने अतीत के साथ और न ही भविष्य के साथ, बल्कि ऐसे एक पूर्ण समग्रता के साथ कि वर्तमान क्षण में केवल आपकी उपस्थिति भर हो—यदि आप शांति से सुन सके, अक्रिया में, यदि आप केवल उपस्थित हो सके अभी और यहां, तो केवल यह क्षण ही पर्याप्त है, जिसमें एक नया आयाम खुलता है और उपनिषदों का संदेश केवल उसी आयाम में भीतर प्रवेश कर सकता है।

यही अर्थ है जबकि यह कहा जाता है कि उपनिषदों का संदेश शाश्वत है। इसका अर्थ स्थायी नहीं है। इसका इतना ही अर्थ है कि यह समय का एक बिलकुल नया आयाम है, जिसमें कि कोई भविष्य व कोई अतीत नहीं होता। इसलिए आपको एक दूसरे ढंग से चलना पड़ेगा—आपके आंतरिक समय में। और आंतरिक परिवर्तन के साथ, शब्द एक दूसरी ही आकृति लेना शुरू करते हैं, और एक भिन्न महत्व उनमें से उत्पन्न होता है।

हम शब्द वही काम में लेते हैं। प्रत्येक वही शब्द काम में लेता है, परन्तु अलग-अलग मन के साथ शब्द के अर्थ भी अलग-अलग हो जाते हैं। उदाहरण के लिए एक डाक्टर एक रोगी से पूछता है—कैसे हैं आप? सड़क पर किसी के आकस्मिक मिलन पर आप पूछते हैं—कैसे हैं आप? एक प्रेमी अपनी प्रेयसी से पूछता है—कैसी हैं आप? शब्द तो वही हैं, परन्तु क्या अर्थ भी वही है? क्या जब एक डाक्टर अपने रोगी से पूछता

है–कैसे हैं आप? और एक प्रेमी अपनी प्रेमिका से पूछता है–कैसी हैं आप? तो क्या बात एक ही है? एक बिलकुल नई बात पैदा होती है तब, एक महत्वपूर्ण बात।

उपनिषदों को साधारण ढंग से नहीं समझा जा सकता। नहीं कारण है कि शास्त्री सारी बात ही चूक जाते हैं। भाषाशास्त्री भी सब कुछ चूक जाते हैं। पंडित भी सारी बात चूक जाते हैं। वे भाषा के साथ, व्याकरण के साथ वे उस सबके साथ जो कुछ भी महत्वपूर्ण है मेहनत करते हैं, परन्तु फिर चूक जाते हैं। क्यों चूक जाते हैं वे? यह चूकना इसलिए होता है, चूंकि उनका आंतरिक समय रेखा में चलने वाला होता है। वे अपनी बुद्धि से कार्य कर रहे होते, न कि अपने स्वरूप से। वास्तव में, वे उपनिषदों पर काम कर रहे होते हैं; वे उपनिषदों को अपने ऊपर काम नहीं करने देते।

यही तात्पर्य है मेरा जब मैं मात्र उपस्थित होने के लिए कहता हूं–तब ही उपनिषद आप पर काम कर सकते हैं। और वह एक रूपांतरण हो सकता है। वह आपके अस्तित्व के दूसरे तलों में ले जा सकता है। इसलिए पहली बात जो याद रखने योग्य है वह है कैसे सुनना–मात्र आपकी उपस्थिति से–अपनी पूरी श्रद्धा से उनमें डूब जाना। तर्क से न लड़े। भावना को महसूस न करें–बस, अपने स्वरूप के साथ एक हो जाए। यही कुंजी है–यही सबसे पहली बात है।

दूसरी बात जो है वह है कि उपनिषद भी शब्दों का उपयोग करते हैं। उन्हें उपयोग करना पड़ता है, परन्तु वे स्वयं मौन के लिए हैं। वे बात करते हैं और वे लगातार बात करते हैं, परन्तु वे मौन के लिए बात करते हैं। ऐसा प्रयत्न बेकार है–विरोधी है, विपरीत है, असंगत है–परन्तु फिर भी केवल इसी तरह से एकमात्र संभावना है। यही एकमात्र रास्ता है। यहां तक कि मुझे भी यदि आपको मौन के लिए उत्प्रेरित करना हो, तो मुझे भी शब्द ही काम में लेने पड़ते हैं। उपनिषद शब्द काम में लेते हैं, परन्तु वे शब्दों के पूरे खिलाफ हैं; वे उनके लिए हैं ही नहीं यह बात लगातार याद रखना है अन्यथा बहुत संभव है कि हम शब्दों में खो जाए।

शब्दों का अपना जादू है; उनका अपना चुंबकीय पन है। और प्रत्येक शब्द अपनी श्रंखला निर्मित करता है। उपन्यासकार जानते हैं; कवि जानते हैं। वे कहते हैं कि कई बार ऐसा होता है कि वे केवल अपने उपन्यास को प्रारंभ करते हैं। जब वह समाप्त होता है, वे नहीं कह सकते कि उन्होंने उसे समाप्त किया है। सचमुच, शब्दों की अपनी एक श्रंखला है। वे अपनी तरह से जीने लगते हैं और आगे चलने लगते हैं, परन्तु मैं कभी समाप्त नहीं करता। और कई बार मेरे चरित्र ऐसी बातें कहते हैं, जो मैंने कभी नहीं चाहा कि वे कहें! वे अपना एक अलग जीवन लेना प्रारंभ करते हैं और वे अपने रास्ते चले जाते हैं। वे स्वतंत्रता हो जाते हैं लेखक से, कवि से। वे ऐसे स्वतंत्र हो जाते हैं जैसे कि बच्चे अपने माता-पिता से हो जाते हैं। उनकी अपनी एक जिंदगी होती है।

इसलिए शब्दों का अपना तर्क होता है। एक शब्द का उपयोग करें और आप एक रास्ते पर होंगे; और शब्द बहुत सी बातें पैदा करेगा। शब्द स्वयं बहुत सी बातें उत्पन्न करेगा और कोई भी उनमें खो सकता है। परन्तु उपनिषद शब्दों के लिए नहीं हैं। इसलिए वे जितने कम हो सकें उतने कम शब्द काम में लेते हैं। उनका संदेह इतना टेलीग्राफिक है कि एक भी शब्द बेकार काम में नहीं लिया गया है। उपनिषद अधिक से अधिक संक्षिप्त सूत्र हैं। एक शब्द भी निरर्थक नहीं है। और शब्द भी सम्मोहन की धारा पैदा कर सकते हैं। परन्तु शब्दों को तो काम में लेना ही पड़ेगा। इसलिए, ध्यान रहे कि आप मात्र शब्दों में ही न खो जाएं।

शब्दों का अर्थ कुछ भिन्न बात है; और उससे भी ज्यादा अच्छा होगा यदि कहें कि उनका महत्व। उपनिषद शब्द को चिन्हों, इशारों की भांति काम में लेते हैं। वे शब्दों का उपयोग कुछ दिखाने के लिए करते हैं न कि कुछ कहने के लिए। आप अपने शब्दों से कुछ कह सकते हैं, आप अपने शब्दों से कुछ दिखला सकते हैं। जब आप कुछ दिखला रहे हैं, तो शब्द से परे जाना पड़ेगा, शब्द को भूल जाना पड़ेगा। अन्यथा शब्द ही

आंखों में तैरने लगते हैं और वे सारे दर्शन को बिगाड़ देते हैं। हम शब्दों का उपयोग करते हैं, परन्तु सावधानी के साथ। सदैव स्मरण रखें कि मात्र अर्थ ही मतलब नहीं है, बल्कि वे इशारे हैं। सांकेतिक रूप से उनका उपयोग किया गया है, जैसे कि उंगली उपयोग चांद की ओर इशारा करने के लिए। उंगली चांद नहीं है, परन्तु कोई चाहे तो उंगली से चिपक सकता है और कह सकता है कि मेरे गुरु ने इसी को चांद बतलाया है! उंगली चांद नहीं है, परन्तु उंगली का दिखलाने के लिए उपयोग किया जा सकता है। शब्द कभी भी सत्य नहीं है; पर शब्दों का उपयोग किया जा सकता है दिखलाने के लिए। इसलिए सदैव याद रखें कि उंगली को भूल जाता है। यदि उंगली ज्यादा महत्व की और ज्यादा कीमती बात हो गई चांद से, तो फिर सारी बात ही विकृत हो जाएगी। इस दूसरे बिंदु को स्मरण रखें। शब्द केवल संकेत हैं किसी उसके, जो कि शब्दहीन है, जो कि मौन है, जो कि पार है, जो कि सबका अतिक्रमण है। इसकी विस्मृति कि शब्द ही वास्तविकता नहीं है, इसने बहुत गड़बड़ पैदा की है।

हजारों-हजारों विवेचनाएं उपलब्ध हैं, परन्तु वे सब शब्द से संबंधित हैं—न कि शब्द रहित वास्तविकता से। वे हजारों-लाखों वर्षों तक वाद-विवाद करते रहते हैं। पंडितों ने बहुत विवाद किया है कि इस शब्द का क्या अर्थ है और उस शब्द का क्या अर्थ है! और इस तरह एक बहुत बड़ा साहित्य निर्मित कर दिया है। उसके अर्थ की इतनी खोज हुई है जो कि पूरी तरह अर्थ हीन है। वे मुख्य बात को ही चूक गए। शब्दों का अर्थ वास्तविकता कभी नहीं था—वे तो केवल संकेत थे, उसके तरफ जो कि शब्दों से बिलकुल ही भिन्न है।

तीसरी बात यह है कि मैं उपनिषदों पर आलोचना करने नहीं जा रहा, क्योंकि आलोचना केवल बुद्धि से संबंधित हो सकती है। मैं तो प्रतिसंवेदन करने जा रहा हूं बजाय आलोचना करने के। प्रतिसंवेदना दूसरी ही चीज है—बिलकुल ही भिन्न बात है। आप एक घाटी में सीटी बजाते हैं अथवा एक गीत गाते हैं अथवा बांसुरी बजाते हैं और वह घाटी प्रतिध्वनि करती है—प्रतिध्वनि करती है—और फिर प्रतिध्वनि करती है। घाटी आलोचना नहीं कर रही, घाटी सिर्फ प्रतिसंवेदना कर रही है। प्रतिसंवेदन एक जीवंत बात है, आलोचना मृत होने वाली है।

मैं उस पर आलोचना नहीं करूंगा। मैं तो मात्र एक घाटी बन जाऊंगा और प्रतिध्वनि करूंगा। इसे समझना कठिन होगा, क्योंकि यहां तक कि प्रतिध्वनि प्रामाणिक भी हो, तो भी आप वही ध्वनि नहीं पकड़ सकेंगे। आपको वही ध्वनि लौटकर प्राप्त नहीं होगी। आपको उसमें कुछ संगति नहीं भी मिले; क्योंकि जब कभी एक घाटी प्रतिसंवेदन करती है, जब कभी वह कुछ भी प्रतिध्वनित करती है, वह प्रतिध्वनि कोई निष्क्रिय प्रतिध्वनि नहीं होती, बल्कि वह क्रियात्मक होती है। घाटी काफी कुछ उसमें, जोड़ देती है। घाटी का अपना स्वभाव काफी कुछ जोड़ देता है। एक भिन्न घाटी भिन्न तरीके से प्रतिध्वनि करेगी। ऐसा ही होना चाहिए। इसलिए जब मैं कुछ कहता हूं, उसका यह अर्थ नहीं होता कि प्रत्येक को वही कहना होगा। यह ऐसा है, जो मेरी घाटी प्रतिध्वनि करती है।

मुझे स्टीवेन की पंक्तियां याद आती हैं, जो कि एक झेन कविता की तरह हैं। बीस आदमी एक पुल को पार कर रहे हैं एक गांव के भीतर अथवा बीस आदमी बीस पुलों को पार कर रहे हैं बीस गांवों में! जब मैं कुछ पढ़ता हूं और मेरी घाटी किसी विशेष ढंग से प्रतिध्वनि करती है, तो वह निष्क्रिय नहीं होती। उस प्रतिध्वनि में मैं भी उपस्थित होता हूं। जब आपकी घाटी फिर से प्रतिध्वनि करेगी, तो वह दूसरी ही बात हो जाएगी। जब मैं एक जीवंत प्रतिसंवेदन कहता हूं, तो मेरा मतलब इससे ही है।

कभी-कभी यह बिलकुल ही असंगत लगे; क्योंकि घाटी उसे एक रूप प्रदान कर देती है, एक अपना ही रंग दे देती है। यह स्वाभाविक है। इसलिए मैं कहता हूं कि आलोचनाएं बड़ी अपराधपूर्ण हैं। केवल प्रतिसंवेदन होने चाहिए, कोई आलोचना नहीं; क्योंकि आलोचक यह महसूस करने लगता है कि जो कुछ वह कह रहा

है, वह पूर्णतः सत्य है। एक आलोचक महसूस करने लगता है कि दूसरी आलोचनाएं गलत हैं, और दूसरों की आलोचनाओं को काटना उसका स्व-आरोपित कर्तव्य है, क्योंकि वह सोचता है कि उसकी आलोचना तभी सही हो सकती है, जबकि दूसरों की आलोचना गलत हो। लेकिन प्रतिसंवेदन के साथ ऐसा नहीं होता; हजारों प्रतिसंवेदन संभव हो सकते हैं। और प्रत्येक प्रतिसंवेदन सही है यदि वह प्रामाणिक है। यदि वह आपकी गहनता से आती है, तो वह सही है।

क्या सही है और क्या गलत है, इसका कोई कुलों निर्णायक नहीं है। यदि कुछ आपके भीतर से आपकी गहनता से आता है, यदि आप उसके साथ एक हो जाते हैं, यदि वह आपके पूर्ण स्वरूप में से झंकृत हो रहा है, तो वह सही है। अन्यथा कितना ही होशियार, व कितना ही तर्कयुक्त क्यों न हो, वह गलत होता है।

यह एक प्रतिसंवेदन होने वाला है। और जब मैं इसे प्रतिसंवेदन कहता हूं, तो यह एक कविता की तरह अधिक और एक फिलॉसाफी की तरह कम होगा। यह कोई पद्धति नहीं होगी। आप पद्धतियां निर्मित नहीं कर सकते प्रतिसंवेदनों से; प्रतिसंवेदन आणविक होते हैं, खंड-खंड। उनमें आंतरिक एकता होती है, परन्तु उस आंतरिक एकता को खोजना इतना आसान नहीं। वह एकता एक टापू, और एक अंतर्देश की तरह होती है। एक टापू, और एक अंतर्देश में एकता होती है और बहुत गहरे, बहुत गहरे समुद्र की गहराई में जमीन एक होती है। यदि यह बात समझ में आ जाए तो कोई आदमी एक टापू नहीं होता। गहरे में, चीजें एक हैं; जितने गहरे आप जाते हैं, उतने ही अधिक आप ऐक्यता को पाते हैं। इसलिए यदि एक प्रतिसंवेदन प्रामाणिक है, तो फिर कोई भी प्रतिसंवेदन जो कि चाहे बिलकुल विरोधी दिखता हो, भिन्न नहीं हो सकता—नाचे गहराई में एकता होगी। परन्तु नीचे गहरे उतरना पड़े। और आलोचनाए बहुत ऊपरी चीजें होती हैं।

इसलिए मैं आपको कोई आलोचना नहीं दे रहा। मैं तो कहूंगा कि इस उपनिषद का क्या अर्थ है। मैं सिर्फ इतना ही कहूंगा कि इस उपनिषद का मेरे लिए, मुझमें क्या अर्थ है। मैं कोई दावा नहीं कर सकता; और जो लोग भी दावा करते हैं, वे अनैतिक लोग हैं। कोई भी नहीं कह सकता कि इस उपनिषद का क्या अर्थ होता है। अधिक से अधिक इतना ही कहा जा सकता है कि इस उपनिषद का मेरे भीतर क्या अर्थ होता है—यह मेरे भीतर कैसे गूंजता है।

ऐसा प्रतिसंवेदन आपके भीतर भी प्रतिसंवेदना उत्पन्न कर सकता है, यदि आप केवल यहां उपस्थित हों। तब जो भी मैं कहूंगा, वह आपके भीतर भी प्रतिध्वनित होगा। और यदि वह प्रतिध्वनित हो, तभी केवल आप उसे समझ करें। इसलिए मात्र एक घाटी की तरह हो जाएं, अपने को छोड़ दें, ताकि आप स्वतंत्रता से प्रतिध्वनि कर सकें। अपने से एक घाटी की भांति ही संबंधित हों बजाय उपनिषद की भाषा के अथवा उसके जो मैं कह रहा हूं। बस, अपने से एक घाटी की तरह संबंधित हों और बाकी सब अपने आप आएगा। किसी तनाव की आवश्यकता नहीं, कोई खिंचे हुए प्रयत्न की जरूरत नहीं मुझे समझने के लिए। वह रुकावट बाधा बन जाएगी। मात्र आराम में हो जाएं। मात्र मौन व अक्रिया में हो और जो भी होता हो उसे अपने में गूंजने दें। वे सारी गुंजारें, झंकारें आपको एक दूसरे ही आयाम में ले जाएगी, एक दूसरे ही दर्शन को ले जाएंगी।

अंतिम बात, मैं न तो हिंदू हूं, न मुसलमान हूं, और न ही ईसाई हूं। मैं एक बेघरबार घुमक्कड़ हूं। मैं उपनिषदों की परंपरा से बाह्य रूप से जुड़ा हुआ नहीं हूं, इसलिए मेरा उपनिषदों में कुछ लगाया हुआ, व्यस्त स्वार्थ नहीं है। जब कोई हिंदू आलोचना करता है अथवा जब भी कोई हिंदू उपनिषदों के बारे में सोचता है, तब उसका उसमें कुछ इनवेस्टमेंट होता है, लगाया हुआ होता है। जब एक मुसलमान उपनिषदों के लिए लिखता है, तो उसके विरोध में उसका कुछ लगाया हुआ होता है। वे दोनों ही सही व प्रामाणिक नहीं हो सकते। यदि कोई हिंदू है, तो वह उपनिषदों के बाबत सच्चा नहीं हो सकता; यदि कोई मुसलमान है, तो वह

भी उपनिषदों के बार में सच्चा नहीं हो सकता। वह झूठा होगा ही। परन्तु यह धोखा इतना सूक्ष्म होता है कि इसका हमें पता ही नहीं चलता।

आदमी अकेला ऐसा प्राणी है जो कि अपने से ही झूठ बोल सकता है और धोखों में जी सकता है। यदि आप हिंदू हैं और उपनिषदों के बारे में सोच रहे हैं, या आप मुसलमान हैं और कुरान के बारे में सोच रहे हैं, अथवा ईसाई हैं और बाइबिल के बारे में सोच रहे हैं, तो आपको कभी पता ही नहीं चलेगा कि आप कभी सच्चे नहीं हो सकते। किसी को किसी का न होना पड़े, केवल तभी प्रतिसंवेदन सच्चा हो सकता है। जुड़ा होना गड़गड़ी करता है और मस्तिष्क को विकृत कर देता है और ऐसी बातें दिखलाता है, जो कि हैं ही नहीं अथवा मना कर देता है उन्हें जो कि हैं। इसलिए मेरे लिए वह मुसीबत नहीं है। आपके लिए भी मेरा सुझाव है कि जब भी आप कुरान पढ़ रहे हों, या उपनिषद सुन रहें हों, अथवा बाइबिल-तो हिंदू न हों, ईसाई न हों या मुसलमान बिलकुल न हों। मात्र होना पर्याप्त है। आप गहरे में उतरने में समर्थ हो सकेंगे। मतों के साथ, सिद्धांतों के साथ, आप कभी खुले नहीं रह सकते। और एक बंद दिमाग समझ के धोखे कर सकता है, लेकिन कभी कुछ समझ नहीं सकता। इसलिए मैं किसी का भी नहीं हूं। और यदि मैं इस उपनिषद के प्रति प्रतिसंवेदन करता हूं। वह केवल इसलिए कि मैं इसके प्रेम में पड़ गया हूं। यह जो सब से छोटा उपनिषद है आत्म-पूजा, यह एक बहुत ही अपूर्व घटना है। इसलिए थोड़ा इस अनोखे उपनिषद के बारे में-कि मैंने क्यों इसको विषय रूप में बोलने के लिए चुना है?

प्रथम-यह सब से छोटा है; यह बिलकुल बीज की तरह है-प्रबल, विशेष-जिसमें सब कुछ भरा हो। प्रत्येक शब्द एक बीज है, जिसमें कि अनंत संभावनाएं हैं। इसलिए आप अनंतकाल के लिए ध्वनि व प्रतिध्वनि पैदा कर सकते हैं, और जितना आप इसके बारे में सोचते हैं उतना ही आप इसे गहरे में जाने देने में मदद करते हैं, व नए-नए अर्थ इसमें से प्रकट होते हैं। ये जो बीज की तरह शब्द हैं, ये गहरे मौन में पाए जाते हैं।

सच ही यह बड़ा अजीब लगता है, परन्तु यह एक तथ्य है। यदि आपके पास बहुत कम कहने के लिए हो, तो ही आप ज्यादा कहेंगे। और यदि आपके पास वास्तव में ही कुछ कहने के लिए है, तो आप उसे कुछ ही पंक्तियों में, कुछ ही शब्दों में-यहां तक कि एक ही शब्द में कह सकते हैं। जितना कम आपको कहना हो, उतने ही अधिक शब्दों का उपयोग आपको करना पड़ेगा। जितना अधिक आपको कहना है, उतने ही कम शब्दों का आपको उपयोग करना होता है।

यह अब मनोवैज्ञानिकों के लिए जानी-मानी बात हो गई है। कि शब्द कुछ बोलने के लिए काम में नहीं लिए जाते, बल्कि कुछ छिपाने के लिए काम में लिए जाते हैं। हम बोलते चले जाते हैं, क्योंकि हमको कुछ छिपाना है। यदि आप कुछ छिपाना चाहते हैं तो आप चुप नहीं रह सकते-क्योंकि आपका चेहरा उसे बोल देगा-आपकी चुप्पी उसे झंकारें कर देगी। अन्य शंकातुर हो सकते हैं कि आप कुछ छिपा रहे हैं। आप शब्दों के द्वारा धोखा दे सकते हैं; मौन के द्वारा आप धोखा नहीं दे सकते।

उपनिषदों के पास वास्तव में ही कुछ कहने के लिए है, इसलिए वे उसे बीज रूप में कहते हैं-सूत्रों में, छोटे-छोटे सूत्रों में। इस उपनिषद में केवल सत्रह सूत्र है। उन्हें आधे पृष्ठ पर लिखा जा सकता है; एक पोस्टकार्ड के एक साइड में ही इस पूरे उपनिषद को लिखा जा सकता है। पर यह एक बहुत ही महत्वपूर्ण संदेश है। इसलिए हम हर एक शब्द बीज को लेंगे और उसके भीतर प्रवेश करने का प्रयत्न करेंगे-एक जीवंत संवेदन में उसके प्रति होने की कोशिश करेंगे। आपके भीतर हो सकता है कुछ तरंगित होने लगे, ऐसा प्रारंभ हो सकता है; क्योंकि ये शब्द बहुत ही प्रबल, शक्ति पूर्ण हैं। इनमें बहुत कुछ भरा है; यदि इनके अणुओं को तोड़ा जा सके, तो बहुत बड़ी तादाद में ऊर्जा निकलेगी। इसलिए खुले रहें; ग्राहक, गहरी श्रद्धा से भरे हुए रहें और इस उपनिषद को अपना काम करने दें।

आत्मा पूजा भाग-१

अब हम आत्म-पूजा उपनिषद में प्रवेश करते हैं।

ओम् ध्यान है इसका सतत स्मरण करना।

ओम्–ओम्–यह शब्द बहुत कीमती है–महत्वपूर्ण है

एक संकेत की भांति, इशारे की तरह वे गुप्त कुंजी की तरह। इसलिए सर्वप्रथम इसे ही खोलें। ओम् में पांच मात्राएं हैं। पहली मात्रा है अ; दूसरी है ओ; तीसरी है म्। ये तीन स्थूल चरण हैं। जब हम ओम् शब्द को बोलते हैं, तो ये तीन अक्षर होते हैं। परन्तु ओम् का उच्चारण करें और अंत में जो म् आता है वह मण्मण्म् गुंजरित होगा। वह आधी मात्रा है–चौथी। तीन स्थूल हैं और सुनी जा सकती हैं। चौथी आधी स्थूल है। यदि आप काफी सजग हैं तो ही यह सुनी जा सकेगी अन्यथा यह खो जाएगी। और पांचवी कभी नहीं सुनी जाती। जब कि ओम् शब्द का गुंजार होता है, तो वह गुंजार ब्रह्म के शून्य में प्रवेश कर जाती है। जबकि ओम् की ध्वनि चली जाती है और ध्वनिशून्यता बच रहती है, वही पांचवीं मात्रा है। आप ओम् का उच्चारण करते हैं, तब अ-ओ-म बड़े स्पष्ट सुनाई पड़ते हैं, तब एक पीछे चला आता मण्मण्म् की आधी मात्रा और तब उसके बाद ध्वनिशून्यता। वही पांचवीं है। यह जो पांचवीं है, केवल इशारा है, बहुत सी चीजों की ओर।

प्रथम, उपनिषदों का जानना है कि मनुष्य की चेतना पांच भागों में बंटी है। हम मोटी-मोटी तीन को जानते हैं–जागरण, स्वप्न गहरी निद्रा। ये तीन मोटे-मोटे चरण है–अ-ओ-म। उपनिषद चतुर्थ को तुरीय कहते हैं। उन्होंने उसका कोई नाम नहीं दिया, क्योंकि वह कुछ बड़ी मात्रा नहीं। चौथा वह है जो कि गहरी नींद के प्रति भी सजग रहता है। यदि आप गहरी निद्रा में थे, गहरी स्वप्नरहित निद्रा मैं, तो सुबह आप कह सकते हैं, मैं गहरी, बहुत गहरी नींद में था। कोई आपके भीतर जागता था और अब स्मरण करता है कि बहुत गहरी स्वप्नरहित नींद थी। एक साक्षी वहां मौजूद था। वह साक्षी ही चौथे के नाम से जाना जाता है। परन्तु उपनिषद कहते हैं कि वह चौथा भी अंतिम नहीं है, क्योंकि साक्षी होना भी अभी अलग होना है। इसलिए जब वह साक्षी भी मिट जाता है, केवल तभी अस्तित्व बचता है बिना साक्षी के–वही पांचवीं है। इसलिए यह ओम् बहुत सी चीजों के लिए चिन्ह है–बहुत सी चीजों के लिए–मनुष्य के पांच शरीरों के लिए। उपनिषद उन्हें इस तरह बांटते हैं–अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानस्य व आनंदमय–पांच कोष हैं–पांच शरीर। यह ओम ब्रह्म का चिन्ह है। यह केवल एक चिन्ह है, लेकिन यह एक संकेत भी है। इसका क्या अर्थ है, जबकि मैं कहता हूं कि यह संकेत भी है?

जब कोई अस्तित्व में गहरे जाता है जड़ों तक, बहुत गहरे, तो वहां विचार नहीं होते। विचार करने वाला भी वहां नहीं होता। विषय-बोध भी वहां नहीं होता, और न कर्ता का बोध ही होता है, परन्तु फिर भी, सब कुछ होता है। उस विचारशून्य, कर्ताशून्य क्षण में, एक ध्वनि सुनाई पड़ती है, वह ध्वनि ओम की ध्वनि से मिलती है–मात्र मिलती है। वह ओम नहीं है; इसीलिए वह मात्र एक संकेत है। हम उसे फिर से उत्पन्न नहीं कर सकते। वह करीब-करीब मिलती-जुलती ध्वनि है। इसलिए वह कितनी ही ध्वनियों का समस्वर है, परन्तु सदैव ही ओम के सबसे अधिक पास है।

मुसलमानों व ईसाइयों ने उसे आमीन की तरह पहचाना है। वह ध्वनि जो कि सुनाई देती है, जब कि सब कुछ खो जाता है और केवल ध्वनि गूंजती रह जाती है ओम् से मिलती-जुलती होती है; वह आमीन से भी मिल सकती है। अंग्रेजी में बहुत से शब्द हैं–ओम्निप्रजेंट, ओम्निशियन्ट, ओम्निपोटेंट–यह ओम्नि मात्र ध्वनि है। वास्तव में ओम्निशियन्ट का अर्थ होता है: वह जिसने कि ओम् को देखा हो, और ओम् सब के लिए ही संकेत है। ओम्निपोटेंट का अर्थ होता है वह जो कि ओम् के साथ एक हो गया है, क्योंकि वही सब से बड़ी संभावना है सारे ब्रह्म की ध्वनि में भी मौजूद है। और वह ध्वनि सब को चारों तरफ से घेरे है, सर्व के ऊपर से बह रही है। ओमनिशियेन्ट, ओम्निप्रजेंट व ओम्निपोटेंट में जो ओम्नि है वह ओम् है। आमीन भी

आत्मा पूजा भाग-१

ओम् है। अलग-अलग साधक, अलग-अलग लोग भिन्न-भिन्न पहचान को पहुंचे हैं। परन्तु वे सब किसी भी प्रकार से ओम् से मिलते-जुलते हैं।

आधुनिक विज्ञान विद्युतकणों को अस्तित्व की आधारभूत इकाई समझता है। परन्तु उपनिषद विद्युतकणों को नहीं, बल्कि ध्वनिकणों को आधार मानता है। विज्ञान कहता है कि ध्वनि विद्युतकणों की ही बदलाहट है, रूपांतरण है। ध्वनि स्वयं अपने में कुछ नहीं वरन विद्युत है। उपनिषद कहते हैं कि विद्युत कुछ नहीं है, बल्कि ध्वनि का रूपांतरण है। एक बात जरूर है कि किसी भी तरह ध्वनि व विद्युत परिवर्तित की जा सकती हैं एक-दूसरे में। परन्तु आधारभूत कौन है? विज्ञान का कहना है कि विद्युत आधारभूत है। उपनिषदों का कहना है कि ध्वनि आधारभूत है, और मैं सोचता हूं कि यह जो भेद है, वह केवल उनकी पहुंच के कारण से है।

उपनिषद अंतिम सत्य तक ध्वनि के माध्यम से पहुंचते हैं, मंत्रों के द्वारा। वे ध्वनि का उपयोग करते हैं ध्वनिशून्य को उपलब्ध करने के लिए। धीरे-धीरे ध्वनि को छोड़ दिया जाता है--और धीरे-धीरे ध्वनिशून्यता पा ली जाती है। अंत में, जब वे नीचे पेंदे में पहुंचते हैं वे उस कास्मिक साउंड--ब्रह्म की ध्वनि को सुनते हैं। वह कोई विचार नहीं है--वह कोई पैदा की गई ध्वनि नहीं है--वह तो अस्तित्व के अपने स्वभाव में अंतर्निहित है। उसी ध्वनि को उन्होंने ओम् कहा है। वे कहते हैं कि जब हम ओम को दोहराते हैं, वह मात्र समरूपता है--दूर बहुत दूर की नकल। वे कहते हैं, वह सही नहीं है; यह वह नहीं है जो कि वहां जानी जाती है, क्योंकि यह तो हमारे द्वारा उत्पन्न की गई है। यह तो मात्र किसी फोटोग्राफ की तरह है, यह सिर्फ उससे मिलती-जुलती है। मेरी फोटो मुझसे मिलती है, पर वह मैं नहीं हूं।

मैंने एक डच पेंटर वान गॉग के बाबत सुना है। एक बहुत सभ्य महिला वान गॉग को सड़क पर मिली और कहने लगी--मैंने आपकी तसवीर देखी है और वह इतनी सुंदर थी एवं इतनी प्यारी थी कि मैंने उसे चूम लिया। वान गॉग ने पूछा--क्या उस तसवीर ने कुछ जवाब दिया? महिला ने कहां--नहीं, तसवीर कैसे जवाब दे सकती है? वान गॉग ने कहा--तब वह मैं नहीं था। एक फोटो समरूप हो सकती है, परन्तु वह वास्तविक नहीं है। उसके साथ कुछ गलती नहीं है, बस इतना काफी है कि वह मिलती-जुलती है। परन्तु किसी को उसे मूल समझने की भूल नहीं करनी चाहिए। इसलिए ओम् मात्र संकेत है उसका जिससे कि वह मिलता-जुलता है, एक फोटो की तरह।

ओम् एक गुप्त कुंजी भी है। जब मैं कहता हूं कि गुप्त कुंजी, तो मेरा अर्थ है कि वह अंतिम ध्वनि से मिलती-जुलती है। यदि आप उसका उपयोग कर सकें और उसके साथ-साथ धीरे-धीरे भीतर गहरे में जा सकें, तो आप अंतिम द्वार तक पहुंच जाएंगे, क्योंकि वह मिलता-जुलता है और वह और भी अधिक मिलेगा, यदि आप कुछ बातें और करें। जैसे, यदि आप ओम् का उच्चारण करें, तो आपको अपने होंठ काम में लेने पड़ते हैं--आपका शरीर-यंत्र भी काम में लेना पड़ता है और तब बहुत कम सादृश्यता होगी। एक बहुत ही मोटी यांत्रिकता काम में लेनी पड़ती है और वह उसे विकृत कर देती है। ओम् एक मोटी वस्तु में बदल जाता है। अपने होंठ काम में मत लें; केवल अपने भीतर अपने मन की सहायता से ओम् की ध्वनि उत्पन्न करें। अपने शरीर को भी काम में मत लें, तब वह और भी मिलती-जुलती होगी; क्योंकि तब आप एक और अधिक सूक्ष्म माध्यम का उपयोग करेंगे। वह और भी अच्छी फोटो पेश करेगा।

मन का भी उपयोग न करें। प्रथम, ऊपरी शरीर को काम में लें, फिर उसे छोड़ दें। फिर मन को काम में ले। बस भीतर ओम् शब्द की ध्वनि उत्पन्न करें। तब उसे भी बंद कर दें और ध्वनि को प्रतिध्वनित होने दें। कोई भी प्रयास न करें, यह अपने से आता है; तब यह वह जप बन जाता है। तब आप उसे उत्पन्न नहीं कर रहे, आप तो मात्र उसके प्रवाह में हैं। तब वह और भी गहरा चला जाता है, और वह और भी अधिक वास्तविक

हो जाता है। आप उसे एक कुंजी की भांति काम में ले सकते हैं। जब वह बिना प्रयत्न के होने लगे, जब वह आपके शरीर के बिना होने लगे बिना मन के होने लगे—और जब केवल ध्वनि ही आपके भीतर प्रवाहित होने लगे, तो आप उसके बहुत समीप हैं।

अब केवल एक चीज और गिरा देनी है—उसे जो कि ओम् की ध्वनि को अनुभव कर रहा है—वह मैं ईगो, वह अहं जो कि अनुभव कर रहा है कि ओम् की ध्वनि मेरे चारों तरफ ओर गूंज रही है। यदि आप इसे भी गिरा दें, तब कोई बाधा नहीं रहती और फोटो की नकल असली फोटो में बदल जाती है। इसलिए यह गुप्त कुंजी है।

यह ओम् बहुत अदभुत है। यह रहस्यविदों के लिए उतना ही आधार भूत है, जितना कि आइंस्टीन का सापेक्षता का नियम भौतिक शास्त्र के लिए। उस फारमूला में भी तीन बातें हैं—एक चिन्ह, एक संकेत व एक गुप्त कुंजी। इस ओम् में भी तीन बातें हैं, परन्तु आधारभूत में यह एक गुप्त कुंजी है।

जब आप उससे द्वार न खोलें, तब तक इसके बारे में सोचना बिलकुल व्यर्थ है; समय, जीवन व शक्ति सब व्यर्थ नष्ट करना है। जब तक कि आप द्वार खोलने के लिए तैयार नहीं हों, क्या लाभ होगा खाली कुंजी की बात करने से! यहां तक कि आप इसके सारे दार्शनिक रहस्य भी जाने लें तो भी वह बेकार है। इसलिए इसे सदैव प्रारंभ में रखते हैं—ओम्। यह चाबी है। यदि आप एक घर में घुसें, तो पहली वस्तु जो काम में ली जाएगी, वह है चाबी। इसलिए घुसें, कुंजी को काम में लें; परन्तु यदि आप मात्र चाबी के बारे में सोचने में लगे रहे और बराबर द्वार पर ही बैठे रहे, तो यह चाबी फिर आपके लिए एक चाबी नहीं है, बल्कि एक बाधा है। तब उसे फेंक दें, क्योंकि वह कुछ खोल तो रही नहीं, बल्कि वह बंद कर रही है। और चाबी के कारण, आप लगातार सोचते चले जाते हैं। कोई चाबी के बारे में मनन करता रह सकता है, बिना उसका उपयोग किए।

बहुत से लोग हैं जिन्होंने कि ओम के विषय में सोचा है, चिंतन किया है कि क्या अर्थ है ओम का। उन्होंने ढांचे खड़े किए बड़े-बड़े ढांचे, परन्तु उन्होंने कभी चाबी का उपयोग नहीं किया; वे कभी उस महल के भीतर नहीं घुसे। यह एक चिन्ह है; एक संकेत है, परन्तु आधारतः यह एक गुप्त कुंजी है। इसे ब्रह्म में प्रवेश के लिए एक विधि की तरह काम में लिया जा सकता है—उस सागर रूप में घुसने के लिए विधि की तरह इसका उपयोग किया जा सकता है। जितना सूक्ष्म यह होता जाता है, उतना ही वास्तविक के पास होता जाता है और जितना स्थूल होता है, उतना कम पास होता है।

ध्यान उसका सतत स्मरण है। यह पहला सूत्र है। हम तीन आयामों के जगत में रहते हैं। पहला आयाम है—मैं-यह, वस्तुओं का संसार—मैं और मेरा घर, मैं और मेरा फर्नीचर, मैं और मेरा धन। यह एक मैं यह का घेरा है। एक वस्तुओं का जगत मुझे घेरे है।

फिर एक दूसरा आयाम है—मैं तू, मैं और मेरी प्रेयसी, मैं और मेरा मित्र, मैं और मेरा कुटुंब,—एक व्यक्तियों का जगत। यह दूसरा घेरा है।

उसके बाद एक तीसरा आयाम है—मैं-वह, मैं और विश्व। उपनिषद कहते हैं, ध्यान उसका सतत स्मरण है—न तो वस्तु का, न ही तेरा, वह कोई व्यक्ति नहीं है। वह तो वह है, परन्तु हम उसे वह क्यों कहते हैं? जब कभी हम वह कहते हैं, उसका अर्थ होता है वह कुछ जो कि अतिक्रमण करता है, वह जो कि पार है, वह कुछ जो कि वहां नहीं है जहां हम हैं—न तो हमारी वस्तुओं के संबंध में है और न हमारे व्यक्तियों के साथ संबंधों में है—वह उसका कोई नाम नहीं है, क्योंकि यदि उसे आप कोई भी नाम देते हैं, जैसे कि ईश्वर, तो वह मैं-तू का संबंध बन जाता है। यदि आप उसे माता या पिता कहते हैं, तो आप उसे दूसरे आयाम में ले

जाते हैं। यदि आप कहते हैं कि कोई ईश्वर नहीं है, तो फिर आपको एक ही आयाम में रहना पड़ता है—मैं-वस्तु।

वह वस्तु नहीं है। आस्तिक इस बात से राजी हैं कि वह कोई वस्तु नहीं है, परन्तु वे कहते हैं कि वह व्यक्ति है। उपनिषद उसे एक व्यक्ति की तरह पुकारने के लिए राजी नहीं हैं, क्योंकि एक व्यक्ति की तरह उसे बताना उसे सीमित करना है, एक व्यक्ति की तरह उसे मानना उसे सीमाओं में बांधना है। वे केवल उसका, वह (दैट) शब्द का उपयोग करते हैं। वे कहते हैं, बस इतना पर्याप्त है, लेकिन उसे हम कोई नाम नहीं दे सकते हैं, क्योंकि उसकी कोई आकृति नहीं है, कोई सीमा नहीं है—वह सर्वस्व है—ऑलनेस। इसलिए क्या कहें उसे? इसलिए वे उसे ईश्वर कह कर भी नहीं पुकारते, वे उसे भागवत—डिवाइन भी नहीं कहते; वे उसे लार्ड—मालिक भी नहीं कहते। वे उसे किसी भी नाम से नहीं पुकारते। जब उसका कोई रूप नहीं है, कोई नाम नहीं है, तो वे मात्र उसे लिए दैट—वह शब्द का उपयोग करते हैं।

उसका सतत स्मरण ही ध्यान है। यदि आप उसे सतत स्मरण कर सकें, तो फिर आप ध्यान में हैं। जब आप वस्तुओं के साथ हो, उसे स्मरण रखें; जब आप लोगों के साथ हों, उसे स्मरण रखें। जहां भी आप हों; उसे सदैव स्मरण रखें। हम कभी सीमित को सीमित की भांति नहीं देखते; सदैव गहरे देखें और उस असीम को अनुभव करें। कभी आकृति को आकृति तरह न देखें; सदैव आकृति के नीचे गहरे जो आकृतिहीन है उसे देखें। कभी वस्तुओं को वस्तुओं की तरह न देखें, गहरे जाए, उन्हें अनुभव करें, और वह—दैट प्रकट हो जाएगा। कभी किसी व्यक्ति को उसके व्यक्तित्व में कैद न देखें। उसके भीतर गहरे में प्रवेश कर जाएं और उसका अनुभव करें जो कि पार चला जाता है, वह जो भीतर है उसके भी पार चला जाता है। उसका सतत स्मरण ही ध्यान है। कोई विधि, कोई पद्धति, कोई तरीका नहीं है—बस, केवल सतत स्मरण। परन्तु यह बहुत कठिन है।

उसका सतत स्मरण रखना है—बिना किसी अंतराल के, बिना क्रम टूटे, बिना एक क्षण के लिए भूले। सतत स्मरण हो—लगातार बिना किसी भी अंतराल के। यह जो निरंतर स्मरण है, बहुत ही कठिन है। हम कुछ लोगों के लिए लगातार स्मरण नहीं कर सकते। जरा अपनी श्वासों को गिनना शुरू करो, और याद रखो कि लगातार स्मरण के आप कितनी श्वासें गिन पाते हैं, श्वास की क्रिया को, आती-जाती श्वास को खयाल में रखना कितने श्वास गिन पाते हैं। स्मरण रखें और गिनें। आप तीन या चार गिन पाएंगे और फिर चूक जाएंगे। कुछ बीच में आ गया और आप भूल गए। और तब आपको याद आता है कि ओह, मैं तो गिन रहा था और मैंने तीन गिने और चूक गया।

स्मरण सबसे कठिन बात है, क्योंकि हम सोए हुए लोग हैं। हम गहरी नींद में सोए हुए हैं। हम नींद में चल रहे हैं, नींद में बात कर रहे हैं, गति कर रहे हैं, जी रहे हैं, प्रेम कर रहे हैं! हम सब कुछ नींद में ही कर रहे हैं, एक गहरी निद्रा में, एक गहरे प्राकृतिक सम्मोहन में। इसीलिए इतनी गड़बड़ है, इतना संघर्ष है। इतनी हिंसा है और इतनी लड़ाई है। यह में कैसे जीवित रही! और अभी भी हम किसी तरह चला रहे हैं। परन्तु हम सोए हुए हैं। हमारा व्यवहार ऐसा व्यवहार नहीं कि उसे जागा हुआ, सावधानी पूर्ण या सचेतन कहा जा सके। हम जागे हुए नहीं हैं। एक मिनिट के लिए भी हम अपने प्रति सजग नहीं रह सकते। इसका थोड़ा प्रयत्न करें और तब आपको पता चलेगा कि आप कितने सोए हुए हैं। यदि मैं अपने आपको एक मिनट के—साठ सेकेंड के लिए भी लगातार स्मरण नहीं रख सकता, तो कितनी गहरी नींद में मैं सोया हूं! दो या तीन सेकेंड और फिर नींद आ जाती है, और मैं वहां नहीं होता—मैं कहीं चला गया। सजगता चली गई और मूर्च्छा उसकी जगह आ गई। एक गहरा अंधकार हो जाता है और फिर मुझे खयाल आता है कि मैं अपने प्रति सजग हो रहा था।

आत्मा पूजा भाग-१

पी॰ डी॰ ऑसपेन्स्की गुरजिएफ के साथ काम कर रहा था तथा उसके स्व-स्मरण की विधि पर भी। जब वह पहली दफा गुरजिएफ से मिला, उसने पूछा—आपका स्व-स्मरण (सेल्फ रिमेंबरिंग) से क्या तात्पर्य है? मुझे याद है, मैं पी॰ डी॰ ऑसपेन्स्की हूं। गुरजिएफ ने कहा—अपनी आंखें बंद करो और स्मरण करो कि तुम पी॰ डी॰ ऑसपेन्स्की हो, और अब विस्मरण हो जाए तो मुझे कह देना। स्पष्ट कह देना। केवल दो या तीन उसने कहा—मैं तो स्वप्न देखने लगा। मैं तो भूल गया कि मैं पी॰ डी॰ ऑसपेन्स्की हूं। मैंने तीन या चार बार कोशिश की। मैंने अपने भीतर कहा कि मैं पी॰ डी॰ ऑसपेन्स्की हूं। और तब एक सपना शुरू हो गया और मैं सजग नहीं रह पाया। गुरजिएफ ने कहा, यह स्व-स्मरण नहीं सजग नहीं रह पाया। गुरजिएफ हो। पहली बात तो यह है कि तुम पी॰ डी॰ ऑसपेन्स्की नहीं हो, और दूसरी बात यह कि यह स्मरण नहीं है। जब स्मरण आएगा, तो तुम पहले व्यक्ति हो जो कि मना करोगे कि तुम पी॰ डी॰ ऑसपेन्स्की हो।

तीन महीने के लिए ऑसपेन्स्की ने बड़ी मेहनत की, बहुत परिश्रम किया। जितनी कोशिश तुम करते हो, उतना पता चलता है कि यह कितना मुश्किल है। जितना भी तुम प्रयत्न करते हो, उतना ही तुम्हें पता चलता है कि तुम अपनी सारी जिंदगी सोए हुए ही रहे। यह जो हमारे पास है, यह मात्र यांत्रिक सजगता है। हम इससे चल सकते हैं, रोजाना का काम कर सकते हैं, परन्तु कभी गहरे में नहीं जा सकते।

तीन महीने के लिए उसने कोशिश की और बहुत कोशिश की और जब सजगता को प्राप्त हुआ, तो चेतना का एक नया ही स्तंभ प्रकट हुआ। जब वह अनुभव कर सकता था और साथ ही लगातार सजग भी रह सकता था, तो गुरजिएफ उसको एक सड़क पर घुमाने के लिए साथ ले गया। तब ऑसपेन्स्की ने कहा—पहली बार, एक शहर की सड़क पर, मैंने जाना कि प्रत्येक व्यक्ति सोया हुआ है, प्रत्येक व्यक्ति नींद में चल रहा है। लेकिन मैं भी उस नींद में चल चुका था, उस दशा में, और कभी सजग नहीं था। और मैंने देखा कि हर एक आदमी सोया हुआ है, अपनी खुली आंखों से। वह इतना घबड़ाया कि उसने अपने गुरु से कहा—मैं आगे नहीं चल सकता, मैं वास लौटूंगा। यहां हर एक ऐसा सोचा है कि यहां कुछ भी हो सकता है। मैं आगे नहीं बढ़ सकता।

एक सड़क के किनारे बैठ जाएं, और लोगों की घूमती हुई आंखों की ओर देखें। तब तुम्हें मालूम होता है कि हर एक मनुष्य अपने में बंद है। उसे बिलकुल ही होश नहीं है कि उसके चारों तरफ क्या हो रहा है। कोई अपने से बात कर रहा है, कोई अपने हाथ हिला रहा है, शक्लें बना रहा है, जैसे वह किसी सपने में।हो सकता है। होंठ हिल रहे हैं; प्रत्येक अपने भीतर बात कर रहा है। किसी को भी होश नहीं कि बाहर उसके चारों तरफ क्या हो रहा है। सब लोग यंत्रवत चले जा रहे हैं। वे अपने घरों को लौट रहे हैं। उन्हें यह स्मरण रखने की आवश्यकता नहीं कि उनके घर कहां हैं। वे यंत्रवत चलते हैं। उनकी टांगें चलती हैं; उनके हाथ कार के पहिए को घुमाते हैं, वे अपने घर पहुंच जाते हैं, परन्तु यह सारी प्रक्रिया सोते में हो रही है—एक यांत्रिक क्रिया है रोज की। रास्ते बने हैं और उन रास्तों पर वे चढ़े चले जाते हैं। इसीलिए हम सदैव नये से घबड़ाते हैं, क्योंकि तब हमें नए रास्ते बनाने पड़ते हैं। हम नए से डरते हैं, क्योंकि नए के साथ रोजमर्रा की बात नहीं चलेगी और कुछ समय के लिए हमें सावधान होना पड़ेगा। हम हमेशा ही अपने मृत दैनिक कार्यों में गड़े हुए रहते हैं और एक तरफ से मरे हुए होते हैं। एक सोया हुआ आदमी, वास्तव में, मृत होता है, उसे जीवित नहीं कह सकते।

पूरे जीवन में मात्र कुछ ही क्षणों के लिए हम जागते हैं और वे क्षण गहरे प्रेम के क्षण होते हैं जो कि बहुत ही मुश्किल से होता है। यह केवल कुछ ही लोगों को होता है—बहुत ही कम लोगों को। और जब यह होता है, प्रत्येक यह समझेगा कि वह आदमी पागल हो गया है, क्योंकि वह इतना भिन्न हो गया होता है—क्योंकि उसने वस्तुओं को दूसरे रंग में देखीं होती हैं, एक भिन्न ही संगीत में, एक अलग ही रोशनी में। वह अपने

चारों ओर देखता है और एक भिन्न ही दुनिया को देखता है। सचमुच ही वह व्यक्ति हमारे लिए पागल हो गया है, इसलिए हम उसे क्षमा कर सकते हैं, क्योंकि वह पागल है। वह एक स्वप्न में है!

वास्तव में, ठीक इसके विपरीत, मामला उल्टा ही है। हम सोए हुए हैं, और एक क्षण के लिए वह एक गहरी वास्तविकता के प्रति जाग गया है। परन्तु वह अकेला है और वह जागरूकता लगातार नहीं रह सकती; क्योंकि वह एक आकस्मिक घटना है। वह उसके प्रयत्न से नहीं हुआ जो कुछ उसने पाया। वह एक अकस्मात घटना है। वह फिर सो जाएगा, और जब वह सो जाएगा, तब वह अनुभव करेगा कि उसे अपने प्रेमी या प्रेयसी द्वारा धोखा हुआ है; क्योंकि वह जादू अब वहां नहीं है। वह जादू आया, क्योंकि वह एक नए ही संसार के प्रति जागा। इस संसार में कितने ही संसार हैं। वह अवगत हुआ, और अब फिर से सो गया, इसलिए वह अनुभव करता है कि उसके साथ धोखा हुआ है। हर एक प्रेम करने वाला यह सोचता है कि उसके साथ धोखा हुआ है। किसी ने उसे धोखा नहीं दिया है। केवल एक अचानक जागरण में उसने एक अलग ही संसार के दर्शन कर लिए, एक अलग ही सौंदर्य से भरे, अलग-अलग ध्वनियों से भरे, और अब वह फिर से सौ गया है। वह झलक खो गई और अब ऐसा अनुभव करता है कि उसे धोखा दिया गया। किसी ने उसे धोखा नहीं दिया है। केवल इतना ही हुआ कि अचानक वह जाग गया था।

कोई या तो प्रेम में, अथवा मृत्यु में सजग हो पाता है। आप मृत्यु की मुट्ठी में आ गए हैं, तो आप जाग जाएंगे। आकस्मिक दुर्घटनाओं में—कार काबू से बाहर पहाड़ी के नीचे आ रही है—आप जाग जाएंगे; क्योंकि अब कोई भविष्य नहीं है और अतीत समाप्त हो गया है। केवल यह वर्तमान क्षण, यह पहाड़ी से नीचे गिरने का क्षण ही सब कुछ है। अब एक अलग ही समय का आयाम खुलता है। आप यहां और अभी में है, पहली बार, क्योंकि कोई भविष्य नहीं है। आप भविष्य के बार में नहीं सोच सकते, अतीत समाप्त हो ही रहा है। इन दोनों के बीच, एक क्षण के लिए, इस संकट में, आप सजग हो गए हैं। इसलिए प्रेम व मृत्यु ही ऐसे क्षण हैं, जब कि हम जागरूक होते हैं, लेकिन वे हमारे हाथ में नहीं हैं।

इसलिए जब उपनिषद कहते हैं—उसका सतत स्मरण तो इसका अर्थ है कि यदि आप लगातार, सतत उसका स्मरण कर सकें प्रत्येक वस्तु में, प्रत्येक घटना में, जो कुछ भी है उसमें वही है, भीतर व बाहर, यदि हर चीज उसकी ही स्मृति के लिए संकेत बन जाए, तो चेतना का विस्फोट होगा। नींद तब नहीं होगी। आप सजग व जागरूक हो जाएंगे। वह सजगता, वह जागरूकता ही ध्यान है।

दो बातें और हैं। लगातार का अर्थ होना है बिना किसी अंतराल के—बिना एक क्षण के गैप के भी। परन्तु यह बहुत कठिन है, क्योंकि तब आपकी जिंदगी असंभव हो जाती है। यदि आप निरंतर, उसका स्मरण करते चले जाते हैं, तो आप जीएंगे कैसे? आप चलेंगे कैसे? आप खाएंगे कैसे? यह समस्या खड़ी होती है यदि आप उसका नाम स्मरण करते हैं, यदि राम का स्मरण करते हैं, जीसस का या किसी का भी करते हैं तो। यदि आप उसके नाम का स्मरण करते हैं, उसे कोई भी नाम देते हैं, यदि आप बार-बार राम-राम दोहराते हैं, तो आपका जीवन असंभव हो जाएगा; क्योंकि या तो आप राम-राम का स्मरण ही कर सकते हैं या आप सड़क पर चल ही सकते हैं।

एक मिलिटरी के सिपाही को मेरे पास लाए थे—एक बहुत ही सीधा आदमी, बड़ी ही भक्त। वह राम-राम बोलने की सतत चेष्टा में लगा था। किसी गुरु ने उसे निरंतर राम का जप करने के लिए कहा था। वह इतना उस जप में खो गया कि बाहर का उसका जीवन असंभव हो गया। वह सो नहीं सकता था, क्योंकि उसे राम का स्मरण करना था! यदि आप भीतर राम-राम-राम दोहराते जा रहे हैं, तो आप सो नहीं सकते। यह लगातार क्रिया सोने नहीं देगी। वह सड़क पर भी नहीं चल सकता था, क्योंकि कोई हॉर्न बजा रहा है और वह सुन नहीं पाता है। वह अपने चारों ओर अपने ही जप से घिर गया था, बंद हो गया था। वह बिलकुल संवेदनशील

हो गया था। वह एक सेना का सिपाही था, इसलिए उसका कैप्टेन उसे मेरे पास लाया था और कहा था कि यह सुन भी नहीं सकता। मैं कहता हूं, लेफ्ट टर्न, और यह खड़ा है और यह देख रहा है, यह गैरहाजिर है। क्या कर रहा है यह? कैप्टेन ने कहा कि असंभव हो गया है और अब इस आदमी को अस्पताल भेजना पड़ेगा। मैंने उस सिपाही से पूछा-तुम क्या कर रहे हो? उसने मुझे कहा कि मैं आपको बतला सकता हूं, मेरे कप्तान को नहीं। मेरे गुरु ने मुझे एक मंत्र दिया है और इसलिए मैं राम-राम-राम निरंतर दोहरा रहा हूं। और अब यह दोहराना इतना गहरा चला गया है (क्योंकि मैं तीन साल से लगातार दोहरा रहा हूं) कि मेरी नींद खो गई है। मुझे दिखलाई नहीं पड़ता कि क्या हो रहा है। मैं सुन नहीं सकता कि मेरे चारों ओर क्या हो रहा है। मेरे और संसार के बीच एक बड़ी दीवार आ गई है। मैं अपने राम के जप में बंद हो गया हूं। उसने मुझसे पूछा कि मैं दोनों कैसे करूं? यदि मुझे निरंतर जप करना है, तो फिर मैं कुछ और नहीं कर सकता। इसलिए मुझे बतलाएं कि क्या करूं? यदि मैं कुछ और करता हूं, तो जप टूट जाता है, और अंतराल फिर अनिवार्यतः आएंगे।

यहां स्मरण का यह मतलब नहीं है। इसीलिए उपनिषद उसका कोई नाम नहीं दे रहे, कोई रूप नहीं दे रहे, केवल कह रहे हैं-वह-दैट। और उसका निरंतर स्मरण असंभव है, क्योंकि आपको उसको उसका नाम-स्मरण नहीं करना है। बल्कि आपको उसे अनुभव करना है प्रत्येक बात में जो भी आप कर रहे हैं-यहां तक कुएं से पानी ला रहे हैं उसमें भी। किसी झेन फकीर बोकूजू से पूछा कि वह हर समय क्या करता है? उसने कहा-मैं कुछ भी लगातार नहीं करता हूं। जो कुछ भी मैं कर रहा हूं, मैं समग्र रूप से करता हूं। जब मैं कुएं से पानी ला रहा हूं, तो मैं कुएं से पानी ही ला रहा हूं। जब मैं लकड़ी काट रहा हूं, तो मैं लकड़ी ही काट रहा हूं। जब मैं सो रहा हूं तो मैं सो रहा हूं। प्रश्नकर्ता ने पूछा-तब फिर आप क्या कर रहे हो? बोकूजू ने सीधा उत्तर दिया-मैं कुछ भी नहीं कर रहा हूं। जब मैं लकड़ी काट रहा हूं, तब वह लकड़ी काट रहा हूं, तो वह पानी ला रहा है। वह ही पानी ला रहा है और वही पानी भी है जो कि लाया जा रहा है और वह ही लकड़ी भी है जो कि काटी जा रही है। अब वह ही है, और मैं नहीं हूं। इसलिए हर चीज पूजा हो गई है और प्रत्येक बात ध्यान हो गई है।

यह सारा उपनिषद इसी एक बात से संबंधित है कि कैसे आपकी जिंदगी को ही एक पूजा बना दे। यह उपनिषद पूर्णरूप से सब क्रियाकांड के विरोध में है। किसी क्रिया की आवश्यकता नहीं-केवल एक अलग रुख-एक स्मरण उसका-कुछ भी करने में, कुछ भी न करने में, परन्तु सतत स्मरण उसका। आपको याद नहीं करना कि-चलो, अच्छा, यह पत्थर भी वह है। यदि आप इस तरह याद करने चले कि यह पत्थर भी वह है, तब वह स्मरण नहीं है क्योंकि तब दो मौजूद हैं-यह पत्थर और वह। जब उपनिषद कहते हैं-सतत स्मरण उसका तो उसका अर्थ है कि पत्थर गिर जाना चाहिए। केवल वही है। वह गहरा अनुभव है, एक सतत अनुभव।

अनुभव करना प्रारंभ करें। किसी भी वस्तु को छुएं नहीं बिना उसका अनुभव किए। बिना उसका अनुभव किए किसी को भी प्रेम न करें। हिलें भी नहीं, यहां तक कि श्वास भी न लें बिना उसका अनुभव किए। ऐसा नहीं है कि आपको उसे प्रत्येक चीज पर आरोपित करना है। आपको तो उसे प्रत्येक वस्तु में खोजना है। यह भेद स्पष्ट हो जाना चाहिए। आपके किसी भी चीज पर उसे आरोपित नहीं करना है। आप आरोपित कर सकते हैं, वह एक तरकीब होगी। आपको खोजना है। एक फूल को देखकर आप आरोपित कर सकते हैं और कह सकते हैं, ओह, वह फूल वह ही है।

नहीं, आरोपण न करें। कुछ भी न कहें। बस केवल फूल के पास चुप हो जाए उसकी तरफ देखें। गहरी सहानुभूति में हो जाए, उसके साथ गहरे में जुड़ जाएं। अपन को भूल जाए। मात्र निष्क्रिय सजगता में हों और

फूल खिल उठेगा। उसमें। उसका वह प्रकट हो जाएगा। इसलिए उसे खोजते चले जाएं। यही मतलब है सतत स्मरण का, और उसका सतत स्मरण ही ध्यान है।

आज इतना ही।

बंबई, दिनांक १५ फरवरी, १९७२, रात्रि

२ प्रश्न एवं उत्तर

पहला प्रश्न—भगवान श्री रजनीश, कल रात्रि आपने कहा कि जो कोई शून्य हो जाते हैं वे घाटी की तरह जो जाते हैं। वे प्रतिक्रिया नहीं करते, वरन संवेदनशील करते हैं, और ऐसे जो ज्योतिर्मय लोग हैं उनके प्रतिसंवेदन अलग-अलग होते हैं। घाटी अपनी-अपनी महान निजता व व्यक्तिगत रूप में प्रतिध्वनि करेगी। अब यह प्रश्न उठता है कि जो लोग पूर्ण शून्य को प्राप्त हो गए हैं—मिट गए हैं—उनकी अभी भी निजता और व्यक्तित्व बना रहता है। यदि ऐसा है तो कृपया समझाएं कि ऐसा कैसे संभव हो पाता है?

यह अध्यात्म जीवन के विरोधाभासों में से एक है। जितना ही कोई परमात्मा में लीन हो जाता है, उतना ही विशिष्ट वह हो जाता है। यह उसके व्यक्तित्व का विलय नहीं है, वरन उसके अहं का विलय है। यह विलय उसकी निजता का नहीं, वरन उसके अहंकार का विलय है। जितने आप अहंकार-जन्य होते हैं, उतने ही आप दूसरे के जैसे होते हैं, क्योंकि प्रत्येक अहंकारी है। अहंकार संसार में सबसे अधिक साधारण चीज है। हर एक अहंजन्य है, यहां तक कि एक नवजात शिशु भी अहंजन्य होता है, पूरा अहंजन्य। इसलिए यह कोई उपलब्धि नहीं है; यह कोई विशेषता नहीं है। वास्तव में, यह कहा जा सकता है कि सामान्य होना एक सर्वाधिक विशेषता की बात है, क्योंकि कोई भी सामान्य अनुभव नहीं करता। इसलिए किसी का अपने को विशिष्ट अनुभव करना एक बहुत ही सामान्य बात है; प्रत्येक वैसा समझता है। अतएव अहंकार कोई शिखर की बात नहीं है।

यदि आप में अहंकार है, तो वह कोई बड़ी बात नहीं है। वास्तव, में अहंशून्यता ही सर्वोपरि चीज है, सर्वाधिक असाधारण व न्यूनतम। ऐसा कभी-कभी ही हो पाता है। सदियां बीत जाती हैं और बहुत मुश्किल से ऐसी कोई घटना हो पाती है कि कोई अहंशून्य हो गया हो—कोई बुद्ध, कोई जीसस। परन्तु जब हम कहते हैं कि कोई अहंशून्य हो गया है, तो इसका अर्थ यह नहीं होता कि वह नहीं है। वास्तव में, प्रथम बार अब वह है—प्रामाणिक ढंग से अपने में स्थित। वह अहंजन्य नहीं है। इसे दूसरे मार्ग से समझे।

अहं एक असत्य घटना है, मात्र ऊपरी दिखावा, न कि वास्तविकता। वह कोई ऐसी बात नहीं जो स्वयं में जमी हुई हो। वह मात्र एक स्वप्न है, एक विचार है—बस एक मानसिक संरचना। इसलिए जितना आप अहं से जुड़े हैं, उतना ही कम आप अस्तित्व से संबंधित हैं। जितना ही अधिक आप अपने अहंकार पर ध्यान के केंद्रित करते हैं, उतने ही कम आप प्रामाणिक होते हैं। आप असत्य हो जाते हैं, एक अस्तित्वगत असत्य।

जब हम रिक्त होने की, कुछ नहीं कहो ने की, घाटी की तरह होने की बात करते हैं, तब हमारा अर्थ होता है कि कोई अहं नहीं है। परन्तु आप तो हैं। मुझे इस तरह कहने दें: मैं कहता हूं कि मैं हूं, परन्तु जब अहं का विलय हो जाता है, तो पीछे मात्र हूं बच जाता है। मैं फिर वहां नहीं होता, होता है मात्र हूं—पहली बार शुद्ध, समग्र, बिना दूषित किया हुआ अहं उसे दूषित कर देता है।

आत्मा पूजा भाग-१

व्यक्तित्व (पर्सनैलिटी) और निजता (इन्डिवीजअलिटि) इन दो शब्दों को एक नहीं समझना चाहिए। ये दोनों बिलकुल ही भिन्न हैं। इन दोनों का एक अर्थ नहीं होता। ये दोनों एक नहीं हैं। व्यक्तित्व अहंकार से संबंधित है, और निजता स्वरूप से, बीइंग से। व्यक्तित्व मात्र एक बाह्य हिस्सा है। अहंकार केंद्र है और व्यक्तित्व है उसकी बाहरी परिधि। वह इंण्डिविजुअलिटी या ने उसकी निजता बिलकुल भी नहीं। यह शब्द पर्सनैलिटी बहुत अर्थपूर्ण है। यह ग्रीक शब्द परसोना से निकला है और परसोना का अर्थ होता है मास्क–बनावटी चेहरा। ग्रीक नाटक में पात्र बनावटी मुखौटों में अपने चेहरे छिपा लेते थे। इस तरह उनका असली चेहरा तो छिपा रहता था और बनावटी चेहरा ही असली लगता था। पर्सनैलिटी का अर्थ होता है नकली चेहरा–मास्क, जो कि आप नहीं हैं परन्तु दिखलाई पड़ते हैं।

हमारे बहुत सारे चेहरे हैं और इसलिए वस्तुतः किसी का भी एक व्यक्तित्व नहीं है। हमारे बहु–व्यक्तित्व हैं। प्रत्येक को सारे दिन में कितने ही चेहरे बदलने पड़ते हैं। आप एक चेहरे के साथ नहीं रह सकते। वह बहुत कठिन होगा, क्योंकि सारे समय आप अलग-अलग लोगों के साथ होते हैं और आपको चेहरों बदलना पड़ता है। आप अपने नौकर के सामने वही चेहरा लिए हुए नहीं हो सकते जो कि आप अपने मालिक के सामने लिए होते हैं। आप अपनी पत्नी के समक्ष वही चेहरा नहीं रख सकते जो कि अपनी प्रेमिका के सामने रखते हैं। इसलिए लगातार हमें अपने पास निरंतर बदलते हुए चेहरों का इंतजाम रखना पड़ता है। सारे दिन व सारी जिंदगी हम निरंतर चेहरे बदलते रहते हैं। आप इसके प्रति सजग हो सकते हैं। आप जान सकते हैं कि कब आप एक चेहरों बदलते हैं और क्यों बदलते हैं और आपके कितने चेहरे हैं।

इसलिए व्यक्तित्व का अर्थ होता है: एक बदलते हुए चेहरे का प्रबंध। और जब आप कहते हैं कि किसी आदमी का महान व्यक्तित्व है, उसका इतना ही अर्थ होता है कि उसके पास और अधिक चेहरे बदलने का प्रबंध है। वह कोई थिर व्यक्ति नहीं, उसके पास प्रबंध और अधिक लचीला है। वह सरलता से परिवर्तन कर सकता है। वह एक बड़ा अभिनेता है।

आपको व्यक्तित्व हर क्षण निर्मित करना पड़ता है, इसलिए कोई भी अपने व्यक्तित्व के साथ आराम से नहीं है। वह एक लगातार प्रयत्न है, इसलिए यदि आप थक गए हैं, तो आपकी चमक खो जाएगी। सबेरे आपके व्यक्तित्व की एक चमक होती है, शाम को वह खो जाती है। सारे दिन भर वह लगातार चेहरे बदलता रहा। इसलिए जब मैं व्यक्तित्व शब्द का प्रयोग करता हूं, तो मेरा तात्पर्य है, एक झूठा दिखलावा, जो कि आपने चारों और निर्मित किया है।

निजता दूसरी ही बात है। निजता का अर्थ वह नहीं, जो कि आपके द्वारा बनाई व खड़ी की जाती है,बल्कि उसका अर्थ होता है आपके सच्चे स्वरूप का असली स्वभाव। यह शब्द इंडिविजुअलिटि भी बहुत अर्थपूर्ण है। इसका अर्थ होता है वह जो कि विभाजित नहीं किया जा सके, अविभाज्य हो–इंडिविजिवल। हमारा एक आंतरिक जन्मजात, स्वभाव है जो कि विभाजित नहीं किया जा सकता, जो कि अविभाज्य है। इसलिए कार्ल गुस्ताव जुंग इंडिविजुअलिटि को एक बहुत गहरी घटना बतलाता है। वह कहता है कि यह अविभाज्यता सत्य की ओर गया मार्ग है–परमात्मा की ओर अविभाज्यता–अर्थात निजता में, अखंड होना।

भारतीय शब्द योग का वही अर्थ होता है–अविभाज्य, अखंड। योग का अर्थ होता है उस सबको फिर से जोड़ना जो कि विभाजित हो गया है, उस सबको फिर से संयुक्त करना जो कि बंट गया है; फिर से अविभाज्य को लौटा लाना। इसलिए योग का अंग्रेजी में अनुवाद करना हो, तो यह ज्यादा ठीक होगा यदि हम उसे अविभाज्यता की ओर जाना कहें।

यह निजता रहती है और अधिक गहरी हो जाती है, और अधिक तेज हो जाती है। जिस क्षण भी आप अपने अहंकार को खोते हैं, जिस क्षण भी आप अपने व्यक्तित्व को छोड़ते हैं, आप एक व्यक्ति हो जाते

हैं–इंडिविजुअल। यह एक व्यक्ति हो जाना एक अनूठी घटना है, यह फिर से दोहराई जाने वाली नहीं है। एक बुद्ध फिर से नहीं दोहराए जा सकते। गौतम सिद्धार्थ फिर से दोहराए जा सकते हैं। एक जीसस फिर से पुनरुक्त हो सकते हैं, परन्तु एक जीसस क्राइस्ट नहीं। जीसस का अर्थ होता है व्यक्तित्व; जीसस क्राइस्ट का अर्थ होता है अविभाज्यता, अखंडता, निजता। गौतम-सिद्धार्थ एक साधारण बात है; वे पुनरुक्त हो सकते हैं। कोई गौतम सिद्धार्थ हो सकता है। जिस क्षण गौतम सिद्धार्थ ज्ञान की उपलब्धि कर लेते हैं और बुद्ध होते हैं, तो फिर वह घटना पुनरुक्त नहीं हो सकती। वह अपूर्व है। वह पहले कभी नहीं हुई और वह आगे भी कभी नहीं होगी। यह बुद्धत्व, यह आत्मानुभव का शिखर इतना अनूठा व अपूर्व है कि वह पुनरुक्त नहीं हो सकता। अतएव जब मैंने घाटी की भांति होने की बात कही और जब यह कहा कि हर एक घाटी अपनी ही तरह से अनुगूंज करेगी तो मेरा तात्पर्य है फिर हर एक घाटी की अपनी इंडिविजुअलिटि है, निजता है। बुद्ध की अपनी जितना है, जीसस की अपनी है, कृष्ण की अपनी है। इसलिए इसे समझना जरा अच्छा होगा।

फिर बुद्ध, जीसस या कृष्ण इतने भिन्न क्यों होते हैं? वे भिन्न होते हैं, जीतनी भी भिन्न होने की संभावना है, परन्तु फिर भी वे हैं एक ही, किसी गहरे अर्थों में। जहां तक अविभाज्यता का संबंध है, वे एक हैं; जहां तक निजता का संबंध हैं, वे भिन्न हैं। वे अविभाज्य तक आ गए हैं। जो कि अस्तित्व की आधारभूत कहता है, उन्होंने उसे जान लिया है। परन्तु इस आधारभूत एकता व उसके पा लेने का तात्पर्य यह नहीं है कि वे यूनीक–अपूर्व नहीं हैं। सच में अब वे बहुत ही अपूर्व हैं। इसलिए मैं कहता हूं, यह विरोधाभासी में से एक है।

दो साधारण आदमी भिन्न हो सकते हैं, परन्तु उनकी भिन्नता पूर्ण और समग्र कभी नहीं हो सकती। यहां तक कि उनकी भिन्नताओं में भी समानताएं होंगी। वस्तुतः उनकी भिन्नता सदैव मात्रा की होगी। यद्यपि वे दोनों परंपरा बिलकुल ही विपरीत हैं, उनका भेद मात्र मात्रा का होता है। एक मनुष्य जो कम्युनिस्ट है और दूसरा मनुष्य जो कि एण्टीकम्युनिस्ट है–विरोधी हैं–वे भी मात्रा में ही भिन्न हैं। एटी-कम्युनिस्ट जरा कम कम्युनिस्ट है मात्रा में, और जो कम्युनिस्ट है वह जरा कम पूंजीवादी है मात्रा में। वह भेद सदा ही मात्रा का है और वह कभी भी बदल सकता है। वे अपना डेरा कभी भी बदल सकते हैं आसानी से–उसमें कोई अड़चन नहीं है। साधारणतः वे बदलते रहते हैं। भेद सिर्फ ठंडे-गर्म का है–केवल मात्राओं का। परन्तु एक बुद्ध और कृष्ण, एक क्राइस्ट और मोहम्मद, और एक लाओत्सू वे महावीर–उनका भेद कभी भी मात्राओं का नहीं है; वे कभी भी नहीं मिल सकते। और सब से बड़ा विरोधाभास है कि वे सब उस ऐक्य को पहुंच गए हैं और फिर भी कभी नहीं मिल सकते! वह भेद मात्राओं का नहीं है, यह भेद उनकी यूनिकनेस का है–अपूर्वता का है।

क्या अर्थ है मरो इस अपूर्वता से? हम ऐक्य को बड़ी सरलता से समझ सकते हैं। एक बूंद पानी में गिरा जाता है। और उसके साथ एक हो जाती है, परन्तु वैसा एक होना मृत सदृश है, एक मृत ऐक्य। बूंद बिलकुल खो गई, अब वह कहीं भी नहीं है। बुद्ध इस तरह नहीं गिर रहे हैं; वे एक भिन्न तरीके से गिर रहे हैं। यदि आप एक लौ सूरज के समक्ष जलाएं, तो वह लौ सूरज से एक हो जाएंगी; परन्तु उसकी अपनी निजता नहीं खो जाएगी, अभी भी वह होगी। यदि हम इस कमरे में पचास लौ जला दें, तो वे सब एक प्रकाश उत्पन्न करेंगी, परन्तु प्रत्येक लौ अपने में अपूर्व, अनूठी लौ होगी। इसलिए यह ब्रह्म में लीन होना एक सामान्य विलय नहीं है; यह बहुत गूढ़ है। इसकी गूढ़ता यह है कि वह जो कि विलय होता है, शेष रहता है। बल्कि इसके विपरीत पहली बार वह है।

यह जो इंडिविजुअलिटि है–निजता है, यह विभिन्न प्रकार से अनुगूंज करती है और वही उसकी सुंदरता है; वह सुंदर है। अन्यथा वह सिर्फ कुरूप होगा। जरा सोचें कि बुद्ध उसी तरह से प्रतिध्वनि करते हैं; जैसे कि जीसस, तो दुनिया गरीब हो जाएगी–बहुत ही दीन। बुद्ध अपनी तरह से प्रतिसंवेदना करते हैं, एवं जीसस

अपनी तरह से प्रतिसंवेदन करते हैं। संसार इस तरह से समृद्ध होता है और यह एक सुंदरता की बात है। संसार और अधिक स्वतंत्र होता है और आप भी आप हो सकते हैं।

परन्तु यह भेद समझने जैसा है कि जब मैं कहता हूं कि आप भी आपके जैसे हो सकते हैं, तो उसका अर्थ आपका अहंकार नहीं है। जब मैं कहता हूं कि आप आप हो सकते हैं, तो उसका अर्थ आपका अहंकार नहीं है। जब मैं कहता हूं कि आप आप हो सकते हैं, तो मेरा आशय है कि आपका स्वभाव, आपका ताओ, आपका अस्तित्व। परन्तु उसकी अपनी निजता है। वह निजता पर्सनैलिटी नहीं, व्यक्तित्व नहीं। अतः मैं कहता हूं कि वे एक ही अस्तित्व से संबद्ध हैं, पर फिर भी अपनी निजता में। वे उसी गहनता से प्रतिसंवेदन करते हैं, परन्तु एक निजता की भांति। वहां कोई अहंकार का भाव नहीं है, परन्तु अपूर्वता तो रहती है।

यह संसार कोई रंगीन इकाई नहीं है, यह कोई ऊब से भरा नहीं है, इसके बहुरंग हैं, यह बहुध्वनि वाला है। आप एक स्वर से भी संगीत पैदा कर सकते हैं, परन्तु वह मात्र ऊबा देने वाला होगा, थका देगा; वह जीवंत नहीं होगा; वह सुंदर नहीं होगा। कई स्वरों से एक अधिक सूक्ष्म व मिश्रित लय निकलती है—बहु-स्वर वाली—मल्टीटोनल। एक आंतरिक लय चलती है, परन्तु वह उबाने वाली नहीं होती। हर एक स्वर की अपनी निजता है। वह समग्रता की लयबद्धता को अपना योगदान करता है। वह योगदान करता है, क्योंकि उसकी अपनी निजता है। बुद्ध योगदान करते हैं, क्योंकि वे एक बुद्ध हैं। जीसस योगदान करते हैं, क्योंकि वे एक जीसस हैं। वे एक नया स्वर देते हैं, एक नयी लहर। एक नई ही लय पैदा होती है उनकी वजह से। परन्तु वह तभी संभव है जबकि उनकी अपनी एक निजता हो। और ऐसा गहरी बातों के लिए ही नहीं है। यहां तक बहुत छोटी वे मामूली बातों में भी बुद्ध और जीसस भिन्न हैं। बुद्ध अपनी ही तरह से चलते हैं। कोई उनकी तरह से नहीं चल सकता। जीसस अपनी ही तरह से देखते हैं। कोई भी उस तरह से नहीं देख सकता। उनकी आंखें भी अनूठी हैं। उनके हाव-भाव, उनके शब्द जो वे उपयोग करते हैं, अपूर्व हैं। कोई भी एक-दूसरे के विशिष्ट गुण नहीं ले सकता।

यह दुनिया अपूर्व स्वरों की एक सिम्फनी, राग-रागिनी है और उसके कारण ही संगीत ज्यादा समृद्धशाली है। हर एक घाटी अपने ही ढंग से अनुगूंज करती है। वे सभी शुभचिंतक लोग जो कि एक मृत एकता को थोपना चाहते हैं, जो कि सब जगह से निजता को पोंछ डालना चाहते हैं, जो कहते हैं कि कुरान का तात्पर्य वही है जो गीता का है, जो कहते हैं कि बुद्ध भी वही सिखाते हैं जो कि महावीर, उनको पता नहीं है कि वे कितनी मूर्खता की बातें करते हैं। यदि वे अपनी बात में जीत जाएं, तो यह दुनिया बहुत दीन-हीन व दरिद्र हो जाएगी। कैसे कुरान वह कह सकती है जो कि गीता कहती है? और कैसे कुरान वह कह सकती है जो कि गीता कहती है? और कैसे वह गीता कह सकती है, जो कुरान कहती है। कुरान की अपनी निजता है, जो कि कोई गीता नहीं दोहरा सकती, और कोई कुरान गीता को पुनरुक्त नहीं कर सकती।

कृष्ण की अपनी गरिमा है और मोहम्मद की अपनी। वे कभी नहीं मिलते और फिर भी मैं कहता हूं कि वे उसी स्थान पर खड़े हैं। वे कभी नहीं मिलते हैं यह सुंदरता है। और वे कभी भी नहीं मिलेंगे; वे समानांतर रेखाओं की भांति हैं जो कि अनंत को जाती हैं। वे कभी भी नहीं मिलेंगे। यही मेरा मतलब है अपूर्वता से। वे शिखर की तरह हैं। जितना ही शिखर ऊंचा उठता है, उतनी ही कम संभावना उसके दूसरे शिखर से मिलने की हो जाती है। आप मिल सकते हैं यदि आप जमीन पर हैं तो। प्रत्येक चीज मिल रही हैं। परन्तु जितने ऊपर आप उठते जाते हैं, शिखर होते जाते हैं, उतनी ही मिलने की संभावना कम होती जाती है। इसलिए वे हिमालय के शिखरों की भांति हैं, जो कि कभी नहीं मिलते। यदि आप उन पर एक झूठी एकता को थोपें, तो आप उन शिखरों को सिर्फ नष्ट कर देंगे। वे भिन्न हैं, परन्तु उनकी भिन्नता रंगों की नहीं, उनकी भिन्नता किसी द्वंद्व के लिए नहीं है।

द्वंद्व इसीलिए है, क्योंकि हम भिन्नताओं को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं हैं। फिर हम उनमें समरूपताएं ढूंढते हैं। या तो समरूपताएं होनी चाहिए अथवा हम द्वंद्व में होंगे। या तो हम वही बात बोलें अन्यथा हम शत्रु होंगे। हमारे पास दो ही विकल्प हैं और दोनों ही गलत हैं। वे एक ही भाव से संबद्ध हैं। क्यों नहीं वे भिन्न हो सकते—बिलकुल ही भिन्न जो कि कहीं भी न मिलते हो? क्या आवश्यकता है किसी भी द्वंद्व की? वास्तव में, भिन्न स्वर एक बहुत सुंदर लय उत्पन्न करते हैं। तब एक अधिक गहरा मिलन होता है। स्वरों में कोई मेल नहीं है, परन्तु जो कुछ स्वर मिलकर उत्पन्न करते हैं, उसमें मेल हैं। परन्तु उस लयबद्धता को, उस एकलयता के अनुभव करना प्रारंभ करना पड़े।

यदि कोई भिन्न को ही जानता है तो मोहम्मद, जीसस, बुद्ध, मात्र स्वर हैं। कोई एकलयता अनुभव नहीं होती, परन्तु विश्व एक छंद है। यदि आप अंतरालों को अनुभव करना शुरू करें, उनमें जो आंतरिक एकता है उसे अनुभव करें और ऊंचे शिखरों को जो कि कहीं भी नहीं मिलते, और यदि आप इन सब को एक साथ, इकट्ठा, उनकी समग्रता में, एक संयुक्त एकता में देख सकें, तो आप दोनों को स्वीकार कर सकते हैं—उनकी निजता को भी और उनमें जो लयबद्धता है उसको भी। तब फिर कोई समस्या नहीं है।

दूसरा प्रश्न—भगवान, बुद्ध और महावीर जो कि समकालीन थे, फिर वे कभी भी क्यों नहीं मिले? शारीरिक रीति से भी नहीं मिले?

वे नहीं मिल सकते। वे कभी नहीं मिल सकते, शारीरिक रीति से भी नहीं। वे कई बार मिलने के बहुत करीब भी आ गए। एक बार वे दोनों एक ही सराय में ठहरे हुए थे—एक हिस्से में महावीर और दूसरे हिस्से में बुद्ध, परन्तु कोई मिलना नहीं होता, मुलाकात नहीं होती। वे उन्हीं गांवों से कई बार गुजरे अपनी जिंदगी में। वे बिहार, जो कि बहुत छोटा सा प्रांत है, उसमें रहे। वे उन्हीं गांवों में गए भी। वे उन्हीं गांवों में रहे भी। उन्होंने उन्हीं लोगों से बात भी की। उनके अनुयायी बुद्ध से महावीर और महावीर से बुद्ध के बीच आते जाते रहे। बहुत विरोध भी रहा, बहुत बार लोगों का धर्म परिवर्तन भी हुआ, परन्तु वे कभी न मिले। वे मिल ही नहीं सकते। उनके अपने मूल स्वरूप ही अब कुछ ऐसे शिखर हैं कि उनका मिलना अब संभव नहीं है। यहां तक कि यदि वे एक-दूसरे के आस-पास में भी बैठे हों, तो भी मिलना नहीं हो सकता। यहां तक कि हमें वे मिलते हुए भी नजर आए और छाती से छाती लगाए हुए दिखलाई पड़े, तो भी वे नहीं मिल सकते। उनकी मीटिंग असंभव हो गई है। वे इतने अपूर्व हैं, वे इतने शिखर की तरह हैं, कि आंतरिक मिल संभव नहीं हैं। इसलिए फिर बाह्य मिलन का क्या अर्थ है? वह बेकार है, वह अर्थहीन है।

यह बात हमें समझ में नहीं आती। हम सोचते हैं कि दो अच्छे आदमी आपस में मिलने ही चाहिए। हमारे लिए यह जो न मिलने वाला रुख है, यह ठीक नहीं है। वास्तव में, कोई न मिलने, का भाव अभाव रुख नहीं है; बस वह असंभव है। ऐसा नहीं है कि बुद्ध महावीर से मिलना न चाहेंगे। ऐसा नहीं है कि महावीर मना करेंगे। बस वह सिर्फ असंभव है। बस, वह हो नहीं सकता। कोई रुख नहीं है वैसा। इसलिए वास्तव में यह आश्चर्यजनक बात है। एक ही गांव में रहे, वे एक ही सराय में ठहरे, परन्तु न तो बौद्धों के साहित्य में और न जैनों के शास्त्रों में ऐसा कोई उल्लेख है कि किसी ने कहा हो कि वे मिले—एक भी उल्लेख नहीं है! यहां तक कि ऐसा भी कोई उल्लेख नहीं है कि किसी ने सुझाव दिया हो कि यह अच्छा होगा यदि वे दोनों मिलें। यह वाकई आश्चर्यजनक बात है। दोनों में से किसी ने भी मना नहीं किया है। न तो बुद्ध ने, न महावीर ने कभी ऐसा कहा है कि मैं नहीं मिलूंगा। फिर वे क्यों नहीं मिले? क्योंकि वह एक असंभावना है; वह संभव ही नहीं है।

हमारे लिए, जो कि पृथ्वी पर खड़े हैं, बड़ा अजीब लगता है, परन्तु यदि आप शिखर पर खड़े हों, तो कुछ अजीब नहीं लगेगा। क्यों नहीं हिमालय के एक शिखर से कहते कि दूसरे शिखर से मिले? वे इतने निकट

हैं—इतने पास हैं। वे क्यों नहीं मिल सकते! उनके मूल स्वरूप, उनका अपना शिखर स्वरूप ही यह असंभावना उत्पन्न करता है। इसलिए ऐसा भी नहीं है कि वे कभी न मिले हों, बल्कि वे मिल ही नहीं सकते। वे कभी न मिलेंगे। वह द्वार ही बंद हो गया। और फिर भी मैं कहता हूं कि वे एक हैं। कितने भी शिखर एक दूसरे से भिन्न हों, अपनी जड़ों में वे सदैव एक हैं। वे दोनों पृथ्वी के एक ही हिस्से से जुड़े हैं, लेकिन केवल जड़ों में ही वे एक हैं।

यहां पर एक बात और सोचने जैसी है। चूंकि वे जड़ में एक ही हैं, इसलिए कोई ऐसी आवश्यकता नहीं है कि वे मिलें। केवल वे ही, जो कि जड़ों में एक नहीं हैं मिलने का प्रयत्न करेंगे, क्योंकि आधारत: वे जानते हैं कि कोई मिलने नहीं है। मुझसे कई लोगों ने पूछा कि मैं क्यों सभी धर्मों का समन्वय करने का प्रयत्न नहीं करता? गांधीजी ने किया है, कई थियोसोफी के लोगों ने किया है—उन्होंने सभी धर्मों का महान समन्वय करने का प्रयत्न किया है। मैं कहता हूं कि यदि आप प्रयत्न करते हैं, तो आप यह बतलाते हैं कि कोई समन्वय नहीं है; ऐसा प्रयत्न नहीं बतलाता है कि कहीं पर सभी धर्म विभाजित हैं। मैं ऐसा बिलकुल भी अनुभव नहीं करता। अपने मूल में, जड़ों में वे सब एक हैं। शिखर पर, चोटी पर वे बंटे हुए हैं, और वे बंटे हुए होने चाहिए। प्रत्येक शिखर की अपनी सुंदरता है। उसे क्यों नष्ट करें? क्यों एक असत्य बात खड़ी करें, जो कि नहीं है! एक शिखर एक शिखर ही रहे—अकेला, अविभाज्य। पृथ्वी पर वे एक हैं। इसलिए कुरान को केवल कुरान ही होना चाहिए। कुछ भी गीता अथवा रामायण में से उस पर आरोपित नहीं करना चाहिए—कुछ भी अंतर-प्रवेश नहीं, कोई मिश्रण नहीं होना चाहिए। कुरान अपनी पूरी शुद्धता में कुरान ही है। वह एक शिखर है, एक अनुपम शिखर, क्यों उसे नष्ट करें?

यह आरोपण न करना तभी संभव है, जबकि आप जड़ों में, पृथ्वी में उनकी गहरी एकता से अवगत हैं। सभी धर्म अपनी मूल जड़ों में एक ही हैं, परन्तु अपनी अभिव्यक्ति में कभी भी नहीं और वे होने भी नहीं चाहिए। और इस तरह संसार और अधिक विकास करता है। जैसे-जैसे मनुष्य चेतना ज्यादा चेतन होती है, वह ज्यादा अखंड होती है। तब और अधिक धर्म होंगे, न कि कम। अंतत: यदि प्रत्येक मनुष्य एक शिखर हो जाए, तो उतने ही धर्म होंगे, जितने कि मनुष्य होंगे। क्या जरूरत है किसी को मोहम्मद का अनुगमन करने की, यदि वह स्वयं ही एक शिखर हो सकता हो? क्या आवश्यकता है किसी को कृष्ण का अनुकरण करने की, यदि वह स्वयं ही एक शिखर हो सके? यह बड़ा दुर्भाग्य है कि किसी को भी किसी अन्य का अनुकरण करना पड़ता है।

यह एक अनिवार्य बुराई है। यदि आप शिखर नहीं हो सकते, तो आपको अनुकरण करना पड़ेगा, परन्तु अनुकरण इस प्रकार करें कि जितनी जल्दी हो सके आप स्वयं ही एक शिखर हो जाएं, वही अच्छा है। हमारे पास एक सुंदर संसार होगा, एक बहुत्तर जगत और अधिक मानवता के साथ, यदि प्रत्येक एक अपूर्व शिखर हो जाए। परन्तु वह शिखर केवल अविभाज्यता के द्वारा ही आ सकता है; अहंकार को व झूठे व्यक्तित्व को गला कर अपने सच्चे स्वभाव में केंद्रित होने से अपने सच्चे शुद्ध स्वरूप में स्थित होने से ही वह उपलब्ध हो सकता है। तब आप एक घाटी की भांति हो जाते हैं, और तब प्रतिध्वनियां होती हैं।

तीसरा प्रश्न: भगवान श्री, आपने कल तीन तरह से सुनने के विषय में बतलाया। प्रथम, बुद्धि द्वारा सुनना द्वितीय, भाव, सहानुभूति व प्रेम द्वारा सुनना; तृतीय, समग्रता से सुनना—बीइंग के द्वारा यानी श्रद्धा के द्वारा। पहले दो प्रकार के सुनने के तात्पर्य को ध्यान में रखते हुए, कैसे कोई तृतीय प्रकार के सुनने की कला तक पहुंचे? और क्या तीसरे प्रकार के सुनने में बुद्धि और भाव जुड़े हुए और संलग्न हैं?

बुद्धि से सुनने का अर्थ होता है कि जब आप सुन रहे हैं तो साथ ही साथ आप तर्क भी कर रहे हैं। एक लगातार बहस चालू है। मैं आपसे कुछ कह रहा हूं, आप सुन रहे हैं और भीतर लगातार तर्क चल रहा है कि

क्या सही है और क्या गलत है! आप अपनी धारणाओं, अपने आदर्शों, अपने तरीकों से तुलना कर रहे हैं। जब आप मुझे सुन रहे हैं, जब आप लगातार यह देख रहे हैं कि क्या मैं आपके विचारों से एकमत हो रहा हूं या नहीं, कि क्या मैं आपके अनुसार ठीक हूं या नहीं, कि क्या आप मुझ पर भरोसा कर सकते हैं या नहीं, कि क्या मैं आश्वस्त कर पा रहा हूं या नहीं। इस तरह कैसे संभव है सुनना? आप अपने आप से बुरी तरह भरे हुए हैं, इसलिए बड़ा चमत्कार है कि भीतर के इतने शोरगुल में भी आप कुछ सुन पाने में सफल हो जाते हैं! और फिर भी जो कुछ आपने सुना होगा, वह वही नहीं होगा जो मैंने कहा होगा; वह हो ही नहीं सकता। जब मन कई विचारों से भरा हुआ हो, तो जो कुछ भी उस तक आता है, उसे वह अपने रंग देता चला जाता है। तब वह नहीं सुनता जो कि कहा जा रहा है, बल्कि वह जो कि वह सुनना चाहता है। वह चुनाव करता है, वह छोड़ता है; वह अपने अर्थ लगता है। तभी केवल कुछ भीतर घुस पाता है। पर अब उसकी दूसरी ही शक्ल हो जाती है। यह तात्पर्य है बुद्धि द्वारा सुनने का।

यदि आप, जो कुछ भी कहा जा रहा है उसे गहराई से समझना चाहते हैं, तो आपको इस भीतरी शोरोगुल को बंद करना पड़ेगा। आपको उसे बंद कर ही देना चाहिए। वह चालू ही न रहे। अन्यथा आप लगातार अपने द्वारा ही ऐसी संभावनाएं नष्ट कर रहे हैं जिससे कि आप पर कुछ भी घटित हो। आप चूक सकते हैं, और प्रत्येक बहुत कुछ चूक रहा है। हम अपने ही मन के घेरे में बंद रहते हैं और वही घेर हम सब जगह साथ ले जाते हैं। इसलिए जो भी हम देखते हैं, जो भी हम सुनते हैं, जो भी हमारे चारों ओर हो रहा होता है, वह कभी भी सीधे हमारे भीतर तक नहीं पहुंचाया जाता। मन सदैव ही बीच में आ जाता है अपनी चालाकियां दिखलाने।

यह ध्यान रखना चाहिए कि यह हो रहा है। यह पहला कदम है, भीतर जाने के लिए। दूसरी श्रेणी की सुनने की कला तक पहुंचने के लिए यह पहली बात है कि आपका मन हो भी कर रहा हो, उसके प्रति होश रहे। वह बीच में आ रहा है। जहां भी आप जाते हो, वह आपसे पहले ही पहुंच जाता है। यह कोई छाया की तरह नहीं कि आपके पीछे-पीछे आए। यह तो पहले चला जाता है और आपको उसके पीछे जाना पड़ता है। यह आपसे पहले चला जाता है और हर वस्तु को रंग दे देता है। और इस तरह आप कभी भी किसी वस्तु के सत्य रूप से परिचित नहीं हो सकते। मन एक कल्पना निर्मित करता है। आपको मन के इस तरह काम करने की व्यवस्था से अवगत हो जाना चाहिए।

परन्तु हम कभी भी इस बात को नहीं जान पाते, क्योंकि हम तो मन में तादात्म्य जोड़े होते हैं—हम कभी नहीं जान पाते कि मन कुछ अपने आप करता चला जाता है। जब मैं कुछ कहता हूं और वह आपके विचार से मेल नहीं खाता, तब ऐसा नहीं होता कि आप सोचें कि आपका मन विचार से मले नहीं खा रहा, बल्कि आप स्वयं नहीं मान पाते। आप में और आपके मन के बीच कोई अंतराल नहीं है; आप तादात्म्य जोड़े हैं; और वस्तुतः यही सारी समस्या है। और यही एक तरीका है जिसे कि मन आपके साथ चालाकी कर सकता है। आप एक विचार अथवा एक विचार की प्रक्रिया से अपना तादात्म्य जोड़ लेते ही। और यह बड़ा विचित्र है; क्योंकि केवल दो दिन पहले वह आपका विचार नहीं था। आपने उसे कहीं सुन लिया। अब आपने उसे पकड़ लिया और अब वह आपका हो गया! और अब यह विचार कहेगा—नहीं, यह बात ठीक नहीं है, क्योंकि यह मेरे विचार के अनुसार नहीं है। आप यह अंतर नहीं महसूस कर पाएंगे कि यह तो मन बोल रहा है, स्मृति बोल रही है। आप नहीं देख पाएंगे कि यांत्रिकता बोल रही है। और आपको उससे अलग रहना चाहिए। यहां तक कि यदि आपको तुलना भी करनी हो, जांचना भी हो, तो भी आपको अलग रहना चाहिए—अलग अपनी स्मृति से, अपने मन से, अपने अतीत से। तब भी बहुत सूक्ष्म तादात्म्य होता है। मेरा मन भी मैं हूं। इसलिए मैं कहता हूं कि मैं कम्युनिस्ट हूं या मैं कैथोलिक हूं, या हिंदू हूं। मैं कभी भी नहीं कहता

कि मेरा मन इस तरह से पाला-पोसा गया है कि मेरा मन हिंदू है। यही सत्य बात भी है। आप हिंदू नहीं हैं। आप कैसे हिंदू हो सकते हैं? यह तो बस मन है। यदि आप हिंदू हैं, तो फिर आपके रूपांतरण की कोई संभावना नहीं है।

मन बदला जा सकता है और आप सदा इस योग्य बने रहें कि उसे बदल सकें। यदि आप उसके साथ तादात्म्य जोड़ेंगे, तो आप अपनी स्वतंत्रता खो देंगे। बड़ी से बड़ी स्वतंत्रता है-अपने मन से स्वतंत्र होना। मैं कहता हूं, सबसे बड़ी स्वतंत्रता अपने मन से मुक्त हो जाने में है, क्योंकि यह बहुत सूक्ष्म दासता है-इतनी गहरी कि आप इसे कभी दासता अनुभव ही नहीं कर पाते हैं। यह कैदखाना ही आपका घर बन जाता है।

सदैव सजग रहें कि आपका मन आपकी चेतना नहीं है। और जितने ही आप सजग रहेंगे, आप पाएंगे कि चेतना एक बिलकुल ही भिन्न बात है। चेतना ऊर्जा है। मन मात्र विचार है,आप उसके मालिक हो जाएं। उसे अपना मालिक न बनने दें। उसे स्वयं से पहले कहीं न जाने दें।, उसे अपने पीछे-पीछे आने दें। उसका उपयोग करें, परन्तु उसके द्वारा आप उपयोग न किए जाएं। वह एक यंत्र है, परन्तु हम उसके साथ तादात्म्य जोड़े बैठे हैं। इसलिए इस तादात्म्य तोड़ें। स्मरण रखें कि आप मन नहीं हैं।

परन्तु वास्तव में तथाकथित धार्मिक लोग सदैव याद रखते हैं कि हम शरीर नहीं हैं। वे कभी भी स्मरण नहीं रखते कि हम मन नहीं हैं। और शरीर की भी बंधन नहीं है। मन ही बंधन है, और वस्तुतः आपका शरीर प्रकृति से आता है, परमात्मा से आता है और आपका शरीर प्रकृति से आता है, परमात्मा से आता है और आपका मन समाज से आता है। इसलिए शरीर के पास सौंदर्य है, परन्तु मन के पास कदापि नहीं। मन हमेशा ही कुरूप है। वह संस्कारित है, एक झूठा निर्माण है। शरीर एक सुंदर संदेश है। यदि आप मन को गिरा सकें, तो आप शरीर के साथ कोई संघर्ष नहीं पाएंगे। शरीर तब उस विराट के लिए एक द्वार बन जाता है-उस असीम विस्तार के लिए। शरीर में कुछ तो कुरूप नहीं। वह तो स्वाभाविक फूल का खिलना है। परन्तु तथाकथित धार्मिक लोग हमेशा ही शरीर के विरोध में रहे हैं और मन के पक्ष में रहे हैं। उन्होंने बड़ा भारी उत्पात पैदा किया है। उन्होंने बड़ी अजीब उलझन पैदा की है। उन्होंने सारी संवेदनशीलता समाप्त कर दी, क्योंकि शरीर ही सारी संवेदनशीलता का स्रोत है। एक बार आप शरीर के खिलाफ हो जाएं, आप संवेदनशील हो जाएंगे।

मन मात्र अतीत के अनुभव, ज्ञान व सूचनाओं का संकलन है। वह केवल एक कम्प्यूटर है। हम उससे ही तादात्म्य बनाए हुए हैं! कोई ईसाई है; कोई हिंदू है, कोई कम्युनिस्ट है; कोई कैथोलिक है; कोई यह है, कोई वह है। कोई भी स्वयं नहीं है, बल्कि सदैव ही किसी अन्य से कहीं और जगह तादात्म्य बनाए है। इसे स्मरण रखें। इसके प्रति सजग रहें और अपने मन व स्वयं के बीच एक दूसरी बनाए रखें। कभी भी स्वयं के व अपने शरीर के बीच दूरी न बनाए। अपने व अपने मन के बीच ही दूरी बनाए। तब आप और अधिक जीवंत होंगे, बच्चे के अधिक समान। होंगे, ज्यादा निर्दोष और ज्यादा सजग होंगे। इसलिए पहली बात दूरी बनाने की है-तात्पर्य कि तादात्म्य न जोड़े। याद रखें कि आप मन नहीं हैं, तब पहले प्रकार का सुनना दूसरी प्रकार के सुनने में परिवर्तित हो जाएगा।

दूसरी प्रकार का सुनना भावात्मक है-गहरे में अनुभूत, सहानुभूतिपूर्ण। यह एक प्रेमपूर्ण रुख है। आप कोई संगीत सुन रहे हैं या कोई नृत्य देख रहे हैं, तब आप बुद्धि की बात याद नहीं रखते। आप उसमें भाग लेने लगते हैं। जब आप एक नृत्य को देख रहे होते हैं, आपके पांव भी उसमें भाग लेने लगते हैं। जब आप एक संगीत सुनते हैं, आपके हाथ भी उसमें भाग लेने लगते हैं। आप उसके एक हिस्से होने लगते हैं। यह एक सहानुभूतिपूर्ण तरीका है सुनने का, जो कि बुद्धि से ज्यादा गहरा है। जब आप अपने हृदय से सुनते हैं और उसे अनुभव करते हैं, तो आप ऊपर उठ गए महसूस करते हैं। आप ऐसा महसूस करते हैं जैसे कि कहीं

और उठा कर ले जाए गए हों। तब आप इस दुनिया में नहीं होते। वास्तव में तो आप इसी दुनिया में होते हैं, परन्तु आप ऐसा अनुभव करते हैं जैसे कि आप इस दुनिया में नहीं हैं। क्यों? क्योंकि आप बुद्धि की दुनिया में नहीं होते। एक भिन्न ही आयाम खुलता है और आप उसमें अपने को प्रक्रिया रूप से पाते हैं।

बुद्धि सदैव ही एक दर्शन है–बाहर खड़ी हुई–अंदर कभी भी नहीं। इसलिए जितनी अधिक बुद्धि संसार में बढ़ती है, उतने ही हर बात में हम निष्क्रिय दर्शक होते जाते हैं। आप नहीं नाचेंगे। परन्तु आप दूसरों को नाचते हुए देखेंगे! यदि ऐसा दिन-प्रतिदिन होता गया जैसा कि हो रहा है, तो जल्दी ही आप कुछ भी नहीं कर रहे होंगे। आप सिर्फ दूसरों की ओर देखते रहेंगे। यह संभव है। एक दिन आप प्रेम भी नहीं करेंगे। यह संभव हो गया है। आप दूसरों को प्रेम करते हुए देखेंगे। आप एक फिल्म में क्या देखते हैं? दूसरों को प्यार करते हुए। आप सिर्फ एक देखने वाले हैं; एक मृत, निष्क्रिय दर्शक। आप दूसरों को खेलते हुए देखते हैं। आप दूसरों को गाते हुए, नाचते हुए देख रहे हैं।

किसी स्थान पर काम के एक चरित्र ने कहा है–प्रेम मेरे लिए नहीं है! हमारे नौकर मेरे लिए वह कर लेंगे। वास्तव में, धनिक के लिए प्रेम भी उसके नौकरों द्वारा किया जाना चाहिए। वह क्यों करें? तर्क वही है। यदि नौकर आपके लिए संगीत बजा सकते हैं, यदि नौकर आपके लिए प्रार्थना कर सकते हैं, तो फिर प्रेम क्यों नहीं कर सकते? एक नौकर आपके लिए मंदिरों में पूजा कर रहा है, तो फिर क्यों नहीं? यदि नौकर का उपयोग आपके और परमात्मा के बीच किया जा सकता है, तो क्यों नहीं आपके और आपके प्रेमी अथवा प्रेमिका के बीच उसका उपयोग किया जा सकता? उसमें फिर क्या गलती है? तर्क तो वही है। और वास्तव में, जो धनिक हैं, वे प्रेम भी अपने आप नहीं करेंगे, क्योंकि उनके लिए वह काम नौकर कर सकते हैं। केवल गरीब ही अपने लिए प्रेम करेंगे और उसके कारण बहुत विपत्ति में फंसेंगे।

हर बात, हर काम दूसरों द्वारा कराया जा सकता है। आप मात्र एक दर्शक हो सकते हैं, क्योंकि बुद्धि एक दर्शक है, कभी भी भागीदार नहीं। यदि हम बुद्धि के चारों ओर दुनिया बनाए तो यह क्रिया शून्य देखना घटित होगा।

द्वितीय केंद्र अधिक संलग्न हो गया है, तो आप उसमें भाग लेने लगेंगे। मैं कहता हूं कि आप अधिक समझने लगेंगे, यदि आप भाग लेने लगे, क्योंकि जिस क्षण भी आप सहानुभूतिपूर्ण होते हैं, आपका मन खुल जाता है–अधिक खुल जाता है उससे जब कि आप लगातार अपने से संघर्ष में होते हैं। मन अब खुला है, ग्राहक है, निमंत्रण देता हुआ है। इस तरह कोई भाव द्वारा सुन सकता है। परन्तु एक गहराई और जो भावना से भी अधिक गहरी है और उस गहराई को ही मैं समग्र रूपेण सुनना कहता हूं–अपनी पूरी सत्ता से। भाव भी एक भाग ही है। बुद्धि भी एक भाग है, भाव भी एक भाग है। क्रिया का स्रोत दूसरा ही है। आपके अस्तित्व में बहुत से भाग हैं, आपके बीइंग में, स्वरूप में। आप के द्वारा अधिक अच्छा सुन सकते हैं, परन्तु फिर भी वह एक भाग ही है। जब आप अपने भाव से सुन रहे हैं, तब आपकी बुद्धि सा जाएंगी, अन्यथा वह दखल देगी।

तृतीय है समग्रता से सुनना–न केवल भाग लेना, बल्कि उसके साथ एक हो जाना भी हो रहा है। कोई एक बुद्धि से नृत्य देखता है, दूसरा नृत्य को अनुभव करता है और उसमें भाग लेने लगता है। जब कि आप अपनी सीट पर बैठे हैं, नर्तक नाच रहा है, तब आप उसमें हिस्सा लेने लगते हैं, आप ताल को मिलाने लगते हैं। और तीसरा है, नृत्य ही हो जाना स्वयं–नर्तक नहीं, बल्कि नृत्य ही। पूरा होना संलग्न हो गया। आप इतने भी बाहर नहीं हैं कि उसे अनुभव कर सकें। आप वही हैं। इसलिए स्मरण रखें कि गहन से गहन ज्ञान तभी संभव है, जबकि आप उसके साथ एक हो गए हों। यह श्रद्धा से होता है।

इसे कैसे पाएं? अपनी बुद्धि के प्रति सजग रहें। अपने मन से तादात्म्य न जोड़ें। फिर दूसरे पर आए–भावना पर। तब फिर ध्यान रहे कि भावना भी एक हिस्सा ही है और आपका पूरा अस्तित्व मृत पड़ा है। वह वहां

नहीं है। इसलिए उस समग्र को आगे लाएं। अब आप समग्र को आगे लाते हैं, तो ऐसा नहीं है कि बुद्धि को मान कर दिया गया है अथवा भावना को मना कर दिया गया है। आप ही उनमें हैं, परन्तु एक भिन्न ही समन्वय में। कुछ भी निषेध नहीं किया गया है। सब कुछ वहां पर मौजूद है, परन्तु एक भिन्न ही ढांचे में। आपका समग्र अस्तित्व ही अब हिस्सा ले रहा है–उसमें है–वही हो गया है।

इसलिए जब आप सुनें, तो इस तरह से सुनें जैसे कि आप सुनना ही हो गए हैं। जब मैं कुछ कह रहा हूं, तो उसमें लड़ें नहीं, उससे सहानुभूतिपूर्ण न हों, बल्कि वही हो जाएं। समग्र हो जाए, वही हो जाएं। उसे आने दें और उसे भीतर गूंजने दें बिना किसी मुकाबले के, बिना किसी भावना के, वरन पूरी समग्रता से। उसे साथ प्रयोग करें और आप जीने का एक नया आयाम अनुभव करेंगे–खाली सुनने के लिए ही नहीं, वरन प्रत्येक चीज के लिए। आप उस तरह से खाना खा सकते हैं; आप उस भांति चल सकते हैं; आप उस तरह से सो सकते हैं; आप उस भांति जी सकते हैं।

एक दिन कबीर की गायों के लिए भोजन नहीं था, इसलिए उसने अपने बेटे कमाल को खेत से घास काट लाने को कहा। कमाल जाता है और लौट कर नहीं आता है। दोपहर गुजर गई, शाम भी आ रही है। कबीर प्रतीक्षा करते हैं और गाए भूखी हैं। कहां गया कमाल? तो कबीर कमाल की खोज में जाते हैं।

कमाल एक घास के खेत में खड़ा है। सूरज डूब रहा है। हवा चल रही है। घास लहरों की तरह झूम रही है और कमाल भी लहरों की तरह उनके साथ झूम रहा है। सारा दिन इस तरह बीत गया है और कबीर उसके पास जाते हैं और कहते हैं, कमाल, क्या पागल हो गए हो? क्या कर रहे हो?

अचानक कमाल दूसरी ही दुनिया में लौटता है और कहता है–मैं तो भूल ही गया था कि मैं कमाल हूं। मैं तो घास ही बन गया था। मैं वही हो गया था; मैं तो एक घास ही हो गया था। मैं उसी के साथ हिल रहा था, मैं उसी के साथ नाच रहा था। और मैं यह भूल ही गया कि मैं यहां किस लिए आया था। बतलाएं मुझे कि मैं यहां क्यों आया था? कबीर कहते हैं–घास काटने के लिए। इस पर कमाल हंसने लगता है और कहता है–कैसे कोई स्वयं को काट सकता है? आज तो यह संभव नहीं है। मैं फिर कभी आऊंगा और कोशिश करूंगा, परन्तु मैं वादा नहीं कर सकता, क्योंकि मैंने एक दूसरी ही दुनिया जानी है, एक दूसरा ही जगत मेरे समझ खुला है। कबीर ने उसी दिन उसका नाम कमाल रख दिया। कमाल का अर्थ होता है चमत्कार। यह एक चमत्कार है।

यदि आप किसी भी बात में समग्र हो जाएं, तो चमत्कार घटित हो जाता है। यह मात्र सुनने के लिए ही नहीं है। यह हर बात के लिए है। समग्र हो जाएं। समग्रता से गति करें। अपने को बांटें नहीं। कभी भी स्वयं को विभाजित न करें। कैसा भी विभाजन अपनी शक्ति को नष्ट करना है। कैसा भी विभाजन आत्मघातक है। यदि आप प्रेम करते हैं, तो समग्रता से करें। यदि आप सुनते हैं, तो पूरी समग्रता से सुनें। कुछ भी पीछे न बचाएं। बस बिलकुल समग्रता में बढ़े।

केवल यह समग्र गति ही आत्मानुभव लाती है, जहां कि अहंकार नहीं पाया जा सकता। बुद्धि के साथ वह पाया जाता है। भावना के साथ वह पाया जा सकता है, परन्तु वह हमारी समग्रता के साथ कभी भी नहीं पाया जा सकता। वह हमारी बुद्धि के सा पाया जा सकता है; क्योंकि बुद्धि का अपना कोई केंद्र नहीं होता। वह समग्रता के केंद्र को काम में नहीं आने देगा। बुद्धि को अपना केंद्र निर्मित करना पड़ता है। वही अहंकार बन जाता है।

भागना भी समग्र को नहीं आने देगी। भावना का अपना केंद्र हो जाएगा। वह अहंकार हो जाता है। इसलिए आदमी और औरतों के भिन्न-भिन्न प्रकार के अहंकार होते हैं। पुरुष का अहंकार बुद्धि-केंद्रित होता है और स्त्री का भाव-केंद्रित। उनके अहंकार के अलग-अलग गुण-धर्म होते हैं। इसीलिए स्त्री और पुरुषों के

भिन्न-भिन्न प्रकार के अहंकार होत हैं। उनके भिन्न-भिन्न ही गुण होते हैं अहंकार के। इसीलिए एक आदमी कभी भी स्त्री को नहीं समझ पाता और एक स्त्री एक आदमी को कभी भी नहीं समझ पाती। उनके अलग-अलग केंद्र होते हैं और अलग-अलग उनकी भाषाएं होती हैं।

जब बुद्धि कहती हैं हां, तो उसका मतलब होता है हां। जब भाव हां कहता है, तो जरूरी नहीं होता कि उसका अर्थ हो ही हो। जब भाव कहता है ना, तो उसका मतलब हो सकता है हां। वह एक निमंत्रण हो सकता है। कि आगे अभी और भी फुसलाया जाए। और यदि आप एक स्त्री को उसके शब्द पर ही लेंगे तो आप मुश्किल में पड़ेंगे, क्योंकि उसका शब्द बुद्धि से नहीं आया है। उसका चलने का अपना अलग मार्ग है, एक अलग गुण है। बुद्धि का अहंकार सीधा गणित की तरह होता है। आप उसे सीधे, साफ, सरलता से समझ सकते हैं। इसलिए एक आदमी को समझना बड़ा कठिन नहीं है, क्योंकि उसका तर्क सीधा है—दो और दो चार होते हैं। एक स्त्री को समझना कठिन बात है, क्योंकि उसका तर्क सीधा नहीं होता, वह वर्तुल में चलता है, इसलिए दो और दो कभी भी चार नहीं होते। उनसे कुछ भी बन सकता है, परन्तु चार कभी भी नहीं। उसका तर्क वर्तुल में घूमता है। भाव वर्तुल में चलता है। तर्क व बुद्धि एक सीधी रेखा में चलते हैं।

जब कुछ वर्तुल में चलता है, तो आप कभी भी निश्चित नहीं हो सकते, क्योंकि उसका तात्पर्य बिलकुल उल्टा भी हो सकता है। वह चक्र में घूमेगा और वह अपनी ही धारणा के विपरीत हो जाएगा। इसलिए एक स्त्री के साथ हर किसी को सजग रहना चाहिए, उसके लिए नहीं जो कि उसने कहा है, बल्कि जो उसका अर्थ है। जो वास्तविक कथन है उसको बहुत मान्यता नहीं देनी है—बल्कि जो कि वह अर्थ रखती है। और उसका तात्पर्य बिलकुल उल्टा भी हो सकता है। इसलिए यह हमेशा होता है कि जो बहुत बुद्धिशील लोग होते हैं। वे कभी भी अपनी पत्नियों का साथ ठीक से नहीं निभा पाते—कभी भी नहीं। सुकरात, जो एक बहुत बुद्धिशील आदमी था, बुद्धि से एक जीनियस, तर्क का हर एक पहलू जानता है, परन्तु अपनी पत्नी के साथ आराम से नहीं हो पाता था। वह समझ ही नहीं पाता था कि वह क्या कह रही है। वह समझ पाता था जो वह कहती थी, परन्तु वह नहीं समझ पाता था, जो कि उसका मतलब था। वह इतना तर्कपूर्ण था कि वह हमेशा मुददे को चूक जाता था। वह सीधा रेखा में चलता था और उसकी पत्नी वर्तुल में चलती थी।

बुद्धि का अपना अहंकार होता है—सीधा, रेखाबद्ध। भावना का अपना अहंकार होता है—वर्तुलकार। परन्तु समग्रता का कोई अहंकार नहीं होता। समग्रता ही इण्डिविजुअलिटि है, निजता है, होना है। इसलिए जब आप समग्रता को उपलब्ध होते है, तो आप न तो पुरुष होते हैं और न स्त्री। आप दोनों होते हैं और फिर भी दोनों नहीं। आप दोनों के पार होते हैं और दोनों को समझाते हैं। यही मतलब होता है—अर्द्धनारीश्वर का—आधा स्त्री, आधा पुरुष। अंतर में एक गहरी एकता हो जाती है। आपकी समग्रता एक हो जाती है—जहां कोई विभाजन नहीं।

एक बात ध्यान में रखनी है। यह कोई ठोस ढांचा नहीं है। जब मैं कहता हूं कि एक पुरुष का अहंकार बुद्धिगत होता है तो यह कोई स्थापी ढांचा नहीं है। किन्हीं क्षणों में वह भावात्मक अहंकार पर लौट कर जा सकता है। किन्हीं क्षणों में कोई स्त्री बुद्धि के अहंकार पर जा सकती है। तब चीजें ज्यादा उलझ जाती हैं। जब आदमी कठिनाई में होता है, तो वह अपने भावात्मक अहंकार पर लौट जाता है। वह रोना शुरू कर देता है और इस तरह से बात करने लगता है कि वह उसकी भी समझ में नहीं आता। और फिर बाद में वह पूछता है कि मुझे क्या हो गया था? अपने अनजाने मैं रोने लगा। मैं इस तरह व्यवहार करने लगा जो कि मुझे कतई पसंद नहीं है। एक बहुत तगड़ा आदमी किसी विशेष परिस्थिति में भावात्मक ढंग से व्यवहार करने लग सकता है। एक बहुत भावात्मक स्त्री किसी खास परिस्थिति में बिलकुल पुरुष की भांति व्यवहार कर

सकती है। एक भिन्न परिस्थिति में, अहंकार एक केंद्र से दूसरे पर बदल सकता है। यह और भी अधिक कठिनाइयां पैदा करता है। परन्तु इसके प्रति सजग होना पड़े।

भावना के साथ अथवा बुद्धि के साथ अहंकार को होना ही पड़ेगा। केवल समग्रता में ही अहंकार नहीं होता। इसलिए मैं यह आपको कसौटी बतलाता हूं, एक मापदंड कि यदि आप हैं और आप कोई मैं अनुभव नहीं करते तो आप समग्र हैं। आप यहां बैठे हैं। इस तरह सुनें जैसे आपके भीतर कोई मैं नहीं है। आपके कान हैं, आपके सुनने की सारी प्रक्रिया है, परन्तु कोई मैं नहीं है। तब आप समग्र–टोटल हैं। कैसे आप तब विभाजित होंगे बिना मैं के, बिना किसी अहंकार के? कैसे आप बंटेंगे? अहंकार ही विभाजन है।

जैसे मैंने कहा कि बहुत सारे व्यक्तित्व होते हैं, ऐसे ही बहुत सारे अहंकार होते हैं। प्रत्येक केंद्र का अपना एक अहंकार होता है। बुद्धि का अपना होता है, भाव का अपना, काम केंद्र का अपना अहंकार होता है–उसका अपना मैं होता है। यदि आप गहरे नीचे जाएं शरीर की अलग-अलग संरचना में, तो आप पाएंगे कि प्रत्येक कोष का अपना एक अहंकार होता है। वही विभाजन है। यदि आप बिना अहंकार के हैं, यदि आप कहीं पर भी बीना मैं के हैं, तो फिर आप समग्र हैं। और उसी समग्रता में–यहां तक कि एक क्षण के लिए भी यदि आप समग्र हो पाते हैं, तो आप जाग जाएंगे अचानक। और फिर कुछ भी आपको जगा सकता है–कुछ भी।

एक झेन एक मिट्टी का बरतन कुएं से ले जा रही थी। तीस साल तक आश्रम में रह कर उसने लगातार साधना की थी, हर प्रयत्न किया था, उस शांति के लिए, उस थिरता के लिए जहां कि सत्य प्रकट हो सके, परन्तु वह नहीं हुआ। अचानक पानी का बरतन गिर जाता है और फूट जाता है। वह वहां खड़ी है, पानी के बरतन को टूटते हुए देखती है और पानी बह रहा है और वह जाग जाती है। अचानक उसे वह प्रकाश उपलब्ध हो जाता है। वह दौड़ती है, वह नाचती है। वह मंदिर में चली जाती है।

उसका गुरु आता है और उसके पांव छूता है और कहता है, अब तम बुद्ध हो गई हो। तुम्हें उपलब्धि हो गयी है। परन्तु वह साध्वी पूछती है–परन्तु मुझे यह बतलाओ यह कैसे हुआ? क्योंकि मैंने बहुत कोशिश की लगातार प्रयत्न पर प्रयत्न किया तीस वर्ष तक और वह नहीं हुआ। और आज ही मैंने यह तय किया था यह सब बेकार है और यह नहीं होगा, इसलिए मैंने सारे प्रयत्न दौड़ दिए। इसलिए आज ही यह क्यों हो गया? गुरु ने जवाब दिया–क्योंकि पहली बार तुम समग्र हुई बिना अहंकार के। प्रयत्न अहंकार निर्मित करता है। वह सारा प्रयत्न ही बाधा था। अब तुम बिना किसी प्रयत्न के, बिना किसी आकांक्षा के, पानी का बरतन ले जा रही थी और अचानक घड़ा गिर गया है और फूट गया है और अचानक तुम सजग हो जाती हो बिना किसी भी अहंकार के। वह सुनना ही, वह बरतन। का फूटना ही, टूटने की आवाज, पानी का बहना और तुम वहां हो बिना किसी अहंकार से समग्रता से सुनती हुई। घटना घट गई। इसलिए जब मैं कहता हूं समग्रता से सुनें, तो मेरा तात्पर्य यही है।

आखिरी प्रश्नः भगवान श्री, वे क्या गुण है और संकेत हैं, जो कि यह बतलाते हैं कि कोई उस ब्रह्म की ध्वनि ओम को पहुंच गया है या नहीं?

यह एक कठिन है–कठिन, क्योंकि घटना सदैव ही भीतर घटती है, एक तरह से व्यक्तिगत रूप से। और उसे अथवा उसके बारे में बाहर से कुछ भी नहीं जान सकते। आप बाहर से कभी भी निश्चित नहीं हो सकते कि क्या कोई उस ब्रह्म की ध्वनि ओम को उपलब्ध हो गया है। जितने ही गहरे आप जाते हैं, उतनी ही आंतरिक वह घटना हो जाती है। लोगों की दुनिया है बाहर, जहां कि आप निश्चित कर सकते हैं। इसलिए कैसे कोई जाने कि वह कॉस्मिक साउंड–ब्रह्म की ध्वनि ओम को उपलब्ध कर चुका है, कि वह गहरी से गहरी जमीन पर पहुंच चुका है?

आप बाहर से तय नहीं कर सकते। हां, सचमुच बहुत सी घटनाएं होने लगेंगी उस व्यक्ति के द्वारा जिन्हें कि बाहर से जाना जा सकता है कि वह मनुष्य उस ब्रह्म की भूमि को पहुंच चुका है। फिर भी यह एक अनुमान ही होगा जो कि उसके व्यवहार से निकाला जाएगा। और व्यवहार झूठा भी हो सकता है। व्यवहार नकल भी किया जा सकता है बिना एक बुद्ध हुए। और कभी-कभी यह भी होता है कि आप बुद्ध से ज्यादा अच्छी तरह नकल कर पाएं, क्योंकि बुद्ध तो इस बात के प्रति असजग हैं। जो कुछ भी हो रहा है, वह मात्र हो रहा है। इसलिए आप और भी भली प्रकार नकल कर सकते हैं। आप उसका अभ्यास कर सकते हैं। आप उसमें दक्ष हो सकते हैं। और बुद्ध भी आपसे प्रतियोगिता नहीं कर सकते हैं, क्योंकि उन्होंने उसे एक भी बार नहीं दोहराया है।

इसलिए बाहर से नकल करना संभव है—बहुत आसानी से संभव है। प्रामाणिकता को उपलब्ध करना बहुत ही कठिन है। नकल करना सरल है, बहुत ही सरल; क्योंकि आपके भीतर तो आप वही हैं, आप बाहर से कुछ और बन सकते हैं। इसलिए बाहर से यह कहना कठिन है कि किसी के भीतर क्या यह घट गया है। और बाहर से निश्चित नहीं कर सकते। अगर आप पूछते हैं कि कैसे जानूं कि मैंने भीतर से कॉस्मिक साउंड, ब्रह्मनाद को प्राप्त कर लिया है या नहीं? तो मैं कहूंगा कि जब आपने उसे पा लिया होगा, तो आप जान लेंगे। यदि कोई पूछे कि मैं कैसे जानूं कि मैं जिंदा हूं या मर गया? कैसे मैं जानूं? तो हम उसे क्या कहेंगे? हम कहेंगे कि यदि तुम इतना भी जब सोच सकते हो कि तुम मर गए हो या जिंदा हो, तो फिर तुम जीवित हो। जब आप कॉस्मिक साउंड, ब्रह्म-ध्वनि को पहुंचते हैं, जब आप अपने अस्तित्व की भूमि पर पहुंचते हैं, जब आप ओम की ध्वनि को सुनते हैं जो कि तुम्हारे द्वारा उच्चरित नहीं है, किसी के द्वारा उच्चरित नहीं है, वरन चारों ओर एक ब्रह्म-ध्वनि की तरह हो रही है—तो तुम जानते हो।

यह घटना इतनी प्रामाणिक होती है कि कभी सवाल ही नहीं उठता है कि मैं वास्तविक हूं या नहीं। आप धूमिल हो जाते हैं। आप वास्तविक हो जाते हैं। आप मात्र एक छाया, एक प्रेम हो जाते हैं। अब आपकी वास्तविकता जैसी पहले कभी थी, उसके जैसी नहीं होती। वास्तविक चारों तरफ है परन्तु वह एक सपना भी हो सकता है। आप सपने में भी ऐसा अनुभव करते हैं कि हर चीज वास्तविक है। इसलिए कैसे तय करें कि जो यह ध्वनि आप सुन रहे हैं वास्तविक है या कोई सपना है? इसका निष्कर्ष किसी दूसरे ही मार्ग से आता है। आप फिर वापस वैसे ही कभी भी नहीं हो सकेंगे।

यह ध्वनि का सुनना आपके अस्तित्व में एक विस्फोट होगा। आप फिर से वही नहीं हो सकेंगे। आप यहां तक कि अपने अतीत से अपने आपको नहीं जोड़ सकेंगे। वह बस गिर जाएगा। आप उसे स्मरण रखेंगे जैसे कि यह किसी और का अतीत था। आपकी स्मृति अब आपकी नहीं होगी। इस अनुभव के बाद, आपका दोबारा जन्म होगा और आपका दूसरा जन्म ही इस बात के लिए सबूत होगा। आप फिर से वही नहीं होंगे। पुराना गिर गया। आप उस पुराने आदमी को वापस नहीं पा सकेंगे। अब वह कहीं नहीं है। वह वहां था। अब वह वहां नहीं है। आपके लिए यही एक सबूत होगा कि आपने सुन लिया है।

परन्तु मैं सोचता हूं कि एक तीसरी बात और है इस संबंध में। कोई ओम का उच्चारण करता चला जा सकता ओम वह दोहराए चला जा रहा है उसमें और जो ओम ध्वनि आई है उसमें कोई अंतर है अथवा दोनों वही हैं? आप उसके अनुभव करेंगे, क्योंकि आप ओम के केंद्र हैं जिसको कि आप उच्चरित करते हैं, और तब वह बाहर गूंजती है। यह एक आयाम है। आप इसे निर्मित करते हैं, जैसे कि आप एक शांत झील में पत्थर फेंकते हैं। पत्थर केंद्र बन जाता है और फिर लहर पैदा होती हैं जो कि बाहर की किनारों की ओर जाती हैं। जब आप कहते हैं—ओम, तब आप अपने भीतर एक केंद्र निर्मित करते हैं—आप एक पत्थर डालते हैं और तब ध्वनि बाहर, और बाहर, और बाहर जाती है—दूर बहुत दूर आपसे। यह एक आयाम है।

आत्मा पूजा भाग-१

जब आप ओम की ध्वनि सुनते हैं—कॉस्मिक साउंड, तो वह भिन्न होती है। वह आती है, वह कभी भी जाती नहीं। वह आपसे दूर जाती हुई नहीं है। वह आपके पास आती हुई है और उसका केंद्र कहीं भी नहीं मिलता। वह बस आती जाती है, आती जाती है, और आती जाती हैं। आप उससे भर जाते हैं। आप भिन्नता देखते हैं। वे आती ही जाती हैं। वे कभी भी रुकती नहीं। इसलिए यह भी एक आयाम है, दिशा है। यदि ध्वनि का केंद्र आप हैं, तो लहरें आप से बाहर जाती है; क्योंकि ओम आपके द्वारा उच्चारित किया जाता है। यदि आप केंद्र नहीं हैं, तो ध्वनि तरंगें आती जाती हैं और आती ही जाती हैं, कहीं किसी जगह से! केंद्र का पता नहीं और उसका कोई पता कभी नहीं चलता

किसी ने केवल बोहमे से पूछा—परमात्मा का केंद्र कहां है? जगत का केंद्र कहां है? उसने कहा—या तो सब कहीं या फिर कहीं नहीं। दोनों का एक ही अर्थ है।

मैं दूसरी तरह से भी कह सकता हूं। साधारणत: साधक ही परमात्मा की खोज में जाते हैं, परन्तु जब तक कि परमात्मा स्वयं तुम्हारे पास नहीं आता, तब तक आप एक कल्पना में, एक स्वप्न में हो। यदि आप ब्रह्म की, परमात्मा की खोज में जाते हैं, केंद्र की खोज में जाते हैं, तो आप खोजते ही रहेंगे और आप उसे कभी भी नहीं खोज सकेंगे। कैसे आप केंद्र को खोज सकते हैं? केंद्र ही आप तक आ सकता है। इसलिए यह हमेशा ही झूठा संबंध है, कि साधक परमात्मा की तरफ जा रहा है—वास्तविक संबंध भिन्न ही है—परमात्मा ही साधक की तरफ आ रहा है। जब आप तैयार होते हैं, वह आता है। जब आप खुले होते हैं, तो वह अतिथि बनता है। जब आपका निमंत्रण योग्य वह समग्र होता है, तो वह वहां होता है। वह सदैव ही आता हुआ है, न कि जाता हुआ है। इसलिए वस्तुत: कोई भी घटा मनुष्य के परमात्मा को खोजने की नहीं है, वरन परमात्मा के मनुष्य को खोजने की है।

परन्तु आप छिपे हुए हैं, वह आपको नहीं खोज सकता। जब कभी वह आता है, आप बच जाते हैं। आप बंद हैं, कभी भी खुले नहीं। वह द्वार खटखटाता ही रहता है और आपके द्वार बंद ही पडे हैं। इसलिए जब वह ओम आता है, जब यह आपके पास आ रहा होता है, आप बस भर जाते हैं। आप बस इसमें नहा जाते हैं और स्रोत का पता नहीं चलता। यदि आप उस स्रोत का पता लगा लें कि वह कहां से आ रहा है, तो आप पाएंगे कि कोई बाहर से ओम की ध्वनि कर रहा है और वह आपके पास आ रही है। कोई किसी साज पर ओम बजा रहा है और वह आ रहा है।

उसका कोई स्रोत नहीं है। इसलिए रहस्यवादियों ने सदैव ही कहा है कि परमात्मा का कोई उदगम नहीं है। वह उदगम रहित है। वह कहीं से भी नहीं आता—मात्र आकाश से आता है और वह यहां है। जब आप ऐसा अनुभव करते हों, तभी आप जानते हैं कि अब ओम कॉस्मिक है। वह अब आपसे संबंधित नहीं।

झेन में, वे लोग कोआन का, अर्थहीन पहेली का ध्यान के लिए उपयोग करते हैं। रिंझाई, हमेशा ही अपने शिष्यों को एक हाथ की ताली की कोआन देगा। वह असंभव बात है! कैसे आप एक हाथ की ताली सुन सकते हैं? इसलिए जब भी कोई साधक उसके पास जाएगा, वह कहेगा—पहले जाओ और पता लगाओ कि एक हाथ की ताली की आवाज कैसी होती है। उसे सुनो, और फिर मेरे पास आना और मुझे कहना। यह बड़ा अर्थहीन लगता है। परन्तु जब रिंझाई जैसा आदमी ऐसी बात कहे किसी को, तो वह जाएगा और दरवाजा बंद करेगा और बैठ जाएगा ध्यान में और सोचेगा।

वह एक घंटे लौटकर आएगा और कहेगा—क्या मूर्खता की बात आप भी पूछते हैं! क्या यह संभव है? रिंझाई कहेगा, मैंने सुनी है, अब तुम जाओ और फिर से प्रयत्न करो। और मैंने प्रयत्न किया है, और मैंने सुना है। इसलिए तुम जाओ और प्रयत्न करो, और आ जाएगी।

रिंझाई का शिष्य रोजाना आता रहेगा। हर सुबह वह गुरु के दर्शन करेगा और गुरु उससे पूछेगा—क्या तुमने सुना? वह कहेगा—नहीं, मैंने तो नहीं सुना अब तक। और गुरु भरसक प्रयत्न के लिए कहेगा। वह फिर उस ध्वनि की कल्पना करने लगेगा, क्योंकि यह बड़ा निराशाजनक है कि हर रोज जाओ और गुरु को कुछ भी कहने के लिए नहीं हो। इसलिए वह कहेगा—हां, मैंने सुन लिया है। वह बिलकुल पत्तों में से हवा के चलने जैसी है। परन्तु फिर गुरु कहेगा—नहीं, वह नहीं है, क्योंकि हवा और पत्तियां दो वस्तुएं हैं। वह तो एक की है। पत्तों में से हवा के चलने की बहुत सी साधारण सी आवाज है। दो वस्तुएं रगड़ पैदा करती हैं, इसलिए यह भी दो हाथों की आवाज हुई। तुम मुझे मूर्ख नहीं बना सकते। हवा का पत्तों में से चलना—यह दो हाथों की आवाज हुई। वह शिष्य बार-बार फिर आएगा और कहेगा—मैंने पानी की बूंदों की आवाज छत पर पड़ती सुनी है। इस तरह वह कितनी ही बातें लेकर आएगा और उसे हर बार मना कर दिया जाएगा।

और यह कई महीने चलेगा अचानक रिंझाई पूछेगा—वह आदमी कहां है? वह नहीं आया और इतने दिन हो गए। जाओ और पता लगाओ कि वह क्या कर रहा है। और उसे उसकी किसी कोठरी में ढूंढ लिया जाएगा अथवा वह किसी पेड़ के नीचे खोया हुआ मिलेगा और फिर उसे गुरु के पास लाया जाएगा। और गुरु उसे कहेगा—अब तुमने उसे सुन लिया? क्या सुन लिया तुमने? और वह कहेगा, मैंने सुन लिया। हां, मैंने उसे सुन लिया।

क्या ध्वनि सुन ली उसने? केवल एक ही ध्वनि है। वह ध्वनि ब्रह्म के ओम की है जो कि बिना किसी घर्षण के पैदा होती है—दो वस्तुएं नहीं, केवल ध्वनि। वह किसी ताली बजाने से उत्पन्न नहीं होती। परन्तु जिस क्षण भी कोई कहेगा कि उसने उसे सुन लिया है, वह एक दूसरा ही आदमी होगा। आप फिर वही आदमी नहीं हो सकते। और भेद सदैव यही होगा कि ध्वनि कहीं से नहीं आ रही होगी—उदगम—रहित ध्वनि, बिना उत्पन्न की हुई। तब ही वह ब्रह्म ही, ओम की ध्वनि होगी।

आज इतना ही।

बंबई, दिनांक १६ फरवरी, १९७२, रात्रि

३ निर्वासना: अज्ञात के लिए द्वार

सर्व कर्म निराकरण आवाहन।

सब कर्मों के कारण की समाप्ति ही आवाहन है।

धर्म कोई कर्म-कांड नहीं है, कोई शास्त्र-विधि नहीं है। वास्तव में, जब कोई धर्म मृत हो जाता है, वह कर्म-कांड हो जाता है। धर्म का मृत शरीर ही कर्म-कांड हो जाता है, परन्तु सब जगह कर्म-कांड ही पाया जाता है। यदि आप धर्म को खोजने जाएं, तो आप कर्म-कांड ही पाएंगे। ये सारे नाम—हिंदू, मुसलमान, ईसाई—ये धर्मों के नाम नहीं हैं। ये विशेष कर्म-कांडों के नाम हैं। कर्म-कांड से मेरा तात्पर्य है कि कुछ बाहर की ओर किया जाए ताकि आंतरिक क्रांति पैदा हो सके। यह ओर किया जाए ताकि आंतरिक क्रांति पैदा हो सके। यह विश्वास, कि कोई बाह्य क्रिया आंतरिक क्रांति उत्पन्न कर सकती है, कर्म-कांडों को जन्म देता है।

यह विश्वास क्यों पैदा होता है? यह इसलिए पैदा होता है, क्योंकि यह एक बिलकुल प्राकृतिक घटना है। जब कभी आंतरिक क्रांति होती है, जब कभी अंतस में परिवर्तन होता है, जब कभी भीतर रूपांतरण होता है, तो उसके पीछे-पीछे बहुत सी बाह्य बातें व चिन्ह प्रकट होते हैं। ये बाहरी चिन्ह अपरिहार्य हैं; क्योंकि अंतस में जो होता है, वह बाहर से जुड़ा होता है। भीतर ऐसा कुछ भी घटित नहीं हो सकता, जो कि बाह्य को प्रभावित न करे। उसका प्रभाव होगा, परिणाम होंगे, परछाइयां बनेंगी, बाह्य व्यवहार पर भी। यदि आप भीतर

क्रोध अनुभव करते हैं, तो आपका शरीर विशेष भाव-भंगिमा बनाने लगता है। यदि आप भीतर शांति का अनुभव करते हैं, तो आपका शरीर दूसरी भाव-भंगिमा बनाने लगता है। जब भीतर शांति होती है, तो शरीर इस शांति को, उस आंतरिक शांति, को व स्थिरता को कई प्रकार से प्रदर्शित करता है। परन्तु यह सदैव द्वितीय बात है, प्राथमिक नहीं; बाह्य परिणामस्वरूप है, यह कारण नहीं हैं।

यदि बुद्ध अभी यहां हों, तो हम यह नहीं देख सकते कि उनके भीतर क्या हो रहा है। परन्तु हम यह देख सकते हैं और देखेंगे कि उनके बाहर क्या हो रहा है। बुद्ध के स्वयं के लिए भीतर जो है कारण है और बाह्य है परिणाम। हमारे लिए, बाह्य पहले होगा देखने को और तब अंतस के बारे में अनुमान लगाया जाएगा। इसलिए दर्शकों के लिए बाह्य, द्वितीय आधारभूत बन जाता है, प्राथमिक बन जाता है। हम कैसे जान सकते हैं कि बुद्ध की अंतश्चेतना में क्या हो रहा है? हम उनके शरीर को देख सकते हैं उनके चलने-फिरने को, उनके हाव-भावों को। वे सब अंतस से संबंधित हैं। वे कुछ दर्शाते हैं, परन्तु वे कारण की तरह नहीं, वरन परिणाम स्वरूप हैं।

यदि आंतरिक है, तो बाह्य भी पीछे-पीछे आएगा। इसका उल्टा ठीक नहीं है। यदि बाह्य है तो अनिवार्य नहीं है कि उसका अनुगमन करेगा। कोई जरूरी नहीं! उदाहरण के लिए यदि मैं क्रोध में हूं, तो मेरा शरीर क्रोध प्रकट करेगा, परन्तु मैं अपने शरीर में क्रोध दिखला सकता हूं बिना भीतर बिलकुल भी क्रोधित हुए। एक अभिनेता यही कर रहा है। वह अपनी आंखों से क्रोध प्रकट कर रहा है, हाथों से क्रोध प्रकट कर रहा है। वह प्रेम व्यक्त कर रहा है। भीतर बिना जरा भी प्रेम अनुभव किए। वह भय प्रकट कर रहा है, उसका सारा शरीर कांप रहा है, हिल रहा है, परन्तु भीतर कोई भय नहीं। बाह्य हो सकता है बिना आंतरिक के। हम उसे आरोपित कर सकते हैं। कोई कारण, आधार, आवश्यकता अथवा अनिवार्यता नहीं है कि अंतस बाह्य का अनुगमन करे। बाह्य हमेशा अंतस का अनुगमन करता है, परन्तु इसका उल्टा कभी नहीं होता। कर्म-कांड इसी भ्रम के कारण पैदा होता है।

हम बुद्ध को सिद्धासन में बैठे देखते हैं--जो कि शरीर के लिए एक बहुत ही विश्राम की स्थिति हैं। यह आसान आंतरिक शांति के परिणाम स्वरूप आया है। चेतना इतनी स्थिर हो गई है कि शरीर उसका अनुगमन करता है और शरीर, साथ-साथ जो सबसे अधिक आराम का आसान हो कसता है, ले लेता है। हमारे लिए शरीर पहली चीज है, जो कि खयाल में आता है। वस्तुतः बात बिलकुल विपरीत है--क्योंकि बुद्ध मुक्ति को प्राप्त हुए, यह आसन आया। यह आसन कारण नहीं है। इसलिए आप इस आसन का अभ्यास कर सकते हैं। आप इस आसन में अभ्यस्त हो सकते हैं। परन्तु मुक्ति के लिए प्रतीक्षा न करें। आसन तो होगा, परन्तु मुक्ति नहीं आएगी।

कोई प्रार्थना कर रहा है। उसके हाथ ऊपर उठे हुए हैं, अथवा उसका सिर अज्ञात के चरणों में झुका हुआ है। यह बाहरी आसन आता है। जब भीतर समर्पण घटित होता है, जब भीतर कोई शून्य को अनुभव करता है, जब कोई ऐसा अनुभव करता है कि वह उस असीम में विलय हो रहा है, तो यह आसन अपने से आता है। आप आसन की नकल कर सकते है, परन्तु उससे समर्पण नहीं आएगा।

और जब मैं यह कहता हूं कि यह आसन आता है, तो इसका यह अर्थ नहीं होता है कि सब के साथ ही यह आसन होगा। प्रत्येक व्यक्ति की भिन्नताएं होंगी। यह निर्भर करेगा संस्कृति पर, संस्कार पर, जलवायु पर। क्या आएगा, यह बहुत सी बातों पर निर्भर करेगा। उदाहरण के लिए, यदि बुद्ध भारत में पैदा न हों और ऐसी संस्कृति में, ऐसे समाज में पैदा हो जहां कि कोई भी जमीन पर नहीं बैठता हो, तो क्या आप सोचते हैं कि उन्हें ज्ञान उपलब्ध नहीं होगा! वह उपलब्ध होगा कुर्सी में। हां, जब कुर्सी में बैठे होंगे, तो वे दूसरी ही तरह

से बैठे होंगे। जब उन्हें ज्ञान उपलब्ध होगा, तो वे बिलकुल आराम की स्थिति में होंगे। परन्तु बाहरी रूप से यह आराम की स्थिति सिद्धासन से भिन्न होगी।

महावीर को मुक्ति एक बिलकुल ही विचित्र आसन में उपलब्ध हुई। उसे गोदुहासन कहते हैं—वह आसन, जिसमें एक ग्वाला गाय दुहता है। आसन में महावीर को मोक्ष का ज्ञान हुआ। इसके पहले भी और इसके बाद भी कभी किसी ने इस आसन में मुक्ति प्राप्त नहीं की। वे गाय नहीं दुह रहे थे। तब फिर यह आसन क्यों आया? जरूर इसका संबंध महावीर की शारीरिक आदतों से है। हो सकता है कि इसका संबंध उनके पिछले जन्मों से हो। ऐसा क्यों घटित हुआ, कुछ भी पता नहीं। परन्तु मूल बात यही है कि बाह्य बातें अंतर-घटना आए का अनुगमन करती हैं।

वे कोई स्थिर नियम नहीं हैं। व्यक्ति-व्यक्ति में वे भिन्न होते हैं। यह कई बातों पर निर्भर करता है। परन्तु समाज एक अनिवार्य संबंध अनुभव करने लगता है, एक कार्य कारण का संबंध बाहरी वे भीतर वस्तुओं में, तब कर्म कांड का जन्म होता है। कर्म-कांड का मतलब होता है कि हम बाहर कुछ करेंगे और भीतर कुछ होगा। यह एक सबसे बड़ी भ्रांति है जो संभव है और यह भ्रांति प्रत्येक धर्म को नष्ट कर देती है। प्रत्येक धर्म अंततः एक कोरा कर्म-कांड बन कर रह जाता है। इस उपनिषद में, यह जो कर्म-कांड वाली हमारी समझ है उसको पूरी तरह से मना किया गया है, परन्तु उसका निषेध बड़े ही विधायक ढंग से किया गया है। इसलिए एक बात बड़ी स्पष्टता से समझ लेना है। जहां तक भारतीय चिंतन का संबंध है, उपनिषदों का जन्म एक बहुत ही क्रांतिकारी युग में हुआ था। वेदों के खिलाफ एक बड़ा भारी विद्रोह उठ खड़ा हुआ। ओर जब मैं वेदों के विषय में कहता हूं तो मेरा आशय है वेदों के इर्द-गिर्द जो कर्म-कांड का ढांचा खड़ा हो गया था, उससे।

वे एक मृत कर्म-कांड थे। प्रत्येक बात एक कर्म-कांड बन गई थी। धर्म कोई गहरी बात नहीं थी। वह कोई चेतना से व उसके रूपांतरण से संबंधित नहीं थी। वह केवल कुछ बातें करने से प्रयोजन रखती थी। यदि आप यह करोगे, तो आपको यह मिलेगा। यदि आप वह करोगे, तो आपको वह मिलेगा। और हर एक कर्म-कांड स्थिर था, जैसे कि वह कोई विज्ञान हो। यह प्रार्थना करो और वर्षा होगी। वह प्रार्थना करो और आपका दुश्मन मारा जाएगा। यह प्रार्थना करो और आप विजय प्राप्त करेंगे। यह करो और ऐसा होगा। और इसको ऐसा बतलाया जाता था जैसे कि वह कोई विज्ञान हो। इस कर्म-कांड के ढांचे ने भारतीय मनीषा की प्रगति करती हुई चेतना का हनन कर डाला। एक क्रांति उसके पीछे आई। उसका आना अनिवार्य था। उसने दो रूप लिए।

एक निषेधात्मक था—जैन व बौद्ध चिंतन-धाराओं का आविर्भाव। इन दो चिंतन धाराओं ने एक बहुत ही निषेधात्मक मोड़ लिया। उन्होंने कहा कि सब कर्म-कांड अर्थहीन हैं, व्यर्थ हैं, इसलिए सब कर्म-कांडों को बंद कर देना चाहिए। यह एक पूरी तरह निषेधात्मक विचार था। उपनिषद भी कर्म-कांडों के विरुद्ध थे, परन्तु उन्होंने एक बहुत ही विधेयात्मक रुख लिया। उन्होंने कहा कि कर्म-कांड निरर्थक नहीं हैं, परन्तु आप उनका गलत अर्थ समझते हैं।

यह सूत्र यज्ञ से संबंधित है तथा आवाहन से। आवाहन का अर्थ होता है कि इसके पहले कि आप कोई पूजा करें, आप यज्ञ करें या कोई प्रार्थना करें, सबसे पहले आप उस अर्थ होता है उनको बुलाना, उनको निमंत्रण देना। जहां तक ऐसा है, अच्छा है। आप प्रार्थना कर सकते हैं, जब तक कि आप निमंत्रण नहीं देते हैं? आप समर्पण कैसे कर सकते हैं, जब तक कि आप आवाहन नहीं करते।

अतः दो रीतियां हैं। निषेधात्मक रीति यह है कि सब व्यर्थ है, क्योंकि कोई देवता नहीं हैं। दूसरी बात यह कि उनका कोई नाम नहीं है यदि वे हैं तो भी। तीसरी बात यह है कि यदि उनका नाम अगर कुछ है, फिर भी

वे कोई प्रतिसंवेदन नहीं करेंगे; क्योंकि जो कुछ भी आप कर रहें हैं वह मात्र एक रिश्वत है, एक स्तुति है। क्या तुम सोचते हो कि तुम अपनी स्तुति से प्रार्थनाओं से, रिश्वत से उनका आवाहन कर सकते हो? और यदि आप सोचते हैं कि आप उन्हें बुला सकते हैं, आवाहन कर सकते हैं, उन्हें निमंत्रित कर सकते हैं, तब फिर वे इसके योग्य नहीं, क्योंकि यदि आप उन्हें रिश्वत दे सकते हैं, तो वे भी अपके जैसे ही हुए। भाषा वही है और वही लेबल भी। इसलिए वे इसके योग्य नहीं। बुद्ध ने कह है—कोई देवता नहीं है, और यदि वे हैं भी तो भी वे मनुष्यों से ऊपर नहीं हैं। आप उन्हें फुसला सकते हैं, आप उन्हें रिश्वत दे सकते हैं अपनी स्तुति से। आप उन्हें कुछ करने के लिए अथवा न करने के लिए बाध्य कर सकते हैं। इसीलिए वे आपसे ऊपर नहीं हुए। तब उन्हें बुलाया जा सकता है। उपनिषदों ने दूसरा ही रुख लिया। वे कहते हैं कि देवतागण हैं और उनका आवाहन संभव है। परन्तु वे इस आवाहन को गहन अर्थ देते हैं। वे कहते हैं कि सब कर्मों के कारण की समाप्ति ही आवाहन है। वे किसी भी चीज के लिए मना नहीं करते। वे एक नया ही अर्थ देते हैं और कर्म-कांड अकर्म-कांड बन जाते हैं। वे कहते हैं, सचमुच, आवाहन संभव है परन्तु आवाहन का तात्पर्य होता है सब कर्मों के कारण का समाप्त हो जाना। वे वही बात कहते हैं जो कि बुद्ध कहते हैं।

बुद्ध निषेध करते हैं। वे कहे हैं कि कोई आवाहन नहीं है। केवल एक ही मार्ग है कि तृष्णा-रहित हो जाया जाए। इसलिए किसी से भी किसी मदद के लिए मत कहो। कोई तुम्हारी सहायता नहीं कर सकता। मात्र बिना चाह के हो जाएं और आप निर्वाण को उपलब्ध हो जाएंगे, आनंद को, शांति को, उस आत्यंतिक को पा लेंगे। इसलिए किसी की मदद न मांगें। किसी का आवाहन न करें। केवल अच्छा-रहित हो जाएं। और यह बहुत महत्वपूर्ण है, क्योंकि जो देवता को निमंत्रण दे रहा है वह इसलिए दे रहा है, क्योंकि उसकी कोई इच्छा है। वह कुछ चाहता है—धन, यश, विजय का कुछ और चीज। वह देवता को बुला रहा है, किसी वस्तु के लिए प्रार्थना कर रहा है। इसलिए बुद्ध कहते हैं कि आप एक अच्छा से दूसरी इच्छा पर दौड़ रहे हैं। और यह इच्छाओं के पीछे दौड़ना ही दुख है। और आपकी कोई सहायता नहीं कर सकता, जब तक कि आप लालसा रहित नहीं हो जाते।

सब कर्मों के कारण का समाप्त हो जाना, इसका अर्थ होता है—चाह-रहित हो जाना। किसी भी कर्म का क्या कारण होता है? आप इतने कर्मों में क्यों पड़े हैं? क्यों है यह लगातार दौड़? क्या है कारण? कारण है लालसा। इसलिए बहुत ही काव्यात्मक ढंग से उपनिषद कर्म-कांड को मना करते हैं और फिर भी नाम को मना नहीं करते। वे कर्म कर्म-कांड का तो निषेध करते हैं, परन्तु उनकी आत्मा को नहीं।

बुद्ध असफल हो गए, क्योंकि एक निषेधात्मक चित्त लंबे समय तक सफल नहीं हो सकता। वह बहुत प्रभावित करने वाला हो सकता है, क्योंकि नकारात्मक ढंग बहुत जोर से चोट करता है। वह बहुत तर्कपूर्ण हो सकता है, क्योंकि ना कहना बहुत बड़ी तरकीब है तार्किक होने के लिए। वास्तव में, जब कभी आप ना कहना चाहते हैं, आपको तर्क की आवश्यकता होती है। यदि आप हां कहना चाहते हैं, तो आपको किसी तर्क की कोई आवश्यकता नहीं। आप बिना किसी कारण के हां कह सकते हैं, परन्तु आप बिना तर्क के ना नहीं कह सकते। जैसे आप ना कहते हैं, तर्क की जरूरत होती है। इसलिए न सदैव तर्कपूर्ण होता हैं।

एक आधुनिक तर्कनिष्ठ, डि बोनो कहता है कि तर्क का उददेश्य ना कहना होता है एक बड़े ही तार्किक ढंग से। तर्क का उददेश्य ही ना कहना है और फिर कारण, प्रमाण जुटा देना है ना कहने के लिए। बुद्ध ने ना कहा। उसने भारी प्रभाव किया। उनकी पहुंच तर्कपूर्ण, बुद्धिगत थी। हर बड़ी भरी-पूरी थी, परन्तु फिर भी भारतीय भूमि में उनकी जड़े नहीं जमीं। वे जल्दी ही उखड़ गए। और यह एक बड़ा ही विचित्र तथ्य है। उन्हें चीन, जापान, बर्मा व लंका में सब जगह, भूमि मिली; परन्तु भार में नहीं मिली। परन्तु बौद्ध साधुओं को अपनी त्रुटि मालूम पड़ गई जब उन्होंने भारत छोड़ा। ना ही उनकी भूल थी। इसलिए उन्होंने नकारात्मक रुख

का फिर कभी भी उपयोग नहीं किया; जहां कहीं भी वे गए वे विधेयात्मक हो कर गए। इसलिए इन्होंने चीन में हां कहना शुरू किया, लंका में हां कहा, जहां भी वे फिर गए सफल हुए।

हां में एक बड़ा जादुई रहस्य छिपा है सफलता का। हो सकता है बुद्धि को प्रभावित नहीं करे। वह हृदय के प्रभावित करता है, और आखिर में हृदय की जीत होती है—बुद्धि की कभी नहीं। वास्तव में बुद्धि कभी नहीं जीतती अंततः। आप किसी को तर्क से चुप कर सकते हैं, परन्तु आप उसे बदल नहीं सकते। आप उसका परिवर्तन कभी नहीं कर सकते। यहां तक कि वह आपके विरुद्ध कुछ भी न कहे, तो भी वह अपने मन में अपनी ही बात के प्रति आश्वस्त रहेगा। इसलिए बुद्ध ने बहुत प्रयत्न किया—ना के साथ—सब जगह ना जो कुछ भी वे कह रहे थे, वह वही था जो उपनिषद कह रहे थे। वह जरा भी भिन्न नहीं था। केवल उन्होंने जो विधि चुनी थी, वह ना की थी, और हो सकता है कि उसका कारण यह यहां हो कि वे एक क्षत्रिय थे—एक लड़ने वाले। और एक लड़ने वाला सिपाही ना के साथ जीता है।

उपनिषद ब्राह्मणों के द्वारा आए। वे भिखारी थे और एक भिखारी हां के साथ जीता है। यहां तक कि यदि आप ना भी कर दें, एक वास्तविक भिखारी, एक प्रामाणिक भिखारी आपको आशीर्वाद देगा। वह समग्र रूप से हां के साथ जीता है। वही उसका रहस्य है। वह ना का उपयोग नहीं कर सकता। और एक सेनानी, एक क्षत्रिय हां का उपयोग तभी कर सकता है, जब कि वह हार जाए, परन्तु वह अपने दिल से कभी हां नहीं कहेगा। वह ना कहना जारी रखेगा। सारे जैन तीथृध!कर क्षत्रिय थे। बुद्ध भी क्षत्रिय थे। उन दोनों ही ने नकारात्मक ढंग अपनाया।

उपनिषद विधेयात्मक हां पर आधारित हैं। वे हां कहने वाले हैं। यहां तक कि यदि उन्हें ना भी कहना हो, तो वे इस ढंग से कहेंगे कि हां का उपयोग हो सके। वास्तव में, यह उपनिषद कह रहा है कि कोई आवाहन नहीं है, कोई इन्वोकेशन नहीं है, परन्तु ना का उपयोग नहीं किया गया। वे उसे हां में बदल देते हैं। वे कहते हैं, सर्व कर्म निराकरण आवाहन—सब कर्मों के कारण की समाप्ति ही आवाहन है। यह वेदों के पंडितों के आवाहन से जरा भी संबंधित नहीं। यह उनसे जरा भी जुड़ा हुआ नहीं है। यह संतों की विद्रोही शिक्षा से संबंधित है, जो कहती है कि तृष्णा-रहित हो जाना ही आत्यंतिक शुद्धता की स्थिति है। और जब तक आप शुद्ध नहीं होते, आप प्रभु को कैसे निमंत्रित कर सकते हैं? सचमुच, शुद्ध होना ही निमंत्रण है। जिस क्षण भी आप शुद्ध हो जाते हैं, जिस क्षण भी हृदय पवित्र हो जाता है, परमात्मा का आगमन हो जाता है। मात्र शुद्ध होना ही निमंत्रण है। इसलिए पुकारें नहीं, परमात्मा के लिए चिल्लाएं नहीं। बस केवल पवित्र हो जाएं, और वह आ जाता है।

इस शुद्धता को कैसे उपलब्ध करें, और क्यों हैं हम अशुद्ध? भारतीय मनीषी हमेशा ही इच्छा और अनिच्छा की भाषा में सोचता रहा है। वस्तुतः जो कुछ हम हैं, उसे एक लालसा में संक्षिप्त किया जा सकता है। जो कुछ भी हम हैं, वह सब अपनी इच्छा के कारण से हैं। यदि हम दुखी हैं, यदि हम दासता में हैं, यदि हम अज्ञानी हैं, यदि हम अंधकार में डूबे हैं, यदि जीवन एक लंबी मृत्यु है, तो वह केवल इच्छा के कारण है। क्यों है वह दुख? क्योंकि हमारी इच्छा पूरी नहीं हुई। इसलिए यदि आपको कोई इच्छा नहीं है, तो आप निराश कैसे होंगे? यदि आप निराश होना चाहते हैं, तो और अधिक इच्छा करें, बस और आप निराश हो जाएंगे। यदि आप और दुखी होना चाहते हैं, तो अधिक अपेक्षा करें, अधिक लालसा करें, और अधिक आकांक्षा से भरें और आप और भी अधिक दुखी हो जाएंगे। यदि आप दुखी होना चाहते, तो फिर कोई इच्छा न करें। यही आंतरिक जगत के काम करने का गणित है। इच्छा ही दुख को उत्पन्न करती है। यदि लालसा असफल हो जाए, तो वह अनिवार्यतः दुख को निर्मित करती है। परन्तु यदि इच्छा सफल भी हो जाए, तो भी

वह दुख को ही जन्म देती है, क्योंकि तब आप जैसे ही सफल होते हैं, आपकी लालसा आगे बढ़ गई होती है। वह और अधिक की मांग करती है।

वास्तव में, इच्छा सदैव ही आपसे आगे रहती है। जहां कहीं भी आप होंगे, इच्छा आप से आगे होगी और आप कभी भी उस बिंदु को नहीं पहुंच पाएंगे, जहां कि आप और आपकी इच्छा मिल सकें। इच्छा का केंद्र सदा ही भविष्य में होता है, वर्तमान में कभी भी नहीं। आप सदैव ही वर्तमान में होते हैं और इच्छा सदा ही भविष्य में होती है। जहां कहीं भी और जब कभी भी आप होते हैं, तो आप वर्तमान में होते हैं, और इच्छा सदैव ही भविष्य में होती है। वह बस क्षितिज की भांति होती है। आप देखते हैं कि बस कुछ ही मील दूर पर आकाश पृथ्वी को छू रहा है, और इतना ही वास्तविक है। परन्तु आगे बढ़ें और जाकर देखें उस जगह जहां पर आसमान पृथ्वी को छूता है जितना आप आगे जाते हैं, क्षितिज भी उतना ही आगे बढ़ जाता है। दूसरी सदैव वही रहती है।

वास्तव में, वह कहीं छूता नहीं। वह छूना; वह संबंध की रेखा मात्र एक भ्रम है, झूठ है। इसलिए जब आप उस क्षितिज को खोजने जाएंगे तो आप उसे कहीं भी नहीं पाएंगे। वह सदैव वहां होगा, परन्तु आप उससे कभी भी नहीं मिल जाएंगे। आप इसी भ्रम में रह सकते हैं कि क्षितिज वहां पर है, बस थोड़ा ही अंतर और पार करना है। आप सारी पृथ्वी का चक्कर लगा सकते हैं और अपने घर लौट सकते हैं, परन्तु आप क्षितिज को कहीं भी नहीं पाएंगे। परन्तु भ्रांति बनी रह सकती है।

इच्छा भी क्षितिज की भांति है। ऐसा प्रतीत होता है कि दूरी ज्यादा नहीं—जरा ही प्रयत्न और, जरा ही तेजी और, वह बिलकुल पास ही है। परन्तु आप वहां कभी नहीं पहुंचते। वह सदैव ही पास है और अंतर सदैव वही रहता है। कितना ही दौड़ें आप, दूसरी सदैव ही वही की वही है।

क्या कभी भी कोई इच्छा पूरी हुई? दूसरों से न पूछो, स्वयं अपने से पूछो। क्या कभी भी आपकी कोई लालसा पूरी हुई? परन्तु हम इतना भी सोचने के लिए नहीं ठहरते। हमारे पास वक्त ही नहीं है अतीत के बारे में सोचने के लिए; भविष्य के खयालों में हम इस तरह खोए हैं। हम क्षितिज पर पहुंचने की इतनी जल्दी में हैं कि कौन सोचे कि हम कितनी ही बार इस क्षितिज को चूक चूके हैं। जल्दी इतनी है और जीवन इतना छोटी है, और दौड़ना है, दौड़ते जाना है।

क्या आपने कभी भी कुछ भी इच्छा से पाया है या सदैव निराशा ही हाथ लगी है? राख हाथ में बचती है और तो कुछ कुछ भी नहीं। परन्तु कोई भी हाथ में राख को नहीं देखता। कोई भी निराशा को नहीं देखता। आंखें फिर दूर क्षितिज की ओर लग जाती है। यह क्षितिज पर आंखों का गड़ जाना ही सब कर्मों का कारण है। और कर्म हमारा पूर्ण नहीं होता; क्योंकि हमारे सारे कर्म पागल कैसे हैं। यदि वहां कोई क्षितिज ही नहीं है तो फिर आपकी सब दौड़ पागल की सी है। इसलिए इच्छा ही सारे कर्म की कारण है, सारे दुख की, सारी अशुद्धता की और हमारे सारे अज्ञान की।

कारण की समाप्ति, अच्छा की समाप्ति ही आवाहन है। यदि आप इच्छा करना बंद कर दें, तब दौड़ नहीं होगी—किसी चीज के पीछे दौड़ नहीं, भीतर कोई गति नहीं, कोई लहर नहीं—मात्र एक शांत चेतना की झील—एक बिना लहर की शांत, निष्कंप झील। उपनिषद कहते हैं, ऐसी चेतना की स्थिति ही आवाहन है। परन्तु क्या इसका तात्पर्य यह है कि जब इच्छा उठनी बंद हो जाती है, तो क्या सारे काम भी रुक जाते हैं? हमने कृष्ण को चलते हुए देखा है, बहुत कुछ करते हुए देखा है। हमने बुद्ध को बहुत कुछ करते हुए देखा है, ज्ञान की उपलब्धि के बाद भी। तो फिर क्या आशय है सब कर्मों का कारण की समाप्ति से? इसका मतलब सब कर्मों के कारण की समाप्ति नहीं है। इसका आशय है कारण का अभाव हो जाना। इच्छा लुप्त हो जाती है और जब अच्छा नहीं होती है, तो सारे कर्म एक बिलकुल भिन्न ही गुण को प्राप्त करते हैं।

आत्मा पूजा भाग-१

जब कोई इच्छा नहीं होती, तो कर्म एक खेल हो जाता है, जिसमें कि कोई पागलपन नहीं होता, जिसके पीछे कोई विक्षिप्तता नहीं बचती, कोई खयाली पुल बांधने को नहीं होते। वह एक खेल हो जाता है, एक प्रफुल्लता। वास्तव में, आधुनिक मनोवैज्ञानिक का कहना है कि यही एक कसौटी है कि कोई पागल है या नहीं। एक विक्षिप्त आदमी खेल नहीं सकता। यहां तक कि जब वह खेल रहा होता है, तब भी वह इतना गंभीर हो जाता है कि खेल भी एक काम हो जाता है। असली समझदारी इसमें है कि काम को भी खेल में रूपांतरित कर लिया जाए। जब कोई लालसा नहीं होती, तो आप खेल सकते हैं और फिर जब उसमें से कुछ भी न निकलता हो तो कोई निराशा नहीं होगी, क्योंकि कुछ भी आशा नहीं की गई थी। खेल अपने में काफी था। यही भेद है काम और खेल में।

काम कभी भी अपने में पर्याप्त नहीं है; वह सदैव किसी परिणाम की प्राप्ति के लिए है। अंततः परिणाम ही असली मूल्य है और काम सिर्फ साधन है। आप कुछ पाने के लिए काम करते हैं। कोई भी कर्म के लिए कर्म नहीं करता। इसलिए कर्म वर्तमान में है और परिणाम सदैव भविष्य में हैं। वह सब परिणाम पर निर्भर है। कर्म अपने आप में एक बोझ है, जिस ढोना है; क्योंकि अंत में उससे कुछ पाने की अच्छा है। यदि आप बिना कर्म के अंत को उपलब्ध कर सकें तो फिर आप कभी भी कोई काम नहीं करेंगे।

खेल का एक बिलकुल भिन्न ही आयाम है। वह बिलकुल ही विपरीत है। वास्तव में, वहां उपलब्ध करने के लिए कोई परिणाम नहीं होता; खेल सिर्फ खेल के लिए होता है। परन्तु हम इतने विक्षिप्त हो गए हैं कि हम खेल के लिए तो कभी खेल नहीं सकते। इसलिए हम खेल के द्वारा भी कुछ परिणाम प्राप्त करना चाहते हैं–कुछ जीतना–मान, मैडल, ट्रॉफी, कुछ भी। कुछ न कुछ अवश्य चाहिए अंत में पाने को। इसलिए वास्तव में प्रौढ़ कभी खेलते नहीं; केवल बच्चे खेलते हैं जिनके पास पाने को कुछ भी नहीं होता। इसीलिए बच्चों के खेल में निर्दोषिता है और सुंदरता है। बात अपने में पर्याप्त है।

जब एक बच्चा खेल रहा होता है, तो वह पूरी तरह उसमें खो गया होता है। उसकी थोड़ी भी लालसा नहीं होती, यहां तक कि कहीं भी अन्यत्र दौड़ने की या जाने की। तनिक सी भी चेतना उसके पास नहीं होती, सब कुछ उसी में समाया होता है। बच्चा खुद एक खेल हो गया होता है, समग्ररूपेण संलग्न, यहां और अभी में पूरी तरह डूबा। उसके पार कुछ भी नहीं होता। यह एक कर्म है बिना किसी भी कारण के, बिना किसी भी इच्छा के। इसीलिए हमने इस संसार को प्रभु का सृजन नहीं कहा; परन्तु कहा एक लीला, प्रभु की लीला, खेल।

निर्माण कोई अच्छा शब्द नहीं है; वह कुरूप है। वह कुरूप है। वह कुरूप है, क्योंकि आपने कुछ निर्मित किया किसी वस्तु के लिए। केवल परमात्मा ही खेल रहा है–बच्चे की तरह खेल रहा है, मन में बिना किसी भी परिणाम की इच्छा के। खेल स्वतः में आनंदपूर्ण है। इसलिए यह कहना कि सब कर्मों के कारण की समाप्ति ही आवाहन है, इसका आशय है एक बच्चे की भांति हो जाना–निर्दोष, पवित्र, बिना किसी भी इच्छा के। तब जानिए आपने सच्चा आवाहन किया है; तब आपने पुकारा है, निमंत्रित किया है।

अब आपका आवाहन अस्वीकार नहीं किया जा सकता; वह इतना प्रामाणिक है, इतना सच्चा है। वास्तव में, अब आपको आवाहन की आवश्यकता ही नहीं और परमात्मा वहां होगा। आपको परमात्मा को पुकारने की कोई आवश्यकता नहीं और परमात्मा वहां होगा; क्योंकि अब आपने वह स्थिति उत्पन्न कर दी है, जिसमें परमात्मा स्वतः बहेगा, नीचे उतरेगा। आपने ऐसी स्थिति निर्मित कर दी है, हृदय की शुद्धता इच्छा-रहितता के द्वारा। यही आवाहन है, बाकी सब मात्र इच्छा है, कर्म है। जीसस कहते हैं की जब तक आप बच्चे की तरह नहीं हो जाते, आप प्रभु के राज्य में प्रवेश नहीं कर सकते। बच्चे की तरह! क्या तात्पर्य है इसका? इसका अर्थ है कि आप खेल सकते हैं–कि आप कर्म करने के योग्य हैं बिना किसी लालसा के।

हमारे लिए यह समझ में नहीं आने वाली बात है। कैसे हम काम कर सकते हैं बिना इच्छा के? इसके विपरीत को ले लें। क्या आप बिना कर्म के इच्छा कर सकते हैं। आप इच्छा कर सकते हैं। आप बिना काम किए इच्छा कर सकते हैं। इस तरह इच्छा अकेली बिना कर्म के हो सकती है। प्रत्येक इच्छा कर रहा है। कितनी ही इच्छाएं हैं बिना किसी कर्म के। इस तरह लालसा हो सकती है बिना कर्म के; यह हमारा अनुभव है। फिर इसके विपरीत क्यों नहीं हो सकता? कर्म भी हो सकता हैं बिना इच्छा के। यदि इच्छा कर्म से अलग हो सकती है, तो कर्म इच्छा से अलग क्यों नहीं हो सकता? वह भी संभव है। जब इच्छा नहीं होती, कम बंद नहीं हो जाता; वह केवल भिन्न हो जाता है। उसकी सुगंध दूसरी हो जाती है। उसका आंतरिक गुण भिन्न हो जाता है। विक्षिप्तता अब नहीं होती। और इसी क्षण, वर्तमान अर्थपूर्ण होता है–न कि भविष्य।

इसलिए इसे हृदयंगम कर लें–यदि भविष्य बहुत अर्थपूर्ण है, तो फिर आप आवाहन नहीं कर सकते। यदि वर्तमान ही केवल महत्वपूर्ण है और भविष्य कहीं भी नहीं है, तो आपने आवाहन किया है। भविष्य ही बंधन है, क्योंकि बिना भविष्य के आप इच्छा नहीं कर सकते। इच्छा के लिए स्थान चाहिए जिसमें कि वह चले। वह वर्तमान में नहीं चल सकती, वर्तमान में कोई स्थान नहीं है। कैसे आप अभी इच्छा कर सकते हैं? आप केवल कल में इच्छा कर सकते हैं। वस्तुतः भविष्य निर्मित ही हमारी इच्छाओं के कारण होते हैं। भविष्य है ही नहीं, भविष्य का कोई अस्तित्व नहीं है।

साधारणतः हम कहते हैं कि समय के तीन भाग होते हैं–अतीत, वर्तमान और भविष्य। वस्तुतः समय एक ही है और वह है वर्तमान। अतीत वह है, जो है नहीं। भविष्य वह है, जो नहीं है अभी। वे दोनों ही नहीं हैं। अतीत का मात्र इतना तात्पर्य होता है कि वे इच्छाएं जो मृत हो गई हैं। भविष्य का अर्थ होता है, वे इच्छाएं जो अभी जीवंत हैं। और वर्तमान ही आपके अतीत से व आपके भविष्य से अस्पृष्ट है।

इसलिए वास्तव में, अतीत और भविष्य समय के भाग नहीं हैं, बल्कि मन के हिस्से हैं। समय वर्तमान है; मन है अतीत और भविष्य। मन के दो भाग हैं–अतीत व भविष्य और समय का केवल एक–वर्तमान। इसीलिए मन व समय कभी नहीं मिलते; वे मिल ही नहीं सकते, क्योंकि मन का कोई वर्तमान नहीं होता और समय का कोई अतीत व भविष्य नहीं होता। यदि पृथ्वी पर कोई मन नहीं हो, तो क्या कोई अतीत अथवा भविष्य होगा? केवल वर्तमान होगा। फूल सचमुच खिलेंगे। किंतु वर्तमान में। ये वृक्ष वस्तुतः उगेंगे, लेकिन वर्तमान में। कोई अतीत वे भविष्य नहीं होंगे। आदमी के साथ बल्कि मन के साथ ही अतीत व भविष्य आते हैं।

यदि आप एक बच्चे की ओर देखें, तो उसका कोई अतीत नहीं है। कैसे हो सकता है? इसलिए वह बोझ से दबा हुआ नहीं है, क्योंकि अतीत ही बोझ बन जाता है।

एक बूढ़ा आदमी सदैव बोझ से दबा है। एक अतीत है–लंबा अतीत–कितनी ही इच्छाएं हैं मेरी हुई, कितनी ही निराशाएं हैं, कितने ही क्षितिज हैं जो नहीं मिले, कितने ही इंद्र-धनुष हैं जो टूट गए। उसका एक लंबा अतीत है और वह केवल उससे दबा है। एक बूढ़ा आदमी हमेशा अतीत के बारे में सोच रहा है, याद कर रहा है और बार-बार अपनी अतीत की स्मृतियों में डूब रहा है। एक बूढ़ा आदमी धीरे-धीरे भविष्य का भूलने लगता है; क्योंकि भविष्य का अर्थ है मृत्यु और कुछ नहीं, इसलिए अब वह भविष्य में देखने का प्रयत्न नहीं करता। वह पीछे देखना शुरू करता है। एक बच्चा सदैव आगे देखता है, पीछे कभी भी नहीं; क्योंकि पीछे कुछ भी देखने के लिए नहीं है। बूढ़े के लिए भविष्य में केवल मृत्यु है और कुछ भी नहीं है।

एक युवा आदमी वर्तमान में है। इसलिए एक युवा आदमी बच्चों को नहीं समझ पाता और वह एक बूढ़े आदमी को भी नहीं समझ पाता। वे दोनों ही उसे मूर्ख दिखते हैं। बच्चे उसे मूर्ख दिखते हैं; क्योंकि वे व्यर्थ ही अपना समय नष्ट कर रहे हैं खिलौनों से खेलते हुए। एक बूढ़ा आदमी मृतवत दिखलाई पड़ता है, व्यर्थ

की चिंताओं के कारण। एक युवा आदमी यथार्थतः नहीं समझ पाता; क्योंकि वह देख ही नहीं पाता कि बूढ़े को क्या हो गया है—कि अब वह केवल एक अतीत है। ऐसा होता है।

वे सब दूसरे को मूर्ख समझते हैं। बच्चे युवा एवं वृद्धों को नहीं समझ सकते। युवा बच्चों और वृद्धों को नहीं समझ सकते। और वृद्ध युवकों और बच्चों को नहीं समझ सकते। क्यों? क्योंकि उनकी समय की समझ भिन्न है—इसलिए उनकी भाषा भी।

परन्तु प्रत्येक युवा बूढ़ा होगा, और प्रत्येक बच्चा युवा होगा और हर एक बूढ़ा कभी जवान था और एक बच्चा था, और मन चलता है, चलता चला जाता है इसी तरह। बच्चों में उसका एक बड़ा वस्तुतः स्थान होता है, जिसमें कि वह चल सकता है, बूढ़े मन के पास कोई स्थान नहीं होता, जिसमें कि वह चल सके। परन्तु यह एक मन की गति है, न कि समय की।

हम सोचते हैं कि समय चलता है। वस्तुतः हम चल रहे हैं। हम मात्र चलते चले जाते हैं। समय बिलकुल ही नहीं चलता। समय वर्तमान है। समय सदैव यहीं और अभी है वह तो हमेशा ही यही और अभी था। वह सदैव ही यही और अभी होगा। हम चलते चले जाते हैं हम अतीत से भविष्य में यात्रा करते हैं और हमारे लिए समय मात्र एक सेतु की तरह है—अतीत से भविष्य में जान के लिए, एक इच्छा से दूसरी इच्छा में जाने के लिए। समय मात्र एक पथ है हमारे लिए। समय केवल मार्ग है एक इच्छा से दूसरी में जाने के लिए। यदि इच्छाएं समाप्त हो जाएं, तो आपकी गति रुक जाएगी और यदि आपकी गति रुक जाती है, तो आप समय से भेंट करेंगे, अभी और यही, और वह भेंट ही द्वार है। वह मुलाकात ही द्वार है, वह मिलन ही आवाहन है।

किंतु जब उपनिषद कहते हैं—कारण की समाप्ति, तो क्या उनका आशय है कि इच्छा न करना? यह बहुत स्वाभाविक है हमारे मन के लिए इस प्रकार से बातों का अर्थ करना। यदि उपनिषद यह कहते हैं कि सब कर्मों के कारण की समाप्ति, तो इसका अर्थ है; एक इच्छा-शून्यता की स्थिति। इसे खयाल करें—इच्छा-शून्यता की स्थिति। परन्तु हमारा मन इसे इच्छा न करना अनुवाद करेगा। यदि आपने इच्छा न करना—यह अर्थ लिया, तो फिर आप चूक गए, क्योंकि जब आप इच्छा न करना। अनुवाद करेगा। यदि आपने इच्छा न करना—यह अर्थ लिया, तो फिर आप चूक गए, क्योंकि जब आप इच्छा न करेंगे, तब भी इच्छा पर जोर देगा। आप प्रभु के आवाहन की इच्छा कर सकते हैं, आप शुद्ध होने की इच्छा कर सकते हैं, पवित्र बनने की, निर्दोष होने की, बच्चों की भांति होने की इच्छा कर सकते हैं—उस खेल की स्थिति में पहुंचने के लिए। इस तरह आपका मन कह सकता है कि यदि आप प्रभु के राज्य में प्रवेश करना चाहते हों तो इच्छा न करो। यह भी इच्छा है। इस तरह इच्छा काम करती है। यदि आप प्रभु के राज्य में प्रवेश चाहते हों, यदि आप ज्ञान चाहते हों, यदि आप प्रभु से मिलन चाहते हों, तो इच्छा न करें। यही तर्क है इच्छा का। यह न करो यदि आप वह चाहते हो। यह करो यदि आप वह चाहते हो। इसलिए जब मैं इच्छा-शून्यता की स्थिति की बात करता हूं, तो मेरा अर्थ उस आज्ञा से नहीं, जो कि कहती हो?इच्छा न करो।

तब मेरा क्या आशय है? यह जटिल है, उलझन पूर्ण है, इसे समझना। मेरा क्या तात्पर्य है जब मैं कहता हूं—ए स्टेट ऑफ डिजायरलेसनेस—एक निर्वासना की स्थिति? इसका अर्थ है: इस इच्छा को समझना, इन इच्छाओं की भ्रांति को समझना, इच्छाओं की निरर्थकता को समझना, इच्छाओं की अर्थहीनता को समझना और उसकी सारी मूर्खता को समझना। बस इसे समझें कि इच्छा ने क्या किया है, इच्छा क्या कर सकती है, इच्छा क्या कर रही है। इच्छा को समझें, और यदि आप इसे समग्रता से समझ लें, तो आप इच्छा रहित हो जाएंगे। वह निर्वासना आपकी समझ से निकलेगी। वह कोई आपके कर्म से नहीं आएगी। न करें भी एक कर्म ही है। ऐसा जो अनुवाद है, वह बहुत अनावश्यक समस्याएं खड़ी करता है।

आत्मा पूजा भाग-१

अत: मैंने ऐसे लोग देखे हैं जो कहते हैं। लोभ न करें, यदि आप परमात्मा को पाना चाहते हैं। परन्तु वे इसे नहीं देख पाते कि यह भी एक लालच है और पहले से भी बड़ा। यह बहुत ही असाधारण और अनुपम लालच है। कोई परमात्मा को पाना चाहता है, इसलिए उसे लालची नहीं होना चाहिए। तो लालच का क्या अर्थ होता है? लालची न होने का अर्थ होता है इच्छा न करना, लालसा न करना। परन्तु आप परमात्मा की लालसा कर रहे हैं, मोक्ष की लालसा कर रहे है, इसलिए लालची न हों। यदि आप परमात्मा को पाना चाहते हैं, तो फिर कुछ और न पाएं। कुछ भी न पाए, कुछ भी न रखें। यदि पाना चाहते हैं, तो त्यागें। परन्तु ऐसा त्याग एक कदम बनता है पाने का, इसलिए यह मात्र एक उपाय है।

वास्तव में, जब तक आप इस पाने की लालसा को ही न छोड़ें, आप कभी भी प्रौढ़ नहीं होंगे। इसलिए इसे इस प्रकार देखें—एक बच्चा पैदा होता है, और उसकी चित्त की पहली दशा होती है पाने की। बच्चा सब कुछ पा रहा है—दूध, भोजन, प्रेम। वह कुछ दे नहीं रहा है। वह सिर्फ ले रहा है। यह चित्त की बहुत ही अप्रौढ़ता की स्थिति है—सिर्फ पाना। और जब एक वृद्ध आदमी मात्र पाने का प्रयत्न कर रहा है, तो वह मात्र एक अप्रौढ़ आदमी ही है अब भी। यह बच्चे के लिए तो उचित भी है कि वह मात्र पाता ही रहे और पाने की दशा में रहे। वह सब कुछ पाता ही रहता है। बच्चा सोच भी नहीं सकता कि देने का क्या अर्थ होता है। इसलिए जब आप बच्चे से कहते हैं—अपना खिलौना इस लड़के को दे दो—तो वह तुम्हारी बात समझ ही नहीं पाता कि तुम्हारा क्या आशय है। भाषा अनजानी है, देने की भाषा अज्ञात है। वह तो केवल ले सकता है।

इसलिए आपको बच्चे को उसकी भाषा में समझाना पड़ता है। आपको कहना पड़ता है, यह खिलौना इस लड़के को दे दो, और मैं तुम्हें अधिक प्यार दूंगा। अब आपको देने को भी पाने की भाषा में कहना पड़ता है। यदि तुम नहीं दोगे, तो हम तुम्हें प्रेम नहीं देंगे। अत: बच्चा सीखना आरंभ करता है कि यदि तुम पाना चाहते हो, तो देना सीखो। देना अधिक पाने के लिए एक कदम बन जाता है। यही मनोदशा हमारी सदैव बनी रहती है, हम मात्र अप्रौढ़ बने रहते हैं। हम पाने की ही दशा में बने रहते हैं। यदि कभी-कभी हमें देना होता है, तो वह भी कुछ पाने के लिए ही।

मन की शुद्धता का अर्थ होता है पाने की इच्छा का बिलकुल अभाव—मात्र देना। वही प्रौढ़ चित्त है। एक बच्चा, एक अप्रौढ़ चित्त सदैव पाने में रहता है। एक बुद्ध, एक जीसस सदैव देने में होते हैं। वह दूसरा छोर है—दे रहे हैं। कुछ भी पाने को नहीं, परन्तु फिर भी दे रहे है; क्योंकि देना एक खेल है, एक आनंद है अपने में। जब मैं कहता हूं; इच्छा को समझो, तो मेरा आशय है—पाने की समझो और देने को समझो। समझो कि तुम्हारी जो स्थिति है वह है पाने की, पाने की और पाने की, और कभी भी तुम भरे-पूरे नहीं हो पाओगे, क्योंकि इसका कोई अंत नहीं है।

इसे समझे—क्या मिला तुम्हें इस सतत शाश्वत पाने से? क्या पाया आपने? आप जितने गरीब कभी पहले थे वैसे ही आज है। उतने ही भिखारी हैं, जितने पहले कभी थे, बल्कि ज्यादा ही। जितना अधिक तुम्हें मिलता है, उतने ही बड़े भिखारी तुम हो जाते हो और उतनी ही अधिक पाने की आकांक्षा बढ़ जाती है। अत: आप पाने से सिर्फ और अधिक पाना ही सीखते हो। कहां पहुंचे आप? क्या पाया आपने? इस विक्षिप्त व सतत पाने की क्या उपलब्धि हुई? कुछ भी तो नहीं? यदि आप इसे समझ जाएं, तो इसकी समझ ही रूपांतरण हो जाता है। पाना गिर जाता है, और उसके गिरने के साथ, एक नया आयाम खुलता है और आप देना प्रारंभ करते हैं। और यही विरोध है सबसे बड़ा—कि आपने तब पाने से कुछ भी नहीं पाया; परन्तु जब आप देते हैं, तो निरंतर पाते हैं, परन्तु वह पाना आपके पाने से संबंधित नहीं है जरा भी। देना ही अपने में एक भारी उपलब्धि है, एक गहरी परिपूर्णता है।

परन्तु जब मैं यह कहता हूं, मुझे डर है कि आप फिर इसकी व्याख्या इस तरह करेंगे कि यदि तुम्हें पाना है वह परिपूर्णता, तो तुम्हें इस सतत पाने की अभिलाषा को छोड़ना पड़ेगा। इसे समझ लें, व्याख्या न करें। आपका मन किसी भी बात को विकृत कर सकता है। उसने हर बात को विकृत कर दिया। वह एक बुद्ध को विकृत कर देता है, वह एक कृष्ण को विकृत कर देता है, वह एक जीसस को विकृत कर देता है, वह एक जरथुस्त्र को बिगाड़ देता है, यह विकृत करता ही चला जाता है। वे कुछ कहते हैं और आप उसकी कुछ और व्याख्या करते हैं। तब वह एक बिलकुल अलग ही बात हो जाती है—बिलकुल ही भिन्न, यहां तक कि समग्ररूपेण विरोधी बात।

इच्छा की समझ ही इच्छा-शून्यता बन जाती है। इच्छा को, वासना को जानना ही इच्छा का अभाव हो जाना। है। इसलिए गहरे जाए, गहराई से समझें। कोई भी कदम जल्दी में न उठाएं और तब एक शुद्धता की खोज होती है जो कि सदैव ही वहां है, जो कि सदा से ही वहां है। ह्रदय पहले से ही शुद्ध है, परन्तु केवल इच्छाओं से ढका, धुयें से ढका; और आप गहरे नहीं देख सकते।

यही आवाहन है: यदि आप शुद्ध हैं, तो आपने आवाहन किया है। अत: शुद्ध हों, और परमात्मा का आवाहन हो जाएगा। इसके अलावा कुछ भी नहीं चाहिए; यहां तक कि परमात्मा में किसी विश्वास की भी जरूरत नहीं। आपको किसी विश्वास की आवश्यकता नहीं है कि परमात्मा की शक्ति है। आपको किसी में कोई विश्वास रखना जरूरी नहीं। उसकी कोई जरूरत नहीं। बस शुद्ध हों और आप जान जाएंगे कि परमात्मा कोई विश्वास नहीं, वह एक ज्ञान है, एक जानना है।

परन्तु जब मैं शुद्धता की बात करता हूं, तो फिर आप मुझे गलत समझ सकते हैं। शुद्धता शब्द के साथ हमारे बड़े नैतिकता के अर्थ जुड़ें हैं। हम कहते हैं कि एक आदमी बड़ा पवित्र है, क्योंकि वह नैतिक है। एक आदमी बड़ा शुद्ध है, क्योंकि वह चोर नहीं है। एक आदमी बड़ा पवित्र है, क्योंकि वह बेईमान नहीं है, एक आदमी पवित्र है, क्योंकि वह समाज के अनुसार जीता है। परन्तु यदि समाज स्वयं ही अपवित्र है, तो उसके नियमों के अनुसार रह कर आप कैसे पवित्र हो सकते हैं? और यदि समाज स्वयं ही बेईमान है, तो आप उसका अनुकरण कर के भी कैसे ईमानदार हो सकते हैं? यदि सारी नींव और ढांचा ही अनैतिक है, तो उसके अनुसार अपने को बनाना सर्वाधिक अनैतिकता का काम है, जो कि संभव हो सकता है। अत: वस्तुत: जितना ही अधिक कोई व्यक्ति नैतिक होता जाता है, उतना ही वह समाज के विरुद्ध होता है जाता है, क्योंकि वह अपने को उसके अनुसार नहीं बना सकता। जीसस को सूली पर लटकाया हाता है, क्योंकि वे तालमेल नहीं बिठा पाते। वे नैतिक हो जाते हैं, क्योंकि पूरा समाज ही अनैतिक है। एक सुकरात को जहर दे दिया जाता है। क्यों? क्योंकि वस्तुत: नैतिक व्यक्ति एक अनैतिक समाज में नहीं जी सकता।

और जब कभी कोई अनैतिक समाज किसी आदमी को आदर देता है और कहता है कि वह नैतिक, तो इसका मतलब होता है कि उसने तालमेल बिठा लिया, और कुछ नहीं—बस उसने अपने को समाज के अनुसार मोड़ लिया। जो कुछ भी समाज ने कहा, वह उसको मानता है। वास्तव में, वह मात्र मृत हो सकता है। उसकी अपनी कोई आत्मा नहीं हो सकती। वह कुछ कर नहीं सकता। वह मात्र अनुकरण करता है। वह बहुत नैतिक हो जाता है। अत: शुद्धता से हमारा अर्थ बहुत कुछ नैतिकता से होता है।

शुद्धता का अर्थ होता है निर्दोषता, और जितने भी लोग जिन्हें कि हम नैतिक कहते हैं, बड़े चालाक लोग हैं। वे निर्दोष बिलकुल भी नहीं हैं। क्योंकि यदि आप सोचते हैं कि चोर होना बुरा है और चोर होना कोई आदर की बात नहीं अथवा चोर होने से आपको नर्क में सड़ना पड़ेगा, अथवा चोर नहीं हो कर आप स्वर्ग को उपलब्ध करेंगे, तब फिर आप बड़े चालाक और हिसाब-किताब लगाने वाले आदमी हैं। आप चोर नहीं हैं अपनी चालाकी और हिसाब-किताब के कारण से। और यह भी हो सकता है कि जो व्यक्ति चोर है और

कैद की यातना भोग रहा है कम चालाक और कम हिसाब लगाने वाला हो। इसीलिए वह दुख भोग रहा है, वह चोर बन गया है। आप ज्यादा चालाक है, ज्यादा हिसाब लगाने वाले हैं, इसलिए आप ज्यादा नैतिक तो हैं, परन्तु शुद्ध बिलकुल नहीं।

शुद्धता का अर्थ होता है: निर्दोषता। निर्दोषता का अर्थ होता है, एक हिसाब-किताब न रखने वाला चित्त। मेरा मतलब यह है कि कोई आदमी चोर हो। एक निर्दोष आदमी चोर कैसे हो सकता है? यदि वह हिसाब नहीं लगा, सकता, तो फिर वह कैसे चोर हो सकता है? चोर होने के लिए भी हिसाब-किताब की जरूरत पड़ती है। चोर न होने के लिए भी हिसाब लगाने की जरूरत होती है। एक निर्दोष व्यक्ति न तो नैतिक होता है और न अनैतिक। वह तो मात्र निर्दोष होता है। वह निर्दोषता ही शुद्धता है।

जीसस को निंदित किया गया कितनी ही ऐसी बातों से जो कि समाज ने अनैतिक मान रखी थी। एक वेश्या उनको अपने घर आने के लिए निमंत्रित करती है वे चले जाते हैं। और सारा गांव अफवाहों से भर जाता है कि जीसस एक वेश्या के घर चले गए। वे क्यों गए? एक नैतिक आदमी एक वेश्या के घर कभी भी नहीं जा सकता। और यही बात आप भी सोचेंगे? क्यों जीसस उसके घर चले गए? क्या जरूरत थी? और चले ही नहीं गए, सारी रात उसके घर रहे भी। वे वहां सोए भी और सुबह जैसा कि एक नैतिक गांव में हो सकता है, हुआ। अब कोई उनके विरुद्ध हो जाते हैं। यहां तक कि उनके मित्र चले गए हैं। और सारा गांव उनके सामने खड़ा हो जाता है और उनसे पूछता है कि वे वेश्या के घर क्यों गए थे? और तुम कैसे निश्चित करते हो और कैसे इस बात का न्याय करते हो, और क्या हैं तुम्हारा मापदंड?

यह कोई गणना करने वाला व्यक्ति नहीं है। वे कहते हैं कि वे तय नहीं कर सकते कि कौन वेश्या है और कौन नहीं। वे निर्वाण नहीं कर सकते। कैसे वे निर्णय करें? और वे कौन होते हैं निर्णय करने वाले? यह एक निर्दोष आदमी है, एक पवित्र व्यक्ति। परन्तु इसको सूली मिली; क्योंकि आप यह नहीं सोच सकते कि वे पवित्र हैं। कैसे वे पवित्र हो सकते हैं, जब कि एक रात वे वेश्या के घर सो चुके हैं! सच, मन इतना अनैतिक और अशुद्ध है। हम किसी और आयाम की बात सोच ही नहीं सकते जो कि शुद्धता की हो।

और यही वेश्या बाकी बचती है, जब कि जीसस को सूली दी जाती है। हर एक छोड़कर चला गया है; वहां कोई भी नहीं बचा है। केवल यही वेश्या, मेग्दलीन, वहां खड़ी है—अकेली वही। कोई भी शिष्य वहां नहीं है, कोई भी अनुयायी नहीं है वहां। वे सब भाग खड़े हुए, क्योंकि वहां खड़ा रहना भी खतरनाक था। वे भी सूली पर लटकाए जा सकते थे। केवल यह वेश्या ही वहां खड़ी हुई थी। और यह वेश्या ही जीसस के शरीर को सूली पर से नीचे उतारने में मदद करती है। इसलिए यह प्रश्न बहुत महत्वपूर्ण है कि कौन वेश्या? और यह अच्छा था जीसस के लिए कि वे उस वेश्या के घर ठहरे। क्योंकि केवल यह गरीब स्त्री ही बची आखिर में। क्या है नैतिकता और क्या अनैतिकता?जहां तक धर्म का संबंध है निर्दोषता काफी है। वह बच्चों जैसी निर्दोषता ही शुद्धता है। वह शुद्धता ही आवाहन बन जाती है।

हमने हर बात को विकृत कर दिया है—हर शब्द को बिगाड़ दिया है। हर एक शब्द कुरूप हो गया है। जब आप कहते हैं कि कोई आदमी शुद्ध है, तो आपका क्या मतलब होता है? जरा पता लगाएं और आप बड़ी विकृत चीजें। पाएंगे। आपका क्या मतलब होता है शुद्धता से? निर्दोषता! कभी नहीं, क्योंकि निर्दोषिता खतरनाक हो सकती है। निर्दोषिता आपके ढांचे में फिट नहीं बैठेगी। सच, वह ठीक नहीं बैठेगी। कैसे बैठ सकती है? आप उसको फुसला नहीं सकते; आप उसको जबरदस्ती नहीं बिठा सकते; आप उसको रिश्वत नहीं दे सकते। और समाज निर्भर करता है जबरदस्ती पर, रिश्वत पर फुसलाने पर, सजा पर, दंड पर, भय पर, लालच पर। इसलिए हम कहते हैं कि यदि तुम यह करोगे, तो तुम्हें यह मिलेगा।

आत्मा पूजा भाग-१

कितने ही लोगों ने बुद्ध से पूछा, यदि हम आपका अनुगमन करें तो हमें क्या मिलेगा? और बुद्ध कहते हैं—कुछ भी नहीं। तो फिर हम इस आदमी का अनुगमन कैसे करें? हम सदैव कुछ पाने के लिए निकलते हैं। यहां तक कि बुद्ध से भी हम कुछ पाना ही चाहते हैं। भले—ही मात्र आश्वासन। यदि आप आश्वासन दें, तो हम यह करें। तब हमें यह तर्कसंगत लगता है, कुछ संगति है। बुद्ध कहते हैं, शुद्ध हो जाओ, और तुम्हें कुछ नहीं मिलेगा। तो फिर हम क्यों शुद्ध हो? इससे तो अच्छा है अशुद्ध होना, कम से कम हमें कुछ तो मिल रहा है! बुद्ध कहते हैं—तुम्हें कुछ भी नहीं मिल रहा है, तुम सिर्फ मिलने के भ्रम में हो और तुम्हें कभी भी कुछ नहीं मिलेगा।

इसलिए मैं कहता हूं: मात्र शुद्ध हों और पाने को भूल ही जाएं, क्योंकि जब तक आप पाने को भूल नहीं जाते, आप शुद्ध नहीं हो सकते। यदि आपको कुछ पाना है, तो आपको चालाक व हिसाब लगाने वाला होना पड़ेगा। आपको हिंसक होना पड़ेगा। आपको लालची होना पड़ेगा और आपको सदैव भविष्य में होना पड़ेगा—वर्तमान में कभी भी नहीं। आप कभी भी घर पर नहीं हो सकते, आप हमेशा कहीं और होते हैं, दूसरे गांव में, सदा यात्रा पर निकले हुए।

शुद्ध होने का मतलब है इच्छा रहित होना, एक गहरी समझ इस बात की जो कुछ भी हम कर रहे हैं, सब बेकार है। जो कुछ भी हम हैं सबका सब बेकार है। जिस क्षण भी यह शुद्धता होती है, आवाहन हो जाता है। तब आपने पुकार लिया; तब आपने निमंत्रण दिया और बुलाया। तब आपका निमंत्रण अस्तित्व की गहरी पर्त में प्रवेश पा गया। अब आप अचानक पाते हैं कि आपको किसी ने पकड़ लिया, कोई आपके भीतर आ गया। अब आपके भीतर कुछ ऐसा आ गया जो कि आपसे अधिक हैं। कुछ असीम, विराट कुछ ज्यादा शक्तिशाली आ गया है और आप पर छा गया है; और आप भर गए हैं। यह भर जाना ही आवाहन है।

सचमुच, आपको खुला होना चाहिए अन्यथा यह भरना घटित नहीं होगा। एक निर्दोष चित्त सदैव खुला होता है; एक चालाक मन सदैव ही बंद होता है। एक चालाक मन हमेशा सुरक्षा करने की स्थिति में होता है। एक चालाक मन सदा दुश्मनी, स्पर्धा की भाषा में सोचता है; क्योंकि यदि आपको कुछ भी पाना हो तो आपको प्रतियोगी होना पड़ता है। हर एक को पाना है, और आपको भी पाना है। तब आपको सबका प्रतियोगी बनना ही पड़ता है और प्रतियोगिता बड़ी कठिन है। इसलिए आपको हिंसक होना पड़ता है, चालाक, बंद, सुरक्षा में होना पड़ता है। आप परमात्मा से नहीं भर सकते। आप इतने तंग, इतने बंद हैं कि प्रवाह आप तक नहीं आ सकता।

एक शुद्ध मन, एक इच्छा रहित हृदय प्रतियोगी नहीं होता, भविष्यगत नहीं होता, किसी के विरुद्ध नहीं होता, किसी के पक्ष में नहीं होता, कोई गणना नहीं करता, कुछ पाने को इच्छा नहीं करता, उसे कुछ भी उपलब्ध करने को नहीं होता। एक शुद्ध मन यहां और अभी होता है—खुला, बिना किसी सुरक्षा के। जब मैं कहता हूं: बिना किसी सुरक्षा के, तो मेरा मतलब है कि यदि मृत्यु भी आए तो भी आप खुले हैं। यदि आप मृत्यु के लिए नहीं हैं, तो आप परमात्मा के लिए भी खुले नहीं हो सकते। यदि आप मृत्यु से भयभीत है, तो आप परमात्मा से भी डर जाएंगे।

यदि मन निर्दोष है तो आप एक बच्चे की भांति होंगे, तो कि सांप से खेल सकता है। अब वह दोनों के लिए खुला है, मृत्यु आए और वह खुला है; वह मृत्यु से खेल सकता है। परमात्मा आए और वह खुला है; वह परमात्मा से भी खेल सकता है। मृत्यु व परमात्मा किसी सूक्ष्म तरीके से एक हैं। यदि आप मृत्यु के लिए खुले नहीं हैं तो आप परमात्मा के लिए खुले नहीं हो सकते और एक ऐसा व्यक्ति, जो कि इच्छाओं से संबंधित है, सदैव ही मृत्यु से भयभीत रहता है।

आप इस संबंध को ठीक से देख लें। एक व्यक्ति, जो कि इच्छाओं से जुड़ा है, इच्छा करता है कुछ पाने की, वह सदैव ही मृत्यु से डरता है। क्यों? क्योंकि इच्छा भविष्य में है और मृत्यु भी भविष्य में है। और ऐसा हो सकता है कि मृत्यु पहले आ जाए और इच्छा पूरी न हो। इसे स्मरण रखें। इच्छा कभी भी वर्तमान में नहीं होती। मृत्यु भी कभी वर्तमान में नहीं होती। कोई भी वर्तमान में नहीं मरा। क्या आप अभी और यहीं मृत्यु से भयभीत हो सकते हैं? नहीं, क्योंकि या तो आप जीवित हो सकते हैं या मृत। यदि आप अभी और यहीं जीवित हो सकते हैं, तो मृत्यु नहीं है। और यदि आप मर ही चुके हैं, तो फिर कोई डर शेष नहीं है। अतः आप मृत्यु से भयभीत केवल भविष्य में हो सकते हैं। इच्छाओं की योजना भविष्य के लिए होती है और मृत्यु सब कुछ छिन्न-भिन्न कर सकती है, इसलिए हम मृत्यु से भयभीत होते हैं।

कोई भी पशु मृत्यु से भयभीत नहीं है, क्योंकि किसी भी पशु की भविष्य के लिए कोई योजना नहीं होती। इसके अलावा कोई भी दूसरा कारण नहीं है—भविष्य के लिए कोई योजना नहीं। भविष्य नहीं है, अतः मृत्यु नहीं है। मृत्यु से क्यों भयभीत हों, यदि भविष्य के लिए कोई योजना नहीं है? मृत्यु से कुछ भी छिन्न-भिन्न नहीं होगा। जितनी बड़ी योजनाएं होती हैं, उतना ही अधिक भय होता है। मृत्यु, वास्तव में, इस बात का भय नहीं है कि आप मर जाएंगे; बल्कि इस बात का भय है कि आप अपरिपूर्ण ही मर जाएंगे और यह संभव नहीं है कि इच्छाओं को परिपूर्णता तक ले जाया जा सके और मृत्यु कभी भी आ सकती है।

यदि मैं अपरिपूर्ण ही मरता हूं, तो सचमुच भय है। मैं अभी तक अपरिपूर्ण हूं। मैंने एक क्षण भी परिपूर्णता का नहीं जाना, और मृत्यु आ सकती है। अंत मैं निरर्थक ही जीया। जिंदगी बेकार गई, बिना किसी शिखर के, बिना एक भी क्षण सत्य, शांति, सौंदर्य, मौन के जाने। मैं सिर्फ एक अर्थहीन निष्प्रयोजनता में जीया, और मृत्यु किसी भी क्षण आ सकती है। तब मृत्यु एक भय बन जाती है। यदि मैं परिपूर्ण हूं, यदि मैंने वह जाना है जो कि जीवन किसी को अवगत करा सकता है, यदि मैंने वह जाना है जो कि वस्तुतः जीवंत है, यदि मैंने एक भी क्षण सौंदर्य का, प्रेम का, परिपूर्णता का जाना है तो फिर मृत्यु का भय कहां है? कहां है भय?

मृत्यु आ सकती है; वह कुछ भी छिन्न-भिन्न नहीं कर सकती। वह कुछ भी नहीं कर सकती। मृत्यु सिर्फ भविष्य को गड़बड़ कर सकती है। मेरे लिए अब भविष्य नहीं है। मैं इसी क्षण भरा हुआ हूं। तब मृत्यु कुछ नहीं कर सकती। मैं उसे स्वीकार कर सकता हूं। यहां तक कि वह आनंद भी साबित हो सकती है।

इसलिए वह, जो कि मृत्यु के लिए खुला है, परमात्मा के लिए, भी खुला हो सकता है। खुला होने का मतलब होता है अभय। निर्दोषता आपको खुलापन, निर्भयता, एक जीते न जा सकने की स्थिति बिना किसी भी सुरक्षा के प्रबंध के दे देती है। वही आवाहन है।

और यदि आप ऐसे क्षण में हैं तब कि मृत्यु भी यदि आए तो आप उसका स्वागत कर सकते हैं, उसे गले लगा सकते हैं, उसका आतिथ्य कर सकते हैं तो फिर आपने परमात्मा का आवाहन किया है। अब मृत्यु कभी भी नहीं आ सकती; केवल परमात्मा ही आ सकता है—मृत्यु में भी केवल परमात्मा ही आ सकता है—मृत्यु में भी केवल परमात्मा होगा। मृत्यु अब वहां नहीं होगी, केवल परमात्मा ही होगा।

मारपा—एक तिब्बती रहस्यवादी मर रहा है। हर एक रो रहा है और मारपा चिल्लाता है, रुको! ऐसे शुभ अवसर पर तुम क्यों रो रहे हो? मैं परमात्मा से मिलने जा रहा हूं। वह अभी और यहां है। और वह हंसता है, और मुस्कुराता है और अंतिम गीत गाता है, और हर एक रोता जा रहा है क्योंकि परमात्मा वहां किसी को भी दिखलाई नहीं पड़ता है।

मारपा कहता है—परमात्मा यहां और अभी है और तुम क्यों रो रहे हो? इतना आनंदोत्साह मनाने का अवसर! इतना शुभावसर! गाओ और नाचो और खुशियां मनाओ! मारपा अपने मित्र से मिलने जा रहा है। परमात्मा बस अभी और यहीं है। मैंने लंबी प्रतीक्षा की है और अब वह क्षण आया है। तुम क्यों रो रहे हो? मारपा को

समझ में नहीं आता कि क्यों रो रहे हैं। वे भी नहीं समझ पाते कि मारपा गीत क्यों गा रहा है? क्या वह पागल हो गया है? हां, सचमुच, वह हमारे लेखे पागल ही हो गया है। मृत्यु वहां खड़ी है और ऐसा लगता है कि वह पागल हो गया है। मारपा कुछ और देख रहा है। मारपा वस्तुतः मनुष्य जाति में एक सर्वाधिक खिला हुआ व्यक्ति था।

जब मारपा अपने गुरु के पास आता है। गुरु कहता है, श्रद्धा ही कुंजी है। तब मारपा कहता है—तो फिर मुझे मेरी श्रद्धा की परीक्षा का उपाय बताओ। यदि श्रद्धा ही कुंजी है तो मेरी श्रद्धा की परीक्षा का कोई उपाय बताओ। वे एक पहाड़ी पर बैठे थे और गुरु ने कहा, कूद जाओ। और मारपा कूद जाता है। यहां तक कि गुरु भी सोचता है कि वह मर जाएगा। कई अनुयायी वहां मौजूद हैं और वे भी सोचते हैं कि वह पागल हो गया है और उन्हें उसकी एक हड्डी का पता नहीं चलेगा।

वे सब दौड़ कर नीचे जाते हैं और मारपा वहां पर बैठा हुआ है और गाना गा रहा है और नाच रहा है। अतः गुरु पूछता है कि क्या हुआ? ऐसा लगता है कि वह एक घटना संयोग था। गुरु भी अपने मन में चुपचाप सोचता है कि वह कोई घटना संयोग था; ऐसा असंभव है। ऐसा कैसे हो सकता है? यह एक संयोग की बात है। मुझे किसी दूसरी तरह से इसकी परीक्षा लेनी पड़ेगी? गुरु ने कितने ही ढंग से उसकी परीक्षा ली।

गुरु उसे एक जलते हुए मकान में जाने के लिए कहता है। वह भीतर चला जाता है और वह बाहर निकल आता है बिना लपटों में झुलसे हुए। उसे समुद्र में कूदने के लिए कहा जाता है और वह कूद जाता है। कितनी ही परीक्षाएं ली जाती हैं और अब गुरु नहीं कह सकता कि यह मात्र घटना संयोग है। इसलिए वह मारपा से पूछता है—तुम्हारा गुप्त रहस्य क्या है? मारपा कहता है—मेरा गुप्त रहस्य। आपने कहा था कि श्रद्धा ही कुंजी है और मैंने आपकी बात मान ली।

गुरु कहता है, अब रुक जाओ, क्योंकि डर है, कुछ भी हो सकता है। अतः मारपा कहता है, अब कुछ भी हो सकता है, क्योंकि मैंने मात्र आपका शब्द पकड़ लिया था। अब मैं आपका शब्द नहीं पकड़ सकता, यदि आप स्वयं ही निश्चित नहीं हैं। मैंने सोचा था कि श्रद्धा ही कुंजी है, परन्तु अब यह काम न पड़ेगी, इसलिए कृपया दुबारा मुझे कोई आज्ञा न दें। अगली बार मैं मर जाऊंगा, इसलिए फिर से मुझे कोई आज्ञा न दें! यही शुद्धता है, बच्चों जैसी पवित्रता तिब्बत में, मारपा को वफादार मारपा के नाम से जाना जाता है। यह एक बच्चों जैसी श्रद्धा है।

अतः कहानी कहती है कि मारपा अपने गुरु का भी गुरु बन गया। उसका गुरु उसके सामने झुका और बोला—अब वह श्रद्धा की कुंजी मुझे दो, क्योंकि मुझमें कोई श्रद्धा नहीं है। मैं तो सिर्फ बात कर रहा था। मैंने केवल सुना है कि श्रद्धा ही कुंजी है, इसलिए मैं तो सिर्फ बात कर रहा था। अब वह तुम मुझे दो। अतः मारपा अपने गुरु का भी गुरु हो गया।

मारपा का मन शुद्ध, निर्दोष व हिसाब न लगाने वाला है। एक भी क्षण गणना करने का या चालाकी करने का नहीं है। उसे इतना भी नहीं देखना है कि खाई कितनी गहरी है। वह गुरु से इतना भी नहीं पूछता है—क्या मैं आपकी बात को शब्दों में लूं अथवा यह मात्र एक प्रतीकात्मक है अथवा आप कोई रहस्य की भाषा में कुछ कह रहे हैं? क्या मैं कूद ही जाऊं वास्तव में, या आप किसी आंतरिक छलांग की बात कर रहे हैं? बिना किसी हिसाब के, चालाकी के वह कूद जाता है। गुरु कहता है, कूद जाओ और वह कूद जाता है। दोनों के बीच अंतराल नहीं है। एक क्षण का भी अंतराल पड़ा और आपने हिसाब लगाया।

ऐसी ही अंतराल-रहित शुद्धता आपको खोलती है। आप एक खुला द्वार हो जाते हैं। वही आवाहन है।

आज इतना ही।

बंबई, दिनांक १७ फरवरी, १९७२, रात्रि

आत्मा पूजा भाग-१

४ प्रश्न एवं उत्तर

पहला प्रश्न: भगवान, कल रात्रि आपने कहा था कि वासनाएं मृत-अतीत से कल्पित भविष्य के बीच लगती हैं। कृपया समझाएं, क्यों और कैसे यह मृत-अतीत इतना शक्तिशाली व प्राणवान साबित होता है कि यह एक व्यक्ति को अंतहीन वासनाओं की प्रक्रिया में बहने के लिए मजबूर कर देता है? कैसे कोई इस प्राणवान अतीत–अचेतन व समष्टि अचेतन से मुक्त हो?

अतीत प्राणवान जरा भी नहीं है, वह पूरी तरह मृत है। परन्तु फिर भी उसमें वजन है–एक मृत-वजन। वह मृत-वजन ही काम करता है। वह शक्तिशाली बिलकुल भी नहीं। क्यों यह मृत-वजन काम करता है, इसे समझ लेना चाहिए।

अतीत इतना वजनी है, क्योंकि वह ज्ञात है, अनुभव किया हुआ है मन सदैव ही अज्ञात से भय खाता है, जो भी अनुभव नहीं किया गया है, उससे डरता है। और आप अज्ञात की आकांक्षा करेंगे भी कैसे? आप अज्ञात की आकांक्षा नहीं कर सकते। आकांक्षा केवल ज्ञात की ही की जा सकती है। इसलिए इच्छाएं हमेशा पुनरुक्त होती हैं। हर बार वे एक वर्तुल में पुनरुक्त होती हैं। आप सदैव एक ढांचे में, एक सर्किल में घूमते हैं। मन मात्र इन पुनरुक्तियों का एक ढांचा, एक ग्रूव बन जाता है, और जितना ही आप एक विशेष बात को दोहराते हैं, उतनी ही वह वजनी बनती जाती है; क्योंकि ग्रूव–ढांचा गहरा होता जाता है।

अत: अतीत इसलिए महत्वपूर्ण नहीं है कि वह शक्तियुक्त है, या वह आपको जबरदस्ती कुछ करने के लिए मजबूर करता है या कि वह शक्तिशाली है, जीवंत है, बल्कि सिर्फ इसलिए कि वह एक मृत-ढांचा है और वह इतनी बार पुनरुक्त किया गया है कि उसे फिर से दोहराया जाना बहुत आसान और स्वचालित है। जितना आप किसी भी बात को दोहराते हैं, उतनी ही आसान व सुविधापूर्ण हो जाती है। उसमें मूल सुविधा यह है कि यदि आप एक ही बात को पुनरुक्त कर रहे हैं, तो उसमें आपको सजग होने की आवश्यकता नहीं। सजगता सर्वाधिक असुविधापूर्ण है। यदि आप उसी बात को पुन: दोहरा रहे हैं, तो आपको सजग होने की आवश्यकता नहीं; आप बस गहरी निद्रा में सोते रहें और वह बात अपने आप यंत्रवत पुनरुक्त हो जाएगी। इसलिए अतीत की पुनरुक्ति सुविधापूर्ण है; क्योंकि आपको सजग रहने की जरूरत नहीं। आप सोते रह सकते हैं और मन उसे अपने आप दोहराता जाएगा। इसीलिए जो लोग कहते हैं कि निर्वासना की स्थिति आनंद की स्थिति है, वे यह भी कहते हैं कि निर्वासना और सजगता पर्यायवाची हैं।

आप वासना-रहित नहीं हो सकते, जब तक कि आप पूरी तरह सजग नहीं होते। अथवा यदि आप सजग हैं, तो आप पाएंगे कि आप वासना-रहित हैं; क्योंकि वासनाएं आपके मन पर पुनरुक्ति की शक्ति तभी आरोपित कर सकती हैं, जब कि आप सजग नहीं हैं। अत: जिता ही मन सोया हुआ है, उतना ही यंत्रवत व पुनरुक्ति करने वाला वह होगा। इसीलिए विचारों की इतनी पकड़ है; क्योंकि वे सिर्फ पुनरुक्तियां हैं और क्योंकि वे ज्ञात की हैं। आप अज्ञात की चाह कैसे कर सकते हैं?

अज्ञात के लिए कोई चाह नहीं की जा सकती। अज्ञात समझा-विचारा नहीं जा सकता। इसलिए जब हम परमात्मा की भी इच्छा करते हैं, तब भी हम अज्ञात की इच्छा नहीं कर रहे होते हैं। परमात्मा से भी हमारा मतलब किसी ज्ञात चीज से ही होता है। इसलिए और गहरे जाएं और पता लगाएं कि परमात्मा से आपका क्या मतलब है–विशेषत: अपने परमात्मा से क्या अर्थ है आपका? आप परमात्मा के वेश में भी किसी ज्ञात चीज को ही पाएंगे, किसी अज्ञात अनुभव को ही पाएंगे। अत: वह शाश्वत सुख भी हो सकता है।

इसलिए तथाकथित धार्मिक लोग पूछते रहते हैं कि क्यों आप अपना जीवन वासनाओं में गंवाते हैं जो कि क्षणिक है? वे आपको अपने पास आने के लिए कहते हैं, क्योंकि यहां पूर्ण तृप्ति है और यहां संभावना है स्थापी सुख पाने की। भाषा समझ में आ सकती है। आप क्षणिक सुख को जानते हैं; आप स्थायी सुखी की इच्छा कर सकते हैं। इसलिए परमात्मा के वेश में भी आपका सुख ही है।

हो सकता है आप परमात्मा को इसलिए खोज रहे हों क्योंकि आप मृत्यु से भयभीत हैं। तब परमात्मा के वेश में आप अमरत्व को चाह रहे हैं, आप मृत्यु नहीं, एक शाश्वत जीवन की मांग कर रहे हैं। आप इस जीवन को जानते हैं, वह आपका अनुभव है। अब आप इसी को शाश्वत बनाना चाहते हैं। इसलिए जब कभी हम परमात्मा की बात करते हैं, ईश्वर की, मुक्ति की, मोक्ष की बात करते हैं, तब शब्दों से धोखा न पाएं, क्योंकि शब्द अपने में बिलकुल ही भिन्न बात छिपाए हो सकते हैं। वे कुछ छिपाए हुए हैं, क्योंकि आप उस अज्ञात की आकांक्षा कैसे कर सकते हैं? आप उसके बार में सोच भी कैसे सकते हैं? आप कैसे उसे मांग सकते हैं, जिसे आपने कभी जाना भी नहीं?

वस्तुत: जब आप किसी अच्छा से भरे हुए नहीं होते तो घटना बिलकुल भिन्न ही होती है। अज्ञात बाप तक आता है, आप उसकी आकांक्षा नहीं कर सकते। जब आप इच्छा रहित होते हैं, अज्ञात आपके पास आता है। आप उसकी आकांक्षा नहीं कर सकते। निर्वासना की स्थिति ही द्वार है अज्ञात के आने के लिए। आप उसकी चाह नहीं कर सकते, क्योंकि उसकी चाह करना ही बाधा बन जाती है। इसलिए मन दोहराता रहता है। वह एक यांत्रिक चिन्ह है। इसलिए मन प्राणवान नहीं है। मन तो मात्र एक मृत यांत्रिक वस्तु है।

गति आपकी चेतना में है और जब आपकी चेतना मन के साथ तादात्म्य जोड़ती है, तभी मृत मन संचालित होता है। गति मानता आपकी ऊर्जा से जुड़ी है; वह आपके मन का कोई हिस्सा नहीं। उसके पीछे उसे प्रक्रिया करने वाले आप ही होते हैं। यदि आप मन से तादात्म्य बनाते हैं, यदि आप सोचते हैं कि आप मन हैं, तभी मन गतिमान होता है। यदि आप मन से जुड़े हुए नहीं हैं, तो फिर मन मृत है, मात्र एक मृत बोझ-मात्र एक यांत्रिक संकलन।

वह एक लंबा संकलन है-जोड़ है-लाखों-करोड़ों सालों के विकास का। कई-कई जिंदगियां वहां इकट्ठी हैं। ऐसा नहीं है कि आपका मन इसी जिंदगी का है, वह जीवन की समस्त धारा से संबंधित है। वह विकसित हुआ है, इसलिए उसमें गहरे ग्रूव्स-गड्ढे हैं। ऐसा नहीं है कि आप ही प्यार में पड़ते हैं। आपके माता-पिता भी आपके पहले प्यार में पड़े थे। उनके माता-पिता भी उनके पहले प्यार में पड़े थे। मन के पास एक गहरा ढांचा है प्यार में पड़ने के लिए। इसलिए जब आप प्यार में पड़ें तो धोखे में न आएं कि आप प्यार में पड़े हैं। सारी मनुष्य जाति आपके पीछे खड़ी है। सारी मनुष्य जाति ने वह ढांचा बनाया है। वह आपकी हड्डियों में है; वह आपके कोषों में है; वह आपके हर एक कण में है। हर एक कोष में एक अंग यौन का भी होता है और प्रत्येक कोष में ग्रूव-ढांचा होता है, और हर एक कोष में मन होता है-लंबी स्मृतियां होती हैं, जिनके आरंभ का कोई पता नहीं, ऐसी स्मृतियां होती हैं।

इसलिए जब आप मन से जुड़े होते हैं, तो वह शक्तिशाली हो जात है, एक गतिमान शक्ति हो जाता है, आप जिसे ऊर्जा प्रदान करते हैं और वह मृत मशीन काम करने लग जाती है। आप ही उसे चलाते हैं। इसलिए याद रखें, शक्ति आपकी है, गतिमानता आपकी हैं। मन तो एक यांत्रिक वस्तु है, जो लाखों-लाखों वर्षों में विकास के द्वारा बनाया गया है। परन्तु इसके पास गहरे ग्रूव हैं, ढांचे हैं और यदि आपने इससे तादात्म्य जोड़ा, तो आपको इन ढांचों में गिरना ही पड़ेगा। फिर कोई रक्षा नहीं है। इसलिए पहली बात यह है कि कैसे अपने को मन से अलग करें, कैसे निरंतर यह स्मरण रखें कि मन कुछ और है और आप कुछ और हैं। यह कठिन है; यह बहुत ही कठिन है। परन्तु यह संभव है; संभव नहीं। यदि आपके पास एक क्षण भी बिना तादात्म्य

के अस्तित्व का हो, तो आप फिर से वही नहीं हो सकते। एक बार आपको पता चल जाए कि मन की कोई शक्ति नहीं है और मैं ही शक्ति हूं, शक्ति मुझसे ही आती है—यदि एक क्षण के लिए भी आपको अपनी मालकियत की एक झलक भी मिल जाए—तो मन फिर मालिक नहीं बन सकेगा, और केवल तब आप अज्ञात में प्रवेश कर सकते हैं।

मन कभी अज्ञात में प्रवेश नहीं कर सकता। वह ज्ञात के द्वारा निर्मित है। वह वह ज्ञात की उपज है, इसलिए वह अज्ञात में गति नहीं कर सकता; इसीलिए मन कभी नहीं जान सकता किस सत्य क्या है, परमात्मा क्या है? मन कभी नहीं जान सकता कि स्वतंत्रता क्या है; मन कभी नहीं जान सकता कि जीवन क्या है, क्योंकि आत्यंतिक रूप से मन मृत है। यह केवल मृत धूल है जो कि सदियों-सदियों में इकट्ठी की गई है—मात्र मृत-स्मृति की धूल।

ऐसा लगता है कि मन जबरदस्ती करता है। वह जबरदस्ती नहीं करता, वस्तुतः वह केवल आपको सर्वाधिक आसान ग्रूव—ढांचा दे देता है। वह सिर्फ आपको रोजाना का दुहराया गया सरल मार्ग दे देता है और आप सुविधा के शिकार बन जाते हैं; क्योंकि एक नए मार्ग को निर्मित करना और नए ढांचे में चलना बहुत मुश्किल और असुविधापूर्ण है। यही मतलब है तप का। यदि आप एक नए ग्रूव की ओर चले, जो कि मन के द्वारा निर्मित नहीं किया गया; परन्तु जो कि चेतना के द्वारा निर्मित किया गया हो तो आप तपश्चर्या में हैं—आस्टेरिटी में हैं। वह बहुत कठिन हैं।

गुरजिएफ के पास बहुत से प्रयोग थे। एक प्रयोग कभी-कभी हमारी इस यंत्रवत्ता से इनकार करने का भी था। आपको भूख लगी है आप मना कर दें और अपने शरीर को कष्ट पाने दें। आप बिलकुल चुपचाप और शांति हो जाएं और याद रखें कि शरीर को भूख लगी। है। उसे दबाएं नहीं। उसे दबाएं नहीं कि वह भूखा नहीं है। वह भूखा है, आप जानते हैं। परन्तु साथ-साथ आप उससे कहते हैं कि मैं यह भूख आज मिटाने वाला नहीं हूं। भूख रही, कष्ट भोगो। परन्तु मैं आज इस मृत ढांचे में नहीं चलता। मैं अलग ही रहूंगा।

और आप ऐसा कर सकें तो अचानक आपको एक अंतराल मिलेगा। शरीर भूखा है, परन्तु आप में और उसमें कहीं दूरी है। परन्तु यदि आप अपने मन को कहीं और व्यस्त कर लेते हैं, तो आप फिर चूक गए। यदि आप मंदिर चले जाते हैं और कीर्तन करने में लग जाते हैं अपनी भूख को भूलने के लिए, तो फिर आप चूकते हैं। शरीर को भूखा रहने दें। अपने मन को व्यस्त न करें भूख से बचने के लिए। भूख रहें परन्तु अपने शरीर से कह दें कि आज मैं जाल में पड़ने वाला नहीं हूं। तुम रहो, तुम कष्ट भोगो।

ऐसे लोग हैं जो कि उपवास कर रहे हैं, परन्तु निरर्थक है; क्योंकि जब कभी वे उपवास करते हैं तो मन को व्यस्त करने की कोशिश करते हैं ताकि भूख का पता न लगे और वह महसूस न हो। यदि भूख का अनुभव न हो तो समझिए आप सारी बात ही चूक गए। तब आप चालाकी कर रहे हैं। तब भूख अपनी समग्रता में नहीं है, अपनी गहनता में नहीं है। उसे होने दें। उससे बचें नहीं। उसके तथ्य को मौजूद रहने दें और आप अलग हट जाएं और शरीर से कह दें कि आज मैं कुछ भी तुम्हें देने नहीं जा रहा। कोई द्वंद्व, दबाव नहीं है और न ही कोई बचाव है। और यदि आप ऐसा कर सकें तो अचानक आप उस अंतराल के प्रति सजग होंगे। आपका मन कुछ मांगता है।

उदाहरण के लिए, कोई क्रोध में आ गया। वह आपसे क्रोधित है और मन प्रतिक्रिया करने लगता है क्रोधित होने के लिए। अपने मन से कहें कि आप इस बार जाल में गिरने वाले नहीं। सजग रहें। मन में क्रोध को रहने दें, परन्तु आप अलग हट जाएं। सहयोग न करें। उसके साथ तादात्म्य न जोड़ें। और आप महसूस करेंगे कि क्रोध कहीं और है। वह आपके चारों ओर है, परन्तु वह आप में नहीं है। वह आपसे संबंधित नहीं। वह

एक धुएं की तरह आपके चारों ओर है। वह चलता चला जाता है आपकी प्रतीक्षा में कि आप आए और सहयोग करें।

हर तरफ से खिंचाव होगा; वही मतलब हैं खिंचाव का, प्रलोभन का। कोई शैतान नहीं है जो आपको प्रलोभन दे सके। आपका अपना मन ही खिंचता है, क्योंकि वही सब से ज्यादा आसान रास्ता है होने का और व्यवहार करने का। सुविधा ही प्रलोभन है; सुविधा ही शैतान है। मन कहेगा, क्रोध करो। स्थिति मौजूद है और यांत्रिकता चालू हो गई है। सदैव जब कभी ऐसी स्थिति बनी है, आप क्रोधित हुए हैं; इसलिए मन फिर आपको वही रास्ता पकड़ा देता है। जहां तक यह चलता है ठीक है, क्योंकि मन आपको वही प्रतिक्रिया जो कि आप करते रहे हैं फिर से उपलब्ध कर देता है। परन्तु कभी-कभी रास्ते से अलग हट कर खड़े हो जाएं और मन से कहें, ठीक है, क्रोध आ रहा है। बाहर मुझसे कोई क्रोधित है। तुम मुझे वही पुरानी प्रतिक्रिया दे रहे हो, परन्तु इस बार में सहयोग करने के लिए राजी नहीं हूं। मैं यहां खड़ा रहूंगा और देखूंगा कि क्या होता है। अचानक सारी स्थिति ही बदल जाती है। यदि आप सहयोग न दें, तो मन मृत हो कर गिर जाएगा; क्योंकि यह आपका सहयोग ही है जो कि उसे गति, ऊर्जा प्रदान करता है। वह आपकी ऊर्जा ही है; परन्तु आपको उसका पता तब चलता है जब कि मन उसका उपयोग कर चुकता है। उसे कोई सहयोग न दें तो मन एक दम गिर जाएगा जैसे कि बिना रीढ़ की हड्डी के हो—मात्र एक मृत सर्प की तरह, बिना जीवन के। यह वहां होगा, और पहली बार आपको अपने भीतर अपनी एक खास शक्ति का पता चलेगा जो कि आपकी है और आपके मन की नहीं है।

यह ऊर्जा ही शुद्ध ऊर्जा है और इसके साथ ही कोई अज्ञात में प्रवेश कर सकता है। वस्तुत: यह ऊर्जा ही अज्ञात में गतिमान होता है, यदि यह मन से संबंधित न होती हो। यदि यह मन से संबंधित हो, तो यह ज्ञात में चलती है। यदि यह ज्ञात में चलती है तो पहले यह इच्छा बन जाती है। यदि यह अज्ञात में गतिमान होती है तो यह निर्वासना की शक्ल ले लेती है। तब केवल गति होती है—ऊर्जा का एक खेल, मात्र ऊर्जा का नृत्य, सदैव अज्ञात में बहती हुई ऊर्जा, क्योंकि मन सदैव ज्ञात ही को प्रदान कर सकता है। और यदि आप स्वयं को मन से तोड़ सकें, तो ऊर्जा को गति करना होता है; यह स्थिर नहीं रह सकती। यही मतलब होता है ऊर्जा का। उसे गति करना ही पड़ेगा। गति ही उसका जीवन है। वह कोई ऊर्जा का गुण नहीं। ऐसा नहीं है कि ऊर्जा बिना गति के रह सके। नहीं, यही उसका जीवन है। वह आत्यंतिक है। ऊर्जा का अर्थ ही होता है गतिमानता। इसीलिए वह चलती है।

यदि मन उसे मार्ग देता है, तो वह उन मार्गों पर अग्रसर हो जाती है। और यदि कोई ग्रूव, कोई मार्ग न दिया जाएं और यदि आप सिर्फ मन को छोड़ दें, तब भी वह गति करती है, पर अब यह गति दिशाहीन होती है। यह गति ही खेल है, लीला है। यह गति दी जाती है। यह गति आध्यात्मिक और इच्छा रहित है। ऐसा नहीं है कि कोई इच्छाएं हैं और आप चलते हैं। यह ऐसा है कि कुछ और नहीं कर सकते आप सिवाय गति करने के। अब आप ऊर्जा व गति हैं। अत: इस भेद को जानें।

जब मन काम करता है, वह एक मृत बोझ की, एक मैकेनिकल बोझ की तरह काम करता है अतीत के द्वारा। वह आपको भविष्य की ओर धक्का देता है, क्योंकि अतीत भविष्य की ओर धक्के दे रहा है। अतीत फिर अपनी वासनाओं को प्रक्षेपित कर रहा है। अत: पहले वासनाओं की पुनरुक्ति की बात को समझ लें।

बहुत सारी वासनाएं हैं—वस्तुत: वे बहुत थोड़ी सी हैं। आप उन्हें दोहराते हैं। जरा गिनती करें कि आपकी कितनी इच्छाएं हैं? वे बहुत नहीं हैं बहुत थोड़ी है। आप इतनी भी नहीं पाएंगे कि उन्हें उंगलियों पर गिन सकें और यदि वस्तुत: आप गहरे देखें तो कदाचित आप एक ही इच्छा को पाएंगे। उसके बदले हुए रूप हैं, परन्तु वास्तव में, वासना तो एक ही है। और वही वासना बार-बार दोहराई जाती है जीवन के बाद जीवन में।

आप वही-वही दोहराते जाते हैं। तब ऐसा लगता है, ऐसा दिखलाई पड़ता है कि आप लाचार हैं और चक्र चल रहा है और आप कुछ नहीं कर सकते। किंतु ऐसा है नहीं।

आप निःसहाय हैं; क्योंकि आप भूल ही गए हैं पूरी तरह से कि जो ऊर्जा चक्र को चला रही है, वह आपके द्वारा ही प्रदान की जाती है। अतीत के कारण, भविष्य मात्र एक पुनरुक्ति हो जाता है। अतीत के कारण, भविष्य मात्र एक पुनरुक्ति हो जाता है। वह एक प्रक्षेपित किया गया अतीत है। आप फिर वही कामना करते हैं और वही-वही करते चले जाते हैं। इसीलिए मैं कहता हूं कि अतीत और भविष्य दोनों ही मन के हिस्से हैं, न कि समय के हिस्से। समय तो अभी और यहीं है, वर्तमान है। यदि मन नहीं चल रहा है, तो ऊर्जा अभी और यही, इसी क्षण में होगी। वह गतिमान होगी, क्योंकि वह ऊर्जा, है। परन्तु अब गति अज्ञात में होगी। ज्ञात अब बिलकुल भी नहीं है।

किसी ने हुई-हाई से पूछा—आपको कैसे उपलब्ध हुआ? आप कैसे पहुंचे? हुई-हाई ने कहा—जब मैं अ-मन हो गया, तो मैंने पा लिया, मैं पहुंच गया।

हम मन हैं, उसका मतलब है कि हम अतीत से बंधे हैं। यदि हम अ-मन हो जाएं, तो उसका मतलब होता है कि हम अतीत से बंधे न होंगे। तब वह क्षण मुक्त व जाता होगा और ऊर्जा अग्रसर होगी—कुछ पाने को नहीं बल्कि इसलिए कि वह ऊर्जा है। इस भेद को ठीक से समझ लें। यह किसी कारण कुछ पाने को नहीं चलती, अपितु वह केवल गति करती है; क्योंकि गति ऊर्जा का स्वभाव है।

एक नदी बह रही है, और साधारणतः हम सोचते हैं कि वह सागर के लिए चल रही है। वह कैसे जान सकती है? वह सागर के लिए नहीं चलती। वह चल रही है, क्योंकि वह एक ऊर्जा है। अंततः सागर आ जाता है यह दूसरी बात है। जब आप अज्ञात में चलते हैं, तो अंततः आप परमात्मा को पहुंच जाते हैं। वह वहां होता है। यदि आपकी गति शुद्ध है, तो आप पहुंच जाते हैं।

नदी चलती जाती है बिना जाने, किसी नक्शे के। अतीत उसे कोई नक्शा प्रदान नहीं कर सकता; क्योंकि नदी अतीत के द्वारा दिए गए मार्गों पर बहने वाली नहीं है। उसका हर एक कदम आता में है और वह कहां जा रही है, इसे जानने का उसके पास कोई उपाय नहीं है। वह किसी इच्छा वश नहीं चल रही है। वह कुछ पाने को नहीं बढ़ रही। भविष्य अनजाना है, मात्र अज्ञात व अंधकारपूर्ण। वह चलती है। क्योंकि चलती है वह? वह चलती है, क्योंकि वह एक ऊर्जा है।

एक बीज उग रहा है। एक पेड़ बढ़ रहा है। तारे चल रहे हैं। वे सब क्यों चल रहे हैं? क्या उन्हें कहीं पहुंचना है? नहीं, बल्कि इसलिए कि वे एक ऊर्जा हैं। शुद्ध ऊर्जा चलती है। क्योंकि शुद्ध ऊर्जा कुछ और नहीं कर सकती, वह गति करती है। इसलिए जब आप शुद्ध ऊर्जा होते हैं, मन नहीं, वरन अ-मन ऊर्जा, तो आप गति करते हैं। तब हर कदम अज्ञात में होता है और जीवन एक आनंद हो जाता है। वह आनंदपूर्ण हो जाता है, क्योंकि पुराना फिर से नहीं दोहराया जाता। फिर से वह सुबह नहीं आएगी—फिर से यह क्षण नहीं आएगा। अब यह एक रोमांच है, एक थ्रिल—एक कंपन है प्रतिपल। यह आनंद की तरंग, ही मीरा के नृत्य को पैदा करती है। यह तरंग ही चैतन्य के गीत को उत्पन्न करती है। इस आनंद की मौज में प्रत्येक क्षण कुछ नया फूट रहा होता है, विस्फोट हो रहा होता है।

एक बुद्ध कभी ऊबते नहीं हैं। वे सदैव ताजे दिखलाई पड़ते हैं। सारिपुत्र बुद्ध के पास आता है। सारिपुत्र एक बड़ा ही जिज्ञासु नवयुवक था, एक बड़ा विद्धान था, उसे वह सब कुछ ज्ञात था जो कि शास्त्रों से जाना जा सकता था। एक महापंडित था। जब वह बुद्ध के पास आया तो उसने बहुत प्रश्न पूछे। दूसरे दिन फिर उसने बहुत से प्रश्न पूछे। तीसरे दिन फिर कई सवाल किए।

आत्मा पूजा भाग-१

आनंद, जो कि बुद्ध का एक दूसरा शिष्य था, बुरी तरह ऊब गया। उसने बुद्ध से पूछा कि आप ऊबे नहीं? यह वही-वही प्रश्न फिर से पूछे चला जा रहा है। बुद्ध ने आनंद से पूछा—क्या उसने वही प्रश्न दोहराए हैं? क्या उसने एक भी सवाल पुनरुक्त किया है?

बुद्ध जैसी चेतना के लिए हर क्षण इतना नया है कि आप वहां फिर से पुराना प्रश्न नहीं दोहरा सकते; क्योंकि प्रश्नकर्ता वही कभी नहीं रहता। तुम फिर वही प्रश्न कैसे पूछ सकते हो, जो कि तुमने कल पूछा था? आप से फिर वही प्रश्न कैसे पूछे जा सकते हैं जब कि आप फिर से वही नहीं होगे। और बुद्ध ने कहा—यदि वह पुनः वही प्रश्न भी पूछ रहा था, तो भी वह उसी आदमी से नहीं पूछ रहा था। इसलिए मैं कैसे कह सकता हूं कि वह दोहरा रहा है! उसने कल किसी और से पूछा होगा। मैं कहां था? वह ऊर्जा तो गई।

कोई बुद्ध से क्रोधित था और उसने उनका अपमान किया। फिर उसने पश्चात्ताप किया और दूसरे दिन बुद्ध के पास क्षमा मांगने आया। बुद्ध को बड़ा आश्चर्य हुआ और उन्होंने कहा—आप बड़ी ही विचित्र आदमी हैं। आप अपमान किसी व्यक्ति का करते हैं और क्षमा किसी और व्यक्ति से मांगते हैं! उस व्यक्ति ने कहा—आप कहते क्या हैं? मैं विचित्र हूं या आप? मैं कल आया था और आपको अपमान कर गया था। मुझे बड़ा दुःख हुआ और मैं सो न सका।

बुद्ध ने कहा—इसीलिए तुम फिर से पुनरुक्ति कर रहे हो, परन्तु मैं सो सका और अब मैं दूसरा ही आदमी हूं। नदी आगे बढ़ गई। अब वह वही नहीं है और मैं वही कभी भी नहीं होऊंगा। इसलिए तुम अब बड़ी मुश्किल में रहोगे, क्योंकि अब तुम उस आदमी से कभी क्षमा कैसे मांगोगे, जिससे तुम कभी नहीं मिल सकोगे! यदि मैं कभी उस आदमी से मिला, तो जो कुछ तुमने कहा है, उससे कह दूंगा।

यह ऊर्जा अज्ञात में गति करती है। यह सदैव ताजी और युवा है। इसलिए एक बुद्ध कभी भी वृद्ध नहीं हो सकते। शरीर, सचमुच बूढ़ा होता है, परन्तु एक बुद्ध कभी भी बूढ़े नहीं होते। वे सदैव युवा रहेंगे। इसीलिए हमने कभी राम, कृष्ण या बुद्ध की बुढ़ापे की तसवीरे नहीं बनाई। वे बूढ़े हुए, परन्तु हमारे पास उनकी बूढ़े होने की कोई तसवीरे नहीं है; कृष्ण की, राम की अथवा बुद्ध की अथवा महावीर की वृद्धावस्था की कोई तसवीर नहीं है। हमारे पास ऐसी कोई आकृति नहीं है। ऐसा नहीं है कि वे कभी बूढ़े नहीं हुए, शरीर तो सब का समान ही चलेगा। उनकी वृद्धावस्था की कोई आकृति नहीं बना कर हमने और भी अधिक कहना चाहता है। वस्तुतः वे कभी बूढ़े नहीं हुएः वे इतने गतिशील थे, इतने युवा थे। ऐसे लोगों के लिए मृत्यु अंत नहीं है। यह, और आगे गति है। यह कोई मृत्यु नहीं है।

मन डायनैमिक, गतिशील नहीं है। मन मैकेनिकल, यांत्रिक है। वह गतिमान हो सकता है, यदि आप उसके साथ सहयोग करें। आप उसके साथ सहयोग न करें, अपनी एकांतता स्मरण रखें, एक दूरन बनाएं रखें तथा सजग रहें और तब मन तो होगा, किंतु आप उससे बाहर कहीं और होंगे।

अंग्रेजी शब्द एक्सटेसि बहुत ही सुंदर और अर्थपूर्ण है। आपने कभी नहीं सोचा होगा कि इस एक्सटेसि शब्द का क्या मतलब होता है। इसका अर्थ होता है—बाहर खड़े हो जाना—टु स्टैंड आउटसाइड। यदि आप अपने से बाहर खड़े हो सकें, यदि आप अपने से बाहर हो सकें, तो आप एक्सटेसि में हैं। किसी ने सुझाव दिया है कि समाधि का अर्थ एक्सटेसि करना ठीक नहीं है; क्योंकि समाधि का अर्थ बाहर खड़े होना नहीं। वस्तुतः समाधि का अर्थ होता है अपने भीतर खड़े होना। इसलिए किसी ने दूसरा ही शब्द सुझाया है। उसने नए ही शब्द को निर्मित किया है। बजाय एक्सटेसि के अच्छा है कि समाधि का अनुवाद इंसटेसि किया जाए—भीतर खड़े होना।

आत्मा पूजा भाग-१

वास्तव में, इन दो शब्दों के दो भिन्न मतलब होते हैं, परन्तु बहुत ही सूक्ष्म रूप से उनके एक ही अर्थ हैं। यदि आप अपने मन के बाहर खड़े हो जो हैं, तो आप अपने भीतर खड़े हो सकते हैं। यदि आप अपने से बाहर खड़े हो सकते हैं—तथाकथित स्वयं के बाहर—तो आप पहली दफा अपने भीतर खड़े हो पाते हैं। इसलिए एक्सटेसि हो इन्सटेसि है। तब आप अपने केंद्र पर होंगे।

यदि आप अपने मन के बाहर होंगे तो आप अपने भीतर केंद्रित होंगे। इसलिए मन से बाहर जाना, चेतना के भीतर प्रवेश करना है। इसीलिए मन को एक मैकेनि म, एक यांत्रिकता, एक संग्रह, एक अतीत की तरह समझना पड़ेगा। और एक बार आप ऐसा अनुभव करें, तो फिर आप उसके बाहर होंगे। परन्तु हम चलते चले जाते हैं। हम उससे तादात्म्य करते चले जाते हैं।

जब कभी आप कहते हैं कि यह मेरा अतीत है, तो आप उससे तादात्म्य बनाए हुए हैं। भाषा को बदल दें और कभी-कभी इससे बहुत सहायता मिलती है। भाषा की पकड़ बहुत गहरी है। कहें कि यह मेरे अतीत के मन से जुड़ा है और उसका अंतर अनुभव करें। जब आप कहते हैं, यह मेरा अतीत है, तो आप उससे एक हो जाते हैं। कहें कि यह मेरे मन का हिस्सा है, मेरे अतीत के मन का और अनुभव करें कि सिर्फ भाषा की ही बदलाहट कितनी दूरी निर्मित कर देती है।

उदाहरण के लिए, हम कहते हैं कि मेरा मन तनावग्रस्त है। तब आप तादात्म्य जोड़े हैं। यहां तक कि हम कहते हैं—मैं तनावग्रस्त हूं! तब और भी ज्यादा तादात्म्य होता है। जब हम कहते हैं, मैं तनावग्रस्त हूं, तब कोई दूरी नहीं होती। यदि हम कह सके कि मैं जान रहा हूं कि मन तनावग्रस्त है, तो ज्यादा बड़ा अंतराल होता है। और अंतराल जितना अधिक होगा, उतना ही तनाव कम होगा।

इसलिए मनोविज्ञान कहता है कि कभी नहीं कहें कि मैं तनावग्रस्त हूं, क्योंकि सूक्ष्म रूप से वह दूसरे को जिम्मेवार ठहराता है। इसलिए मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि बजाय ऐसा कहने के मैं तनावग्रस्त हूं, कहें कि मैं तनाव से भर रहा हूं। तब दायित्व आपका है। इसलिए मन की, भाषा की, विचारों की पुरानी आदतों को छोड़ दें और तब आपकी ऊर्जा गतिमान होगी। और एक बार भी यदि मन न हो, तो आप पहली बार मुक्त होंगे।

दूसरा प्रश्न: भगवान, रामकृष्ण परमहंस के जीवन में एक उल्लेख है और उसे आपसे हमने कई बार सुना है कि भोजन के प्रति वे बड़े आसक्त थे। इससे यह संकेत मिलता है कि वासना जीवन से बहुत आत्यंतिक रूप से जुड़ी हुई है?

वासना जीवन से जुड़ी है, परन्तु जीवन वासना रहित हो सकता है। परन्तु तब शारीरिक जीवन असंभव हो जाएगा। वस्तुत: वासना ही वह कड़ी है जो जीवन को शरीर से जोड़ती है। यदि सारी इच्छाएं, वासनाएं गिर जाएं, तो शरीर फिर नहीं चल सकता। क्योंकि शरीर सिर्फ एक साधन है इच्छाओं की पूर्ति का। अभी जीवशास्त्री कहते हैं हमने इंद्रियां निर्मित की इच्छाओं के कारण। और यदि आप लगातार इच्छा करते चले जाएं, तो आपका शरीर नई इंद्रियां विकसित कर लेगा।

यह केवल हमारी इच्छा के कारण ही है कि हमारे पास आंखें हैं। साधारण: हम सोचते हैं कि चूंकि हमारे पास आंखें हैं, इसलिए हम देखते हैं। नहीं! जीवन शास्त्री कहते हैं कि चूंकि देखने की आकांक्षा है, इसलिए आंखें विकसित हो जाती हैं। यदि देखने की आकांक्षा न रहे, तो आंखें गिर जाएंगी। सारा शरीर अस्तित्व में आता है, क्योंकि आकांक्षा है।

बुद्ध ज्ञानोपलब्धि के बाद चालीस साल जिंदा रहे। एक प्रश्न था कि यदि वासनाएं समग्र रूपेण गिर गई हों, तो बुद्ध को मर जाना चाहिए था। वे जिंदा क्यों और कैसे रहे?

शरीर की एक गति होती है, एक मोमेंटस होता है। यदि आप दौड़ रहे हैं और अचानक रुकना चाहें तो नहीं रुक सकते। आपका चित्त ठहर गया है, आपने ठहराने का निश्चय कर लिया है; परन्तु आपको थोड़ा और भी

दौड़ना पड़ेगा पुरानी त्वरा के कारण। आप एक साइकिल को पेडल लगा रहे थे, अभी आपने पेडल लगाना बंद कर दिया है, परन्तु पहियों ने गति पकड़ ली है। वे और चलेंगे और थोड़ा समय और लेंगे कि पूरी तरह रुकने में। इसीलिए मैं सदैव कहता हूं कि यदि साइकिल पहाड़ी के ऊपर की तरफ जा रही है, तो वह जल्दी ही ठहर जाएगी। यदि आपने पेडल बंद कर दिए हैं और साइकिल ऊपर की ओर जा रही है, तो वह जल्दी ही ठहर जाएगी। वह उसी क्षण भी ठहर सकती है, जिस क्षण कि आपने पेडल लगाने बंद किए। परन्तु यदि वह पहाड़ी के नीचे की तरफ जा रही है, तो वह और ज्यादा दूर तक जा सकती है।

अत: ऐसे होता है कि यदि ज्ञान की घटना पैंतीस वर्ष के होने के पहले घट गई हो, तो शरीर जल्दी ही मर जाएगा। यदि वह पैंतीस के बाद हुआ है, तो वह पहाड़ी के नीचे की ओर जाना है। वह और अधिक चल सकता है। इसलिए शंकराचार्य जल्दी मर जाते हैं। वे सिर्फ तैंतीस साल के थे। उन्हें ज्ञान बीस साल की अवस्था में हो गया था। वह बहुत कम होता है और उन्हें जल्दी ही करना पड़ा। वे पैंतीस भी पूरे नहीं कर सकें—जो कि मध्य है। वे मध्य तक भी नहीं पहुंच सके। यदि पैंतीस वर्ष के बाद ज्ञान होता है, तो आप पहाड़ी के नीचे की तरफ हैं, तब शरीर ज्यादा चलता है।

वासनाओं के समग्र रूपेण वहा जाने पर, वस्तुत: आप पूरी तरह शरीर से ठहर जाते हैं। अब पुरानी त्वरा काम करेगी और वह बहुत सी बातों पर निर्भर करेगी।

बुद्ध भोजन में विष होने से मर गए और उनका इलाज न हो सका, इसलिए नहीं कि भोजन का विषाक्त हो जाना इतना खतरनाक हो सकता है—वह बहुत साधारण है। परन्तु उनका शरीर से कोई संबंध नहीं था। उनकी मदद नहीं की जा सकती थी। अत: जब चिकित्सा विज्ञान भी स्वीकार करता है कि यदि आपकी जीवेषणा तीव्र है, तो औषधियां भी अधिक काम करती हैं। यदि आपकी जीने की कोई आकांक्षा नहीं है, तो हो सकता है दवाइयां भी कोई काम न करें।

इसलिए आजकल बहुत से प्रयोग होते हैं। दो आदमी रुग्ण हैं, वे मरण-शह्रया पर पड़े हैं। उनमें से एक की दशा अधिक गंभीर है और उसके लिए कोई उम्मीद नहीं है, परन्तु स्वयं उसे उम्मीद है और वह लंबा जीना चाहता है। चिकित्सा विज्ञान को कोई आशा नहीं है, डाक्टरों को भी कोई उम्मीद नहीं है, परन्तु वह स्वयं बहुत आशापूर्ण है। दूसरा आदमी इतनी गंभीर स्थिति में नहीं है। हर एक को आशा है कि वह बच जाएगा। कोई समस्या नहीं है, परन्तु खुद उसे कोई आशा नहीं है। वह जिंदा रहना ही नहीं चाहता। अचानक भीतर शरीर से कुछ गिर जाता है। अब दवा भी काम नहीं कर सकती। वह मर जाएगा और वह आदमी जो गंभीर हालत में है, बच जाएगा। दवा उसकी मदद कर सकती है।

शरीर और चेतना वासनाओं के द्वारा संबंधित हैं, जुड़े हैं। इसीलिए यदि कोई व्यक्ति बिना वासनाओं के मर जाएं, तो वह फिर से जन्म नहीं लेगा, क्योंकि जब कोई जरूरत नहीं है, कोई कारण नहीं है, जिससे कि शरीर की रचना हो।

मैंने ऐसे एक आदमी को देखा है जो कि जो नहीं सकता, क्योंकि वह मृत्यु से बहुत डरा हुआ है। मृत्यु नींद में भी हो सकती है! और तब वह क्या करेगा? इसलिए वह डरा हुआ है। वह सो नहीं सकता। और मैं सोचता हूं कि उसका डर ठीक है। उसका डर महत्वपूर्ण है, क्योंकि उसकी जीने की कोई इच्छा नहीं। वह वासनारहित नहीं है। उसकी जीने की कोई इच्छा नहीं है, परन्तु मरने की इच्छा है। और यदि मरने की आकांक्षा है, तो वह नींद में भी डर सकता है।

आप सबेरे उठ जाते हैं इसलिए नहीं कि सवेरा हो गया है, परन्तु इसलिए कि कुछ ऐसा है जो कि आपको उठने के लिए मजबूर करता है। इस व्यक्ति के लिए कुछ भी ऐसा नहीं है। कुछ भी उसे उठने के लिए बाध्य नहीं करता। इसलिए वह सो नहीं सकता, क्योंकि भय है कि सबेरे कोई कारण न हो, जिससे कि वह

उठने को बाध्य हो। कुछ भी ऐसा नहीं है। फिर भी मैं कहता हूं कि वह वासनारहित नहीं है। वह सिर्फ निराशापूर्ण है। उसकी सारी इच्छाएं निराशापूर्ण हो गई हैं। जब सारी इच्छाएं निराशा शून्य हो जाती हैं, तो आप एक नई इच्छा पैदा करते हैं—मरने की इच्छा।

फ्रायड अपनी वृद्धावस्था में एक नई खोज पर पहुंचा, जिसकी कि उसने स्वप्न में भी कल्पना ही की थी। अपनी सारी जिंदगी वह लिबिडो जीने की इच्छा पर काम करता रहा। और उसने अपने चिंतन का सारा ढांचा इस शक्ति पर, इस लिबिडो, इस सेक्स, इस जीने की चाह पर खड़ा किया। परन्तु अंत में, वह एक विशेष इच्छा पर पहुंचा। पहली जो वासना है, उसे वह इरोजन कहता है, और दूसरी जो चाह है, उसे वह थानाटोज कहता है। थानाटोज का अर्थ होता है—मृत्यु कामना, मरने की चाह। फ्रायड को ऐसा महसूस होने लगा कि यदि मरने की कोई चाह नहीं हो, तो आदमी कैसे मर सकता है? कहीं भीतर, मरने की कामना होनी चाहिए। अन्यथा जीवन शास्त्री कहते हैं कि शरीर अपने से हमेशा के लिए चल सकता है।

इसका कोई अनिवार्य कारण नहीं है कि शरीर इतनी जल्दी मर जाए; क्योंकि शरीर के पास अपने आप पुनर्निर्माण की प्रक्रिया का इंतजाम है। वह पुनर्निर्माण कर सकता है। परन्तु बहुत सी बातें हैं, जिन पर गौर करना पड़ता है। शरीर जन्मता है, क्योंकि हमने कहा है कि जीने की कामना है। वहां फ्रायड ठीक है।

एक दूसरी कामना की भी आवश्यकता है वर्तुल को पूरा करने के लिए। कोई छिपी हुई कामना करने की भी होनी चाहिए। वह मृत्यु-कामना आपको मरने में मदद करती है और जीने की कामना आपको फिर से जन्म लेने में सहायक होती है। वह मृत्यु की कामना सभी लोगों को कितनी ही बार होती है। कई बार आप अचानक उसके प्रति सजग हो जाते हैं। जब कभी कुछ भी निराशाजन्य हो जाता है—जैसे कोई अपने प्रियतम या प्रेयसी को खो दे, तो अचानक मृत्यु की कामना उठती है और आप मरना चाहते हैं—इसलिए नहीं कि आप कामनारहित हो गए, बल्कि इसलिए कि आपकी सर्वाधिक इच्छित कामना अब असंभव हो गई। इसलिए आप मृत्यु की कामना करने लगे।

यह भेद ध्यान देने योग्य है, क्योंकि बहुत से धार्मिक आदमी धार्मिक होते ही नहीं हैं। वे केवल मृत्यु चाह रहे होते हैं। वे आत्मघाती होते हैं। जीवन को मृत्यु चाह रहे होते हैं। वे आत्मघाती होते हैं। जीवन को मृत्यु चाह रहे होते हैं। वे आत्मघाती होते हैं। जीवन को मृत्यु से बदल लेना आसान बात है। यह बहुत आसान है, क्योंकि जीवन और मृत्यु दो चीजें नहीं हैं। वे एक ही घटना के दो पहलू हैं। आप उन्हें परस्पर बदल सकते हैं।

इसलिए, वस्तुत: ऐसा होता है कि जो लोग जीवन से बहुत गहरे जुड़े होते हैं, वे आत्मघात कर लेते हैं। चूंकि वे जीवन से इतने ज्यादा जुड़े होते हैं कि जब भी वे निराशा को उपलब्ध होते हैं वे कुछ और नहीं कर सकते सिवाय आत्मघात के। एक व्यक्ति, जो कि जीवन में बहुत ज्यादा आसक्त नहीं, आत्मघात नहीं कर सकता। आत्मघात को दो तरह से लिया जा सकता है। वह लंबे समय का हो सकता है अथवा वह छोटे अर्से का हो सकता है। आप अभी तुरंत विष ले सकते हैं अथवा आप धीरे-धीरे घुल-घुलकर करते रह सकते हैं कितने ही सालों तक। यह इस पर निर्भर करता है कि आप में कितना साहस है!

कभी-कभी ऐसा होता है कि आप मैं जीने का साहस नहीं होता है, परन्तु साथ ही मरने का भी साहस नहीं होता है। तब आपको धीरे-धीरे मरना पड़ता है, एक लंबा आत्मघात चुनना पड़ता है। तब कोई धीरे-धीरे गिरता जात है—मरता हुआ, मरता हुआ, और मरता हुआ। तब मृत्यु एक लंबी विलंबित प्रक्रिया बन जाती है—मात्राओं में। यह मृत्यु कामना भी होती है और बहुत सी बातें, बहुत सी चीजें उससे जुड़ी होती हैं।

जार्ज बर्नार्ड शॉ ने अपने जीवन के आखिरी दिनों में शहरी जिंदगी को छोड़ दिया और एक छोटे से गांव में रहने चला गया। किसी ने उनसे पूछा—आपने यह गांव क्यों चुना? उसने जवाब दिया, मैं जरा कब्रगाह के पास

से गुजर रहा था और मैं एक ऐसी शिला के पास आया जिस पर लिखा था—यह आदमी एक सौ दस वर्ष की उम्र में मरा और इसकी मृत्यु असामयिक हुई! इसलिए यह गांव रहने योग्य है। यदि यहां के लोग सोचते हैं कि यदि एक सौ दस की उम्र में मरना भी असामयिक है, तो यहां रहना अच्छा है। और वास्तव में, वे बहुत लंबे जिए।

मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि यह एक फिक्सेशन है, एक प्रकार से किसी बात का निश्चित हो जाना है। यदि सारा देश सोच ले कि सत्तर साल अधिकतम है, तो यह मन का निश्चित रुख हो गया। यदि देश सोच ले कि सौ अधिकतम हो जाएगा। यदि सारा देश इकट्ठे यह सोचने लगे कि इतनी जल्दी मरने की कोई आवश्यकता नहीं है, तो कोई भी आदमी तीन सौ वर्ष जी सकता है। यदि सारा देश निश्चित कर ले तीन वर्ष अधिकतम है तो शरीर तीन सौ वर्ष जी सकता है।

यह एक समूहगत सम्मोहन है, क्योंकि हम जानते हैं कि एक आदमी एक विशेष उम्र पर बूढ़ा होने वाला है। प्रत्येक जानता है। बच्चा जानने लगता है कि कब कोई बूढ़ा हो जाता है। युवा पुरुष जानता है कि कब जवानी चली जाने वाली है। प्रत्येक जानता है, और वह इतनी जानी-पहचानी बात है, इतनी अधिक समझाई गई है कि प्रत्येक जानता है कि सत्तर या असली अधिक से अधिक सीमा है। हम अस्सी पर मर जाते हैं, क्योंकि हम सोचते हैं कि अस्सी साल सीमा है।

यदि आप सीमा बदल दें, तो कोई जरूरत नहीं है इतनी जल्दी मर जाने की। मूलत: शरीर के लिए इतनी जल्दी मर जाने की कोई जरूरत नहीं है। शरीर के भीतर स्वयं के पुनर्निर्माण की क्षमता है। वह पुनर निर्माण करता चला जाता है; वह फिर-फिर अपने को पैदा करता चला जाता है। वह चल सकता है। यह समूहगत सम्मोहन और मृत्यु की आकांक्षा दोनों जुड़ जाते हैं। वे दोनों एक हो जाते हैं। फलत: मृत्यु होती है।

परन्तु यदि जीवन को वासनाओं की जरूरत है, तो मृत्यु को भी वासनाओं की आवश्यकता है। इसीलिए हम कभी नहीं कहते कि कृष्ण की मृत्यु हुई—कभी नहीं। वे समाधि में गए। हम कभी नहीं कहते कि बुद्ध मर गए। वे निर्वाण को उपलब्ध हुए। हम कभी नहीं कहते कि ये लोग मर गए; क्योंकि उनके लिए मौत कैसे संभव होगी, जिनके लिए जीवन भी संभव हो गया है? इस बात की गहराई को समझ लें। यदि बुद्ध का जीवन एक असंभावना हो गया है, तो मृत्यु कैसे संभावित हो सकती है? एक व्यक्ति जो कि जीवन की कामना भी नहीं करता, वह मृत्यु की इच्छा कैसे कर सकता है? यदि वह इतना वासना रहित हो गया है कि जीवन भी असंभव हो गया है, तो फिर मृत्यु भी असंभव हो जाएगी।

इसलिए हम कभी नहीं कहते कि बुद्ध मरे। हम इतना ही कहते हैं कि एक बृहद जीवन को उपलब्ध हुए। हम कभी नहीं कहते कि मृत हुए। वे कैसे मर सकते हैं? हम करते हैं, क्योंकि हम जीते हैं, क्योंकि हम जीवन से जुड़े हुए हैं। हमें जीवन से छुटना पड़ेगा, टूटना पड़ेगा। पर जब बुद्ध जीता है, तो वह पुरानी त्वरा की तरह जीता है। वे एक कार में बैठे हैं और कार पहाड़ी की तरफ यात्रा कर रही है। जहां कहीं भी वह रुक जाती है, उन्हें कोई शिकायत नहीं होगी। वे उतर जाएंगे, उसी क्षण। एक क्षण के लिए भी वे यह न सोचेंगे कि कोई गलती हो गई। वे किसी गलती के बारे में सोचेंगे ही नहीं। वैसा ही हुआ, जैसा होना था। वे ऐसे जी सकते हैं, जैसे नहीं जी रहे हैं। वे ऐसे मर सकते हैं, जैसे नहीं कर रहे हैं। परन्तु यदि आपको लगातार जीवन चालू रखना हो, तो फिर कोई न कोई वासना रहना अनिवार्य है।

रामकृष्ण कुछ समय के लिए जीना चाहते थे केवल ठीक आदमी को संदेश दे देने भर के लिए। और उन्होंने अनुभव किया कि यदि कोई इच्छा बाकी न रही, और कोई त्वरा भी नहीं, तो शरीर एकदम गिर जाएगा। इसलिए उन्होंने एक इच्छा को पैदा किया, निर्मित किया होने के लिए। उन्होंने लगातार प्रयत्न किया कि कम

से कम एक इच्छा तो बाकी रहे, जब तक कि वे अपना संदेश ठीक व्यक्ति को नहीं दे देते। वह बुद्ध के लिए घटित नहीं हुआ; यह महावीर के लिए भी नहीं हुआ। फिर यह रामकृष्ण को ही क्यों हुआ।

वास्तव में, यह प्रश्न नहीं है कि यह रामकृष्ण के साथ ही क्यों घटा। यह रामकृष्ण का ही प्रश्न नहीं है, परन्तु यह प्रश्न हमारे युग के साथ जुड़ा है। बुद्ध के समय में व्यक्तियों का खोजना कोई मुश्किल नहीं था। इतने लोग उपलब्ध थे कि किसी भी क्षण किसी को भी संदेश दिया जा सकता था, परन्तु रामकृष्ण के लिए बहुत ही असंभव बात थी कि व्यक्ति को खोजा जा सके।

इसलिए रामकृष्ण अकेले आदमी हैं मनुष्य जाति के पूरे इतिहास में, जिन्होंने कि जबरन जीने की कोशिश की, ताकि ठीक व्यक्ति को पा सकें। और जब विवेकानंद उनके पास पहली दफा आए, तो उन्होंने कहा-कहां थे तुम? मैं कब से तुम्हारी राह देख रहा हूं। मैं कब से तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा हूं। और जब विवेकानंद को समाधि की पहली झलक मिली, तो रामकृष्ण ने उन्हें रोक दिया। रामकृष्ण ने कहा कि अब और नहीं, क्योंकि फिर तुम्हें भी वही मुसीबत होगी, जो मुझे हुई। इसलिए यहीं तक रहो। इससे आगे मत जाओ। बस यहीं रहो, जब तक कि तुम्हें वह संदेश नहीं दे दिया जाए। अब मैं तुम्हारी कुंजियां अपने साथ ले जाता हूं, ताकि तुम्हें वही दुख न उठाना पड़े, जो कि मुझे उठाना पड़ा। पहले मैंने कुछ उपलब्ध किया, और फिर मुझे शरीर में रुकने का प्रयत्न करना पड़ा और यह बहुत कठिन काम था, बहुत ही कठिन। इसलिए अब मैं तुम्हारी चाबियां ले जाऊंगा अपने साथ और ये चाबियां तुम्हारी मृत्यु के तीन दिन पहले तुम्हें लौटा दी जाएगी, तीन दिन पहले। और विवेकानंद बिना किसी झलक के रहे। फिर वे प्राप्त न कर सके। वे उस बाधा को पार नहीं कर सके। वे केवल अपनी मृत्यु के पहले ही पार कर सके-कुछ दिन पहले ही मृत्यु के पार पहुंच सके।

जीवन एक वासना है। जिस जीवन को हम जानते हैं, वह वासना है परन्तु एक दूसरा भी जीवन है जो कि वासनारहित है-ऐसा जीवन जिसे कि हम नहीं जानते। यह जीवन शरीर के द्वारा है। वह जीवन शुद्ध चेतना के द्वारा है-सीधा व तत्क्षण। यह जीवन शरीर के द्वारा, मन के द्वारा, साधनों के द्वारा है। इसलिए इतना धुंधला व फीका है। यह इतना स्पष्ट नहीं है।

जब कोई चीज बहुत सारे माध्यमों के द्वारा आप तक पहुंचती है, तो वह विकृत हो जाती है। आपने कभी भी प्रकाश नहीं देखा। आपकी आंखें जिस प्रकाश को देखती हैं वे प्रकाश रासायनिक तत्वों में व विद्युत-तरंगों में रूपांतरित हो चुका होता है। आपने उन विद्युत-तरंगों को कभी नहीं देखा है। आपने उन रसायनों को कभी नहीं देखा है। तब वे रसायन संदेश को ले जाते हैं। फिर वे आपके मन में खोले जाते हैं। वे मात्र कोडस जाते हैं, संकेत होते हैं। तब उन संकेतों को पढ़ा जाता है और आपका मन आपको संदेश देता है कि आपने प्रकाश को देखा। तब आप कहना प्रारंभ करते हैं कि आपने प्रकाश को देखा है-कि सूरज उग गया है। आपने उगते हुए सूरज को कभी नहीं देखा है। यह सिर्फ एक रासायनिक प्रक्रिया है जो कि आप तक पहुंचती है-न कि सूरज का उगना। केवल वह तस्वीर फिर से डिकोड की जाती है-पढ़ी जाती है।

हमारा सारा अनुभव ही ऐसा है-इंडायरेक्ट-परोक्ष-सीधा नहीं। मैं अपने प्रेयसी का प्रेमी का, दोस्त का हाथ छूता हूं। पहले मैंने कभी नहीं छुआ। मैं कभी छू भी नहीं सकता, क्योंकि स्पर्श मेरी उंगलियों के पोरों पर ही रह जाता है और केवल मेरे नाड़ी संस्थान के द्वारा एक विद्युत-तरंग ही मेरे दिमाग तक पहुंचती है। उस तरंग को पढ़ा जाता है और मैं कहता हूं, कितना सुंदर!

यह स्पर्श पैदा किया जा सकता है, यदि मेरी आंखें बंद हैं तो। यदि स्पर्श निर्मित किया जा सकता है यांत्रिक साधनों द्वारा, यदि वही तरंग की धारा पैदा की जा सकते जैसी कि प्रिय के स्पर्श से बनी थी, तो मैं कहूंगा-कितना सुंदर।

यह स्पर्श पैदा किया जा सकता है, यदि मेरी आंखें बंद हैं तो। यदि यह स्पर्श निर्मित किया जा सकता है, यांत्रिक साधनों द्वारा, यदि वही तरंग की धारा पैदा की जा सके जैसी कि प्रिय के स्पर्श से बनी थी, तो मैं कहूंगा–कितना सुंदर!

किसी स्पर्श की भी आवश्यकता नहीं है यदि मन में संदेश ले जाने वाली जो व्यवस्था है, उसे उत्तेजित किया जा सके। फिर से मैं ऐसे ही अनुभव करूंगा, कितना सुंदर! केवल एक इलेक्ट्रोड आपकी खोपड़ी में लगा दिया जाए और यदि हम यह जानते हैं कि आपके अनुभव की क्या गति है जब कि आप प्रेम का अनुभव करते हैं तो आप प्रेम का अनुभव कर सकेंगे। हम एक बटन को दबाते हैं, वह तरंग पैदा हो जाती है मन इलेक्ट्रोड के द्वारा और आप प्रेम का अनुभव करते हैं। आप किस तरंग पर क्रोध में आते हैं। इलेक्ट्रोड वही कंपन निर्मित कर सकता है और आप क्रोध का अनुभव कर सकते हैं।

क्या है वह जीवन जो कि आप जी रहे हैं? क्या आपने जाना है? आपने कुछ भी तो नहीं जाना, क्योंकि प्रत्येक बात इतने सारे माध्यमों के द्वारा होती है कि केवल एक अप्रत्यक्ष संदेश ही आप तक पहुंचता है। एक दूसरा भी जीवन है बिना शरीर का, बिना मन का, और वह अनुभव ही अति समीप का है बिना किसी माध्यम का। वह प्रत्यक्ष है। कुछ भी बीच में नहीं है। यदि प्रकाश है तो कुछ भी बीच में नहीं है। तब पहली बार आप प्रकाश से भरते हैं, न कि एक सांकेतिक संदेश से। वह अनुभव ही परमात्मा का अनुभव है।

मैं इसे इस भांति कह सकता हूं–यदि आप अस्तित्व का अनुभव किन्हीं माध्यमों से कर रहे हैं, तो वह संसार है। यदि आप अस्तित्व का अनुभव बिना किसी माध्यम के कर रहे हैं, तो वह परमात्मा है। जो अनुभव किया जाता है वह तो वही होता है, केवल अनुभव करने वाला ही भिन्न तरह से अनुभव करता है।

एक तरीका तो किसी दूसरे से अनुभव का है। मैं आपको एक संदेश देता हूं, फिर आप उसे किसी और को देते हैं और फिर वह किसी और को देता है। और तब वह संदेश उसे पहुंचता है जिसे कि दिया जाना है, और वह बदल जाता है। हर बार जब भी वह दूसरे का दिया गया, वह थोड़ा बदल गया। अपनी आंखों से हम एक ही भांति नहीं देखते। हम एक ही तरह नहीं देखते, क्योंकि प्रत्येक यंत्र भिन्न है एक सूक्ष्म तरीके से। इसलिए जब मैं प्रकाश देखता हूं, तो मैं उसे एक अलग ही ढंग से महसूस करता हूं। जब आप प्रकाश को देखते हैं, तो एक दूसरे ही ढंग से अनुभव करते हैं।

जब एक वानगॉग सूरज को देखता है, तो जरूरी किसी दूसरे ही ढंग से देखता है, क्योंकि वह पागल हो जाएगा और नाचने लगेगा, चिल्लाने-कूदने लगेगा। यह करीब-करीब पागल हो जाएगा, जब वह सूरज को देखेगा। उसने एक वर्ष तक केवल सूरज की तस्वीरें बनाई। वह सोया नहीं। वह बहुत पागल हो गया, क्योंकि सूरज बहुत गर्म है। पूरे एक साल तक सूरज उसके दिमाग पर चोट करता रहा और वह मैदान में पूरे समय सूर्य का चित्रण करता रहा–पूरे एक वर्ष लगातार। वह पागल हो गया। एक साल तक उसे पागलखाने में रखना पड़ा और उसका कारण कुल इतना ही था कि वह इतने तेज सूरज को बर्दाश्त नहीं कर सकता था।

कोई भी इस तरह पागल नहीं हो जाता। उसने आत्महत्या कर ली, परन्तु इसके पहले उसने एक पत्र लिखा और उस पत्र में उसने लिखा कि चूंकि उसने अब सूरज के सारे चेहरे बना दिए थे, इसलिए उनके और जीने की कोई आवश्यकता नहीं है। उसने सूरज को सारे रूपों में जान लिया। अब उसके जीने की कोई जरूरत न रही। अब वह मर सकता है। अवश्य ही उसने सूर्य को एक भिन्न ही ढंग से देखा होगा। कोई भी सूर्य के पीछे इस तरह पागल नहीं हो जाता। यह पागलपन क्यों है?

उसके संदेश की शरीर-रचना अलग ही होगी और अब मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि अवश्य ही उसके भीतर कोई अलग ही रसायन होने चाहिए। संभव है कि जल्दी ही हम इस नतीजे पर पहुंचेंगे कि कवियों के भीतर कुछ विशेष रसायन की खास मात्रा होनी चाहिए और उसी कारण से वे फूलों के पीछे, बादलों के पीछे

पागल हो जाते हैं। दूसरों के लिए वह सब मूर्खतापूर्ण है। यह ठीक है कि एक फूल है, पर यह मूर्खता की बात है कि उसे चित्रित करते चले जाएं, कविताएं करते चले जाएं, और उसी के लिए जिए चले जाए। अवश्य कोई एक एस डी जैसी चीज उस होने वाले केमिकल में मौजूद है। एक नर्तक का भिन्न ही रसायन होता है। ऐसा लगता है जैविक-ऊर्जा भिन्न ही प्रकार से काम करती है।

इसलिए जब मैं कहता हूं कि जीवन इच्छाओं से बंधा है, उनके वशीभूत है, तो मेरा मतलब है यह जीवन, वह जीवन नहीं। यह जीवन वासनाओं के वशीभूत है। इसलिए जितनी अधिक इच्छाएं होंगी, उतनी ही इस जीवन की वासना होगी। इसलिए जो लोग इच्छाओं के पीछे लगे हैं, दौड़ रहे हैं, और दौड़ते जा रहे हैं, वे हमें बहुत सक्रिय व जीवंत दिखलाई पड़ते हैं। हम कहते हैं कि वे बड़े जीवंत हैं। क्या कर रहे हैं? प्रत्येक दौड़ रहा है, और हर एक इतना जीवंत है। क्या आप मुर्दा हो गए?

परन्तु एक दूसरा जीवन भी है-बृहत्तर, अधिक गहरा, अधिक जीवंत अति पास व प्रत्यक्ष। हमारे पास उसके लिए एक शब्द है-अपरोक्षानभूति-तुरंत व प्रत्यक्ष अनुभूति। परमात्मा को देखना है, पर आंख के द्वारा नहीं। उसे सुनना अवश्य है, पर कान के द्वारा नहीं। उसे आलिंगन अवश्य करना है, पर हाथों से नहीं, शरीर द्वारा नहीं। कैसे होता है फिर यह?

हम दो ही बातें जानते हैं-एक वासनाओं-इच्छाओं का जीवन व वासनाओं की मृत्यु। हम एक दूसरे आयाम को नहीं जानते-वह है, एक निर्वासना का जीवन और वासना-रहित मुक्ति। परन्तु यदि हम वासना की वास्तविक यांत्रिकता के प्रति सजग हो जाएं, तो हम एक अंतराल पैदा कर सकते हैं। और जिस क्षण अंतराल पैदा होता है, यह जीवन उस दूसरे जीवन में गति करने लगता है।

दूसरा प्रश्नः भगवान, निर्वासना भाव के बढ़ने के साथ साथ, कभी-कभी, मनुष्य बाह्य रूप से निष्क्रिय सा हो जाता है। क्या यह आलस्यमय व शिथिल हो जाना है? ऐसा क्यों होता है?

बहुत सी बातें संभव हैं और वे बहुत सी बातों पर निर्भर हैं। निश्चित ही बहुत सी इच्छाएं गिर जाएंगी। और बहुत से कर्म भी। वे कर्म, जो कि उन इच्छाओं से उत्प्रेरित किए गए थे, गिर जाएंगे। यदि मैं किसी इच्छाओं के कारण दौड़ रहा था, तो अब कैसे दौड़ सकता हूं, जबकि वह इच्छा ही गिर गई है! मेरा दौड़ना रुक जाएगा। कम से कम उस मार्ग पर तो मेरी दौड़ बंद हो ही जाएगी। अतः जब कोई व्यक्ति निर्वासना को प्राप्त होता है, तो कम से कम बीच में कुछ समय के लिए (और यह भी व्यक्ति-व्यक्ति पर निर्भर करेगा कि कितने समय के लिए।) वह निष्क्रिय हो जाएगा। सारी इच्छाएं गिर गई हैं और इसलिए सारे कर्म जो कि कि वह कर रहा था, वे सब उन इच्छाओं से संबंधित थे। तो फिर वह उन्हें कैसे चालू रख सकता है? इच्छाएं गिर जाएंगी।

परन्तु इच्छाओं व कृत्यों के गिर जाने से ऊर्जा इकट्ठी होगी और अब ऊर्जा गति करने लगेगा। यह व्यक्ति-व्यक्ति में अलग-अलग होगा कि कब और कैसे वह गति करती है। परन्तु जब वह गतिमान होगी। एक अंतराल होगा-बीच का अंतरिम काल, मध्यांतर। इसे मैं प्रसव-काल कहता हूं। बीज लग गया है, परन्तु अभी उसके उगने का काल है कम से कम नौ महीने का। और यह विचित्र बात लगेगी, परन्तु यह नौ महीने का समय बड़ा महत्वपूर्ण है। करीब आठ, नौ, दस महीने अंतरिम काल के रहेंगे और आप बिलकुल निष्क्रिय हो जाएंगे। यह निष्क्रियता भी भिन्न-भिन्न होगी। कोई इतना निष्क्रिय हो सकता है कि लोग सोचें कि वह कोमा की स्थिति में चला गया। सब कुछ रुक जाता है-हिलना डुलना तक।

मेहर बाबा के साथ एक घटना हुई। एक साल के लिए वे एक कोमा की स्थिति में रहे। वे हिल भी नहीं सकते थे। वे खड़े भी नहीं हो सकते थे, क्योंकि खड़े होने तक की इच्छा चली गई थी। वे खा भी नहीं सकते थे। उन्हें जबरन खिलाना पड़ता था। वे कुछ भी नहीं कर सकते थे। एक वर्ष के लिए वे बस

बिलकुल असहाय हो गए–एक असहाय बालक। यही प्रसव-काल है और तब अचानक ही एक नए आदमी का जन्म होता है। वह आदमी जो कि निर्जीव हो गया था, अब नहीं है।

वह ऊर्जा जो कि जन्मों-जन्मों में नष्ट हो गई थी, इस अंतराल को उत्पन्न करती है। सामान्यत: आपके पास काफी ऊर्जा नहीं है। जब कामना नहीं है उकसाने को, उत्प्रेरित करने को, आवाहन को, तो आप गिर पड़ते हैं। आपकी ऊर्जा वास्तव में ऊर्जा नहीं है, परन्तु बस एक, खींचना, धक्का मारना है। खैर, फिर भी आप दौड़ते चले जाते हैं, क्योंकि लगता है कि मंजिल पास ही है। कुछ क्षण और, और आप पहुंच गए। आप अपने को खींचते हैं। किसी तरह भी आप अपने को खींचे चले जाते हैं।

परन्तु जब लक्ष्य ही गिर गया, इच्छा ही गिर गई, तो आप भी गिर जाएंगे। यहीं एक निष्क्रियता होगी। यदि आप इस निष्क्रिय काल में धैर्य रख सके, तो आप दोबारा जन्म पाएंगे। तब ऊर्जा गतिमान होगी बिना इच्छाओं के। परन्तु जैसा कि मैंने कहा कि यह निर्भर करता है बहुत सी बातों पर। जैसा कि मेहर बाबा के मामले में हुआ, एक अकस्मात घटना थी।

वह बंबई में हुई। वह एक वृद्ध महिला, बाबाजन के द्वारा चूमने से हुआ। मेहर अपने रास्ते जा रहा था स्कूल से लौटते वक्त बाबाजन एक वृद्ध सूफी रहस्यवादी औरत थी जो कि सालों-सालों से एक पेड़ के नीचे बैठी रहती थी। मेहर आ रहा था और बाबाजन ने उसे बुलाया। वह इस बूढ़ी औरत को जानता था। वह सालों से इसी रास्ते पर पेड़ के नीचे बैठी रहती थी, जबकि वह रोजाना अपने स्कूल के लिए जाता-आता था। उसने उसे बुलाया और वह नजदीक गया। उसने उसे चूमा और वह वहीं गिर गया जैसे कि मृत हो गया हो और उसे वहां से उठा कर ले जाना पड़ा।

लगातार एक वर्ष तक चूमने का प्रभाव उस पर रहा और वह कोमा (निष्क्रियता) की स्थिति में रहा। ऐसा हो सकता है अचानक। यह एक बहुत बड़ा स्थानांतरण था और बाबाजन उसके बाद मर गई, क्योंकि वह प्रतीक्षा कर रही थी इसी क्षण के लिए कि सारी ऊर्जा किसी को दे सके। यह उसका आखिरी जन्म था। और इतना भी समय शेष नहीं था कि किसी को बतला सके कि वह क्या दे रही थी। और वह ऐसी भी नहीं थी कि किसी को समझाती। वह एक मौन रहस्यवादी संत थी। उसने वर्षों किसी को नहीं छुआ था। वह केवल इसी क्षण की प्रतीक्षा में थी। इसलिए जब वह किसी को चूमे तो सारी ऊर्जा एक ही बार में स्थानांतरित हो जाएगी। उसने वर्षों तक किसी को छुआ भी नहीं था। इसलिए कि यह स्पर्श समग्र होने वाला था।

और यह बच्चा केवल सजग नहीं था, उसे पता भी नहीं था कि क्या होने वाला है। आंतरिक रूप से वह तैयार था, वरना वह हस्तांतरण संभव नहीं था। परन्तु इसे पता नहीं था। उसने अपने पिछले जीवनों में जो काम किया था, वह ऊपर आ रहा था। वह बाद में जान जाएगा, परन्तु इस क्षण तो वह बिलकुल अनभिज्ञ था। यह इतना अकस्मात हुआ कि उसे दोबारा दूसरे प्रसव-काल में जाना पड़ा।

एक वर्ष के लिए वह ऐसा हो गया जैसे वह नहीं हो। बहुत सी दवाइयां दी गई। बहुत से चिकित्सकों ने काफी प्रयत्न किए, परन्तु कुछ भी न कर सके। और वह औरत जो कि कुछ कर सकती थी, वह गायब हो गई, वह मर गई। एक वर्ष बाद वह दूसरा ही आदमी हो गया–पूर्णत: भिन्न व्यक्ति।

यदि यह इतना अकस्मात हो, तो यह एक गहरे कोमा की स्थिति होगी। यदि यह कुछ योग-साधनों आदि के द्वारा हो, तो यह कभी भी गहरी निष्क्रियता की स्थिति नहीं होगी। यदि आप कोई सजगता बढ़ाने की क्रियाएं जैसे ध्यान आदि कर रहे हैं, तो यह अकस्मात कभी न होगी। यह इतने धीरे-धीरे आएगी कि आप कभी जान भी न पाएंगे कि यह कब घटित हो गया। धीरे-धीरे निष्क्रियता होगी। क्रियाशीलता होगी और भीतर का सब कुछ धीरे-धीरे बदल जाएगा और इच्छा गिर जाएगी, क्रिया गिर जाएगी, परन्तु कोई भी ऐसा महसूस न कर

पाएगा कि आप आलस्य युक्त अथवा निष्क्रिय हो गए हो। यह धीरे-धीरे होने वाली प्रक्रिया है। इसलिए जो लोग योगाभ्यास करते हैं या ऐसी कोई भी क्रिया करते हैं, वे अचानक कुछ भी अनुभव नहीं करेंगे।

ऐसी भी विधियां हैं जहां अकस्मात घटनाएं संभव हैं। परन्तु उनके लिए व्यक्ति को तैयार करना पड़ता है। बाबाजन ने इस बच्चे को कभी तैयार नहीं किया था। उसने उसकी इजाजत भी नहीं ली। यह एकतरफा मामला था। उसने बस ऊर्जा का इस्तांतरित कर दिया।

झेन फकीर भी ऊर्जा का हस्तांतरण करते हैं, पर उसके पहले वे भूमि तैयार कर लेते हैं। एक व्यक्ति को तैयार कर लिया जाता है शक्ति को ग्रहण करने के लिए। वह कुछ दिनों के लिए आलस्य अनुभव कर सकता है--कुछ महीने के लिए, परन्तु बाहर से कोई नहीं जान पाएगा, कि भीतर सब निष्क्रिय पड़ गया है। परन्तु उसके लिए तैयारी चाहिए और वह केवल स्कूलों में घटित हो सकता है।

और जब मैं स्कूल कहता हूं तो मेरा मतलब है एक ग्रुप का काम करना। बाबाजन अकेली थी। उसने किसी को भी अपना शिष्य नहीं बनाया था। उसका कोई स्कूल भी नहीं था। पीछे आ रही कोई धारा नहीं थी, जिसमें कि वह किसी को तैयार कर सके। वह उस टाइप की भी नहीं थी। वह वृद्धा शिक्षक टाइप की नहीं थी। वह किसी को प्रशिक्षित नहीं कर सकती थी। इसलिए जब उस किसी को कुछ देना था, जो भी उस समय आ जाए जब वह ऐसा महसूस करे कि बस यही समय है और यह व्यक्ति इसको संभाल सकेगा और ले जा सकेगा, वह उसे दे देगी। इसी अंतर्प्रेरणा पर यह निर्भर करता है।

निष्क्रियता थोड़ी या अधिक तो होगी ही। वह अनिवार्य है। एक निष्क्रियता का काल होगा और तभी तुम्हारा दोबारा जन्म हो सकेगा, क्योंकि तुम्हारा सारा मैकेनि म, ढांचा पूरा का पूरा बदला जाने वाला है। मन गिर जाता है; पुरानी जड़ें गिर जाती है, पुरानी आदतें गिर जाती हैं, चेतना व आदतों की पुरानी पहचान व दोस्ती टूट जाती है। चेतना व मन भी गिर जाते हैं। पुराना सब कुछ टूट जाता है, और हर एक चीज के नया होना होता है।

केवल प्रतीक्षा की आवश्यकता है, धैर्य की आवश्यकता है, और यदि कोई धैर्यवान है, तो उसे कुछ नहीं करना है। वह केवल प्रतीक्षा करे, इतना काफी है। ऊर्जा स्वत: गतिमान होती है। आप सिर्फ बीज बो दें और प्रतीक्षा करें। जल्दी न करें। रोजाना जाएं नहीं और न बीज को उखाड़ें और न देखें कि क्या हो रहा है। बस, उसे भीतर रख दें और प्रतीक्षा करें। ऊर्जा अपने आप रास्ता ढूंढ लेगी, बीज मर जाएगा, और तब ऊर्जा गति करने लगेगी। परन्तु अधीर न हों। धैर्य जरूरी है।

और जितना ही बीज शक्तिशाली होता है--जितनी विराट संभावनाएं उगने वाले वृक्ष में होती हैं, उतनी ही अधिक प्रतीक्षा जरूरी है। परन्तु यह घटता है। जितनी गहरी प्रतीक्षा, उतनी ही जल्दी यह घटता है।

आज इतना ही।

बंबई, दिनांक १८ फरवरी १९७२, रात्रि

५ एक स्थिर मन: प्रभु का द्वार

निश्चल ज्ञानं आसनम।

निश्चल ज्ञान ही आसान है।

मनुष्य न तो केवल शरीर ही है और न मन ही। वह दोनों है। और यह कहना भी एक अर्थ में गलत है कि वह दोनों है; क्योंकि शरीर और मन भी यदि अलग-अलग हैं, तो केवल दो शब्दों के रूप में। अस्तित्व तो

एक ही है। शरीर कुछ और नहीं है वरन चेतना की सबसे बाहरी परत है, चेतना की सर्वाधिक स्थूल अभिव्यक्ति। और चेतना कुछ और नहीं बल्कि सर्वाधिक स्थूल अभिव्यक्ति। और चेतना कुछ और नहीं बल्कि सर्वाधिक सूक्ष्म शरीर है, शरीर का सबसे अधिक निखरा हुआ अंग। आप इन दोनों के मध्य में होते हैं।

ये दो चीजें नहीं हैं, परन्तु एक ही वस्तु के दो छोर हैं। अतः जब कभी ज्ञान निश्चल हो जाता है, तो शरीर भी प्रभावित होता है और निश्चल ज्ञान से निश्चल शरीर भी निर्मित होता है। परन्तु इसका उल्टा सच नहीं है। आप शरीर पर निश्चलता आरोपित कर सकते हैं, परन्तु उससे मन स्थिर नहीं होगा। वह थोड़ा सहायक हो सकता है, परन्तु अधिक नहीं।

शरीर के आसन बहुत महत्वपूर्ण हो गए हैं, क्योंकि हम शरीर-केंद्रित हैं। यहां तक कि जो कहते हैं कि हम शरीर नहीं हैं, वे भी शरीर की ही भाषा में सोचते हैं। जो कहते हैं कि हम शरीर नहीं हैं, उनका चिंतन, उनका मन, शरीर से ही बंधा होता है, क्योंकि वे भी शरीर के आसनों से ही प्रारंभ करते हैं। आसन का अर्थ होता है कि आप अपने शरीर को ऐसी स्थिति में रखें कि शरीर स्थिर हो जाए, अडिग। ऐसा माना जाता है कि यदि शरीर स्थिर हो जाए, तो मन भी स्थिरता में प्रवेश कर जाता है।

यह सच नहीं है, किंतु इसका विपरीत सच है। यदि मन स्थिर हो जाए, तो शरीर भी स्थिर हो जाता है। और तब एक बड़ी अजीब घटना घटित होती है; यदि मन स्थिर है, आप नाचते रहें, परन्तु आपका शरीर एक स्थिरता में होगा। और यदि आपका मन स्थिर नहीं है, तो आप मृत की भांति ही क्यों न हो गए हों, परन्तु फिर भी शरीर कांपता रहेगा; क्योंकि मन की अस्थिरता सूक्ष्म कंपन पैदा करती है जो कि शरीर तक आते रहते हैं और भीतर शरीर डोलता रहता है। इसे कर के देखें; आप एक मूर्ति की तरह, मृत, पत्थर की भांति बैठ सकते हैं, अपनी आंखें बंद कर लें और अनुभव करें। बाहर से कोई नहीं देख सकता कि आपका शरीर अस्थिर है, परन्तु भीतर आप जान जाएंगे कि शरीर कंप रहा है। एक सूक्ष्म कंपन हो रहा है। उसे बाहर से भले ही नहीं जाना जा सकता हो, परन्तु भीतर से तो आप अनुभव कर ही सकते हैं।

यदि आपका मन पूरी तरह से स्थिर हो गया हो, तो आप नाच भी रहे हों तो भीतर से आपको लगेगा कि शरीर स्थिर है। एक बुद्ध निश्चल हैं जब वे चल रहे हैं जब भी, और एक जो बुद्ध नहीं है वह अस्थिर है तब भी जब वह मर गया है। कंपन आपके केंद्र से आते हैं, वे आपके भीतर से उत्पन्न होते हैं और तब वे शरीर में फैलते हैं। शरीर उनका जन्मदाता, मूलस्रोत नहीं है। इसलिए आप कभी भी परिधि से प्रारंभ नहीं कर सकते। आप अभ्यास कर सकते हैं, आप निश्चलता आरोपित कर सकते हैं, परन्तु भीतर सारी अशांति होगी, और यह आरोपण और अधिक द्वंद्व पैदा करेगा, बजाय स्थिरता के।

अतः यह सूत्र कहता है कि ध्यान के अभ्यास के लिए, एक स्थिर आसन की जरूरत है। परन्तु आसन से हमारा क्या अर्थ है? आसन शब्द से हमारा अर्थ है, एक निश्चल जानना, ज्ञान। यदि मन डांवाडोल नहीं है, फिर आप सही आसन में हैं। सही आसान में सब कुछ घटित हो सकता है, इसलिए स्वयं को धोखा न दें, शारीरिक आसनों की नकल न कर के। आप उन्हें निर्मित कर सकते हैं, वह बहुत सरल है। परिधि पर, सीमा पर स्थिरता आरोपित करना बड़ा सरल है। परन्तु वह आपकी स्थिरता नहीं है। आप अशांति में रहते हैं, आप अस्थिरता में रहते हैं।

यह स्थिर ज्ञान-नॉन-वेवरिंग नॉलिज क्या है? यह एक गहरे से गहरा रहस्य है, इसलिए इसे समझने के लिए हमें मन की जो बनावट है, उसकी गहराई में प्रवेश करना पड़ेगा।

तो हम शुरू करें मन से। मन में कई प्रकार के विचार होते हैं। प्रत्येक विचार एक कंपन है; प्रत्येक विचार एक लहर है। जब कोई भी विचार न हो, तभी मन निश्चल होगा। एक भी विचार उठा और आप कंप गए। एक विचार आया और आप स्थिर नहीं रहे। और एक विचार भी केवल एक विचार ही नहीं है, वह एक

बड़ी जटिल घटना है। एक अकेला विचार भी कई तरंगों से बनता है। एक शब्द भी अनेक तरंगों से निर्मित होता है। अतः एक शब्द भी तब बनता है, जब मन में अनेक तरंगें उठ रही हों, और एक अकेले विचार में ऐसे कितने ही शब्द होते हैं। हजारों-हजारों तरंगों से कहीं एक विचार निर्मित होता है। विचार सब से अधिक बाह्य वस्तु है, परन्तु तरंगें उसके भी पहले हैं। उन्हें आप तभी जान पाते हैं, जब तरंगें विचारों में परिवर्तित हो गई होती हैं, क्योंकि आपकी सजगता बहुत स्थूल है। हम तब सजग नहीं होते, जब तरंगें शुद्ध तरंगें हों, और वे विचार बनने की प्रक्रिया में हों। जितने अधिक आप सजग होंगे, उतना ही अधिक आप अनुभव करेंगे कि विचार की बहुत सी परतें होती हैं। विचार अंतिम परत है। विचार के पहले बीज-तरंगें होती हैं, जो कि विचार को पैदा करती हैं, और बीज-तरंगों के पूर्व उनसे भी ज्यादा गहरी जड़ें होती हैं जो कि बीजों को उपजाती हैं।

बीज विचारों की रचना करते हैं। कम से कम तीन परतें बहुत आसानी से दिखलाई पड़ती है किसी भी जागरूक चित्त के लिए। परन्तु हम सीधे जागरूक नहीं हो जाते, अतः हम तभी सजग होते हैं, जब तरंगें सर्वाधिक स्थूल रूप ले सकती हैं—विचार बन जाती है। जहां तक हम जानते हैं, विचार सब से अधिक सूक्ष्म चीज है। किंतु वह है नहीं। विचार, वास्तव में, एक वस्तु बन गया है। जब शुद्ध तरंगें होती हैं, तब आप उन्हें नहीं पहचान सकते कि क्या होने वाला है, कौन सा विचार आप में पैदा होने वाला है। अतः हम तभी जान पाते हैं जब कि तरंगें विचार बन चुकती हैं। एक अकेले विचार का मतलब होता है हजारों-हजारों तरंगें। कितना हम कंप रहे हैं! हम निरंतर विचारों से घिरे हैं। एक भी क्षण ऐसा नहीं होता जब हमारे भीतर कोई विचार न चल रहा हो। एक विचार के पीछे दूसरा विचार लगातार आता चला जाता है, बिना किसी अंतराल के। इसलिए हम वस्तुतः एक अस्थिर, कांपते हुए विचार-चक्र हैं।

सोरेन किरकेगार्ड ने कहा है कि आदमी सिर्फ एक कंपन है—एक कंपन—और ज्यादा कुछ नहीं। और वह एक तरह से सही है। जहां तक हमारा संबंध है, मनुष्य एक कंपन ही है, पर एक बुद्ध वैसे नहीं हैं, क्योंकि बुद्ध एक आदमी नहीं हैं। यह विचार की प्रक्रिया कंपन की प्रक्रिया है। अतः स्थिर का अर्थ है: एक निर्विचार मन की स्थिति।

सूत्र कहता है, निश्चल जानना। मन की भी बात नहीं की गई। इसलिए मन की तीन परतों को ठीक से समझ लेना चाहिए। प्रथम है चेतन मन, और एक प्रकार के विचार चेतन मन से संबंधित हैं। ये विचार सब से कम महत्वपूर्ण होते हैं। ये विचार प्रतिपल हो रही बाह्य प्रतिक्रियाओं से बनते हैं। आप सड़क पर जा रहे हैं, एक सांप गुजरता है, और आप कूद जाते हैं, सांप एक उत्तेजक विषय बन जाता है और आप प्रतिक्रिया करते हैं। अतः एक इस तरह का विचार होता है: एक बाह्य विषय टकराया और एक प्रतिक्रिया बाहरी परिधि पर घट गई। सचमुच आप कुछ सोचते नहीं, आप सिर्फ सक्रिय होते हैं। सांप वहां है और आप कुछ करते हैं। आप सजग होते हैं और आप कर्म करते हैं। आप भीतर प्रवेश नहीं करते और पूछते नहीं कि क्या करना चाहिए। घर में आग लगी है और आप भागते हैं। यह बाहरी परिधि पर हो रही प्रतिक्रिया है। अतः एक ऐसा विचार जो क्षणानुक्षणिक है, रिफ्लेक्स टाइप का है। एक बुद्ध भी ऐसे ही प्रतिक्रिया करेंगे। यह नैसर्गिक है। इसमें कुछ भी गलत नहीं है। यदि आप क्षण क्षण प्रतिक्रिया करें, तो कुछ भी गलत नहीं है। परन्तु यही एक परत तो नहीं है।

एक दूसरी परत भी है। यह दूसरी परत अर्धचेतन की है। धर्म उसे अतःकरण, कॉन्सिएन्स कहते हैं। वास्तव में, यह दूसरी परत समाज द्वारा निर्मित की गई होती है। यह भी आपके भीतर घुस गया समाज ही है। समाज प्रत्येक के भीतर घुस जाता है, क्योंकि जब तक समाज भीतर प्रवेश नहीं करता, वह आपको नियंत्रित नहीं कर सकता। इसलिए वह आपका एक अंग बन जाता है। आपका लालन-पालन, आपकी शिक्षा, आपके

माता-पिता, शिक्षक आदि; ये सब क्या कर रहे हैं, वे एक ही बात कर रहे हैं—वे एक अर्धचेतन मन निर्मित कर रहे हैं। वे सब आपको विचार, ढांचे, आदर्श, मूल्य आदि दे रहे हैं। ये सारे विचार दूसरी परत से संबंधित हैं। वे सहायक हैं, उनकी उपादेयता है, किंतु वे हानिप्रद भी हैं। वे समाज में सुगमता से विचारने के लिए साधन हैं। परन्तु वे बाधाएं भी हैं।

यह दूसरी परत ठीक से ध्यान में रख लेनी चाहिए। यह दूसरी परत भीतर विचार व पक्की धारणाओं आदि से बनती है। इसलिए जब कभी आपका ऊपरी चेतन मन क्षण-क्षण काम कर रहा हो, तब वह शुद्ध नहीं होता। केवल एक बच्चा ही शुद्ध होता है—निर्दोष—क्योंकि वह क्षण-क्षण कार्य करता होता है। कोई अर्धचेतन बीच में बाधा नहीं डालता। आप क्षण-क्षण काम नहीं कर रहे, बल्कि अर्धचेतन निरंतर विघ्न डाल रहा है। वह आपको चुनाव करने को कह रहा है कि क्या चुनना है और क्या नहीं चुनना है। प्रति क्षण वह आपको संकुचित कर रहा है। आप बहुत सी बातों के बार में अनभिज्ञ रह जाते हैं, इसी अर्धचेतन के कारण। वह आपको प्रत्येक चीज के बारे में जानने देता, किंतु कुछ चीजों के बार में आप अधिक भी जान जाते हैं, क्योंकि यह अर्धचेतन मन निरंतर आपको उनके प्रति सजग करता रहता है।

प्रत्येक समाज एक भिन्न प्रकार का अर्धचेतन मन निर्मित करता है, अत: किसी का हिंदू होना, ईसाई होना अथवा झेन होना अर्धचेतन मन का ही हिस्सा होता है। जहां तक परिधिगत मन का संबंध है, प्रत्येक एक ही प्रकार से प्रतिक्रिया करता है। यह प्राकृतिक है। परन्तु सबकॉन्शस माइंड—अर्धचेतन मन प्राकृतिक नहीं है। यह समाज द्वारा निर्मित है, इसीलिए हम भिन्न प्रकार से बर्ताव करते हैं। आप गिरजाघर देखते हैं। एक हिंदू बिना यह जाने कि कोई चर्च है, पास से गुजर जा सकता है। उसे सजग होने की आवश्यकता नहीं। परन्तु एक ईसाई बिना सजग हुए, बिना यह जाने नहीं गुजर सकता कि यह चर्च है, भूले ही वह ईसाई-विरोधी ही क्यों न हो। वह भले ही बर्टेन्ड रसेल की तरह ही क्यों न हो, जिसने कि एक पुस्तक लिखी—ह्याई आई एक नॉट ए क्रिशियन। परन्तु फिर भी वही इस बात के प्रति सजग होगा। उसका अर्धचेतन जो काम कर रहा होता है।

एक ब्राह्मण बौद्धिक स्तर पर भली-भांति समझ सकता है कि छुआछूत की समस्या हिंसक है, निर्मम है और बुद्धि से सोच भी सकता है कि यह ठीक नहीं है। परन्तु यह केवल चेतन मन है। अर्धचेतन वहां भी काम कर रहा है। यदि आप उसे एक शूद्र लड़की से विवाह करने के लिए कहें, तो उसे गहरी पीड़ा होगी। वह वैसा सोच ही नहीं सकता। उसका किसी अछूत के साथ खाना भी मुश्किल हो जाता है। बौद्धिक ढंग से यद्यपि वह समझता है कि इसमें कुछ भी गलत नहीं है। परन्तु अर्धचेतन सारे समय प्रक्षेपण करता रहता है, खींचता रहता है और वह आदमी प्राकृतिक ढंग से प्रतिक्रिया नहीं कर सकता। अर्धचेतन सब कुछ बिगाड़ देता है, विकृत कर डालता है, क्योंकि वह नियंत्रक है।

यह अर्धचेतन निरंतर आप तक बहुत से विचार पहुंचाता रहता है और आप सोचते रहते हैं कि वे आपके हैं। वे आपके निजी नहीं हैं; वे उसी तरह से भरे गए हैं आपमें जैसे कि कम्प्यूटर का मेमोरी-चेंबर भरा जाता है। आप कम्प्यूटर में से सूचनाएं प्राप्त कर सकते हैं। यदि आपने उसे पहले से भरा हुआ है। वही बात आदमी के साथ भी होती है। जो कुछ भी बाहर निकल रहा है, वह उसका परिणाम है जो पहले से भर गया था। सब कुछ बाहर से भरा हुआ है। यही हमारा तात्पर्य है शिक्षा से, तथाकथित शिक्षा से—सूचनाएं भरना। हर चीज अचेतन में तैयार है, हर क्षण। वह इतनी तैयार है वास्तव में, कि जब आपको उसकी आवश्यकता नहीं है, तब भी वह ऊपर आ जाती है। वह लगातार आपके मन में उफन रही है और वही निरंतर कंपन बनाती रहती है, निरंतर कंपाती रहती है। यह अर्धचेतन मन ही बहुत सी सामाजिक बुराइयों का मूल कारण है।

वास्तव में संसार एक हो सकता था, यदि कोई अर्धचेतन न होता तो। तक एक हिंदू और एक मुसलमान में कोई भेद नहीं होता। यह अंतर अर्धचेतन में संस्कारों से भरे जाने के कारण होता है और यह इतना गहरा

चला गया होता है कि आप महसूस भी नहीं कर सकते कि यह कैसे काम करता है। आप इसके पीछे नहीं जा सकते, यह इतना गहरा होता है कि आप सदैव इसके सामने होते हैं और नि:सहाय महसूस करते हैं। और समाज भी लाचार है। वह एक परिपूर्वक है—क्षुद्र परिपूर्वक—किंतु है एक परिपूर्वक ही।

जब तक कि मनुष्य पूर्णत: जाग नहीं जाता, समाज अर्धचेतन के बिना नहीं रह सकता। उदाहरण के लिए, यदि कोई आदमी पूर्णत: जाग्रत हो जाता है, तो वह चोर नहीं हो सकता। परन्तु जैसा मनुष्य है, जागा हुआ नहीं है। इसलिए समाज की चेतना के स्थान पर कोई परिपूर्वक खड़ा करना पड़ता है। अत: भीतर उसे एक मजबूत सुझाव डालना पड़ता है कि चोरी बुरी चीज है, पाप है, ताकि तुम चोर न हो सको। इस बात को भीतर गहरे उतारना पड़ता है अर्धचेतना में, ताकि जब तुम चोरी की सोचने लगो, तो अर्धचेतन ऊपर आ जाए और कहे, नहीं, यह पाप है। और तुम रुक जाओ।

यह सजगता के स्थान पर समाज की ओर से एक परिपूर्वक उपाय किया गया होता है। और जब तक मनुष्य जागरण को उपलब्ध नहीं हो जाता, समाज अर्धचेतन मन के बिना नहीं रह सकता, क्योंकि उसे आपके लिए कुछ व्यवस्था देनी ही पड़ेगी। जब तक कि आप इतने जागरूक नहीं हो जाते कि आपको किसी नियम की जरूरत न रह जाए, तब तक अर्धचेतन को चलाए रखना पड़ेगा।

इसलिए हर समाज को अर्धचेतन का निर्माण करना पड़ता है और मैं उस समाज को अच्छा कहता हूं—ध्यान रहे, उसी समाज को अच्छा कहता हूं मैं जो कि ऐसा अर्धचेतन निर्मित करता है, जिसे कि सरलता से हटाया जा सके। और मैं उस समाज को बुरा कहता हूं जो कि ऐसा अर्धचेतन निर्मित करता है, जिसे कि हटाया न जा सके, क्योंकि यदि उससे मुक्त न हुआ जा सका, तो वह बाधा बन जाएगा, जब भी आप जागने का प्रयत्न करेंगे। और वस्तुत: ऐसा कोई समाज इस समय अस्तित्व में नहीं है जो कि आपको छोड़ने योग्य अर्धचेतन दे सके, जो कि आपको एक उपयोगिता के साधन की तरह का अर्धचेतन दे, ताकि जिस क्षण भी आप जागें, आप उसके फेंक सकें।

मेरे लिए वह समाज अच्छा है। जो कि आपको आंतरिक स्वतंत्रता दे दे अर्धचेतन के बार में। परन्तु यह कोई भी समाज नहीं देता, अत: कोई समाज वस्तुत: धार्मिक है। हर एक समाज एकतंत्रीय है और हर एक समाज आपके मन को ऐसा जकड़ लेता है कि आप यांत्रिक हो जाते हैं। और आप अपने को यह सोच-सोच कर धोखा देते रहते हैं कि ये आपके विचार हैं, जब कि वास्तव में वे आपके विचार नहीं हैं। यहां तक कि जो भाषा हम काम में लेते हैं, वह भी अशुद्ध होती है; जो शब्द हम प्रयोग करते हैं, वे भी शुद्ध नहीं होते। हम एक शब्द का भी प्रयोग नहीं कर सकते, बिना उसमें अर्धचेतन को समाविष्ट किए।

समाज बड़ी चालाकी से उसका उपयोग करता है और तक आपकी प्रतिक्रियाएं, आपके प्रतिसंवेदन स्वत:स्फूर्त नहीं होते। आप सड़क पर कार खड़ी कर रहे हैं और आप दूर पर एक दुकान से बाहर आती हुई एक स्त्री को देखते हैं। आपका मन महसूस करने लगता है कि वह स्त्री सुंदर है और तभी अचानक आपको मालूम पड़ता है कि वह तो आपकी बहन है। तब अचानक वह औरत नहीं रह जाती। यह क्या हो गया? बहन शब्द बीच में आ गया और इस बहन शब्द के साथ अर्धचेतन में बहुत गहरे संबंध जुड़े हैं, जिन्हें संस्कार कहते हैं। अचानक कुछ हो गया। क्या हो गया? वह स्त्री अब स्त्री नहीं है, क्योंकि एक बहन एक स्त्री नहीं है! कैसे एक बहन एक स्त्री हो सकती है? बाहर कुछ भी नहीं हुआ है, किंतु एक शब्द बीच में आ गया है। तब फिर आपको पता चलता है कि आप कपड़ों से धोखे में आ गए; वह आपकी बहन नहीं है। फिर कुछ और खयाल में आता है। वह आपकी बहन नहीं है, अब वह फिर सुंदर स्त्री हो जाती है! बहन कैसे सुंदर स्त्री हो कसती है? और जब आप सुंदर कहते हैं, तो आपका अर्थ होता है कि अब आप उसमें कामुक दिलचस्पी रखते हैं। अब बीज रूप में इसकी संभावना बढ़ जाती है कि वह यौन का विषय बन सकती है।

यहां तक कि जो शब्द हम काम में लाते हैं, वह भी अर्धचेतन से लाद दिया गया होता है। इसीलिए हम अस्पतालों में नर्सों के लिए सिस्टर शब्द का उपयोग करते हैं—मात्र इसलिए कि उन्हें यौन की दिलचस्पी का विषय न बनाया जा सके अन्यथा उनके लिए कठिनाई बढ़ जाएगी और उससे भी ज्यादा मरीजों के लिए। लगातार, नर्सें यहां से वहां घूमती रहती हैं। यदि वे यौन रुचि का विषय बन जाएं, तो यह मरीजों के लिए भी मुश्किल पैदा कर देगा। अंत हमें कोई तरकीब करनी पड़ती है। हम उन्हें सिस्टर के नाम से पुकारते हैं। जैसे ही वे सिस्टर्स बन जाती हैं, वे स्त्री नहीं रह जाती। शब्द ही लाद दिया गया न!

यह अर्धचेतन रात और दिन काम करता रहता है। इसका कार्य दोहरा होता है। इसका एक कार्य तो आपके चेतन मन पर नियंत्रण रखने का होता है। वह इस बात से संबंधित होता है कि लगातार नियंत्रण कैसे रखा जाए। वह आपकी प्रतिक्रियाओं पर काबू रखने का कार्य कर रहा है, आपके कार्यों पर, प्रतिसंवेदन पर, हर बात पर नियंत्रण करने में लगा है। जो कुछ भी आप कर रहे हैं, उस पर नियंत्रण रहना ही चाहिए। यही तो समाज की आपके ऊपर पकड़ है। आप मात्र समाज की मुट्ठी में घूम रहे हैं। आपकी कोई कीमत नहीं है। आपकी कीमत हो भी कैसे सकती है, जब कि आप जरा भी जागरूक नहीं हैं? केवल जागरूकता ही सच्ची, प्रामाणिक व वैयक्तिक कीमत प्रदान कर सकती है। ये सामाजिक कीमतें तो बाहर से लादी जाती हैं।

यदि समाज शाकाहारी है, तो आपकी शाकाहारी मान्यताएं हैं। यदि समाज मांसाहारी है, तो आपकी मांसाहारी मान्यताएं हैं। यदि समाज किसी बात में विश्वास करता है, तो आप भी उसमें विश्वास करते हैं। यदि समाज उसमें विश्वास नहीं करता, तो आप भी उसमें विश्वास नहीं करते। यहां आप नहीं हैं, केवल समाज है। यह दोहरा नियंत्रण है: एक नियंत्रण तो आपके चेतन मन पर है, आपके व्यवहार पर है। दूसरा नियंत्रण अधिक गहरा है, अधिक खतरनाक है, और वह नियंत्रण आपकी स्वाभाविक प्रवृत्तियों पर है।

मन का पहला हिस्सा तो है चेतन, दूसरा हिस्सा है अर्धचेतन—समाज द्वारा निर्मित अर्धचेतन। और तीसरा है इंस्टिक्टिव—स्वाभाविक प्रवृत्तियों वाला जो कि जैविक प्रकृति द्वारा दिया जाता है। और यह हिस्सा वह है जो कि वस्तुत: आप हैं जैविक रूप से—जो कि आप जन्म से हैं। यह तीसरा हिस्सा है, सर्वाधिक गहरा—जैविक, स्वभावगत प्रवृत्तियां। यह जो दूसरा हिस्सा—सबकॉन्शस—अर्धचेतन मन है—बाहरी व्यवहार का नियंत्रण कर रहा है और आंतरिक प्रवृत्तियों को भी नियंत्रित कर रहा है, ताकि ऐसा कुछ भी आपकी आंतरिक प्रवृत्तियों में से ऊपर चेतन मन तक न आ जाए समाज जिसके विरुद्ध है। ऐसा कुछ भी आपके चेतन मन तक नहीं आने दिया जाएगा। अत: अर्धचेतन भी स्वाभाविक प्रवृत्तियों के लिए बहुत बड़ी बाधा निर्मित कर देता है। उदाहरण के लिए, यौन एक प्रवृत्ति है—सर्वाधिक गहरी। बिना उसके पृथ्वी पर जीवन नहीं हो सकता। चूंकि जीवन यौन पर निर्भर करता है, इसीलिए उसे आसानी से नहीं छोड़ा जा सकता है। स्पष्ट है, उसे छोड़ा भी नहीं जाना चाहिए, अन्यथा जीवन असंभव हो जाएगा; इसीलिए इसकी इतनी गहरी पकड़ है।

परन्तु समाज यौन-विरोधी है। उसे होना ही पड़ेगा। जितना अधिक कोई समाज व्यवस्थित होगा, उतना ही वह यौन-विरोधी होगा, क्योंकि अगर आपकी यौन-प्रवृत्ति पर नियंत्रण किया जा सके, तो फिर कुछ भी नियंत्रित किया जा सकता है। और यदि आपकी यौन की प्रवृत्ति पर नियंत्रण नहीं किया जा सकता, तो फिर कुछ भी नियंत्रित नहीं किया जा सकता। अत: यह एक द्वंद्व की भूमि बन जाता है। इसलिए आपको ध्यान रखना चाहिए कि जब भी कोई समाज यौन मुक्त होगा, तो वह फिर नहीं जी सकेगा। वह हार जाएगा। जब ग्रीक समाज यौन-मुक्त हो गया, तो ग्रीक-सभ्यता को मरना पड़ा। जब रोमन-सभ्यता यौन-मुक्त हो गई तो उसे भी मर जाना पड़ा। अब अमेरिका भी नहीं ठहरा सकता। अमेरिका यौन संबंधों में मुक्त हो रहा है। अब अमेरिका ज्यादा देर नहीं जी सकता, क्योंकि वह यौन की दृष्टि से मुक्त हो रहा है। जिस क्षण भी कोई समाज यौन की दृष्टि से स्वतंत्र हो जाता है, तो फिर व्यक्ति पर कोई पकड़ नहीं रहती। तब आप उसे नहीं दबा सकते।

वास्तव में जब तक आप यौन का दमन नहीं करते, आप अपने युवकों को लड़ाई पर जाने के लिए बाध्य नहीं कर सकते। यह असंभव है। आप अपने नवयुवकों को लड़ाई में जाने के लिए बाध्य तभी कर सकते हैं, जब कि आप यौन का दमन करें। इसलिए हिप्पी नारा अर्थपूर्ण है: प्रेम करो–युद्ध नहीं। इसलिए समाज की जो गहरी से गहरी प्रवृत्ति है, उसे दबाना पड़ता है। एक बार उसे दबा दिया, कि फिर वे कभी विद्रोह नहीं कर सकते।

अत:, बहुत सी बातें इस संबंध में समझ लेनी चाहिए। बच्चे जब यौन की दृष्टि से प्रौढ़ होते हैं, तो विद्रोह करने लगते हैं, उसके पहले कभी नहीं। जिस क्षण भी कोई लड़का प्रौढ़ होगा, वह अपने माता-पिता के विरुद्ध विद्रोह करेगा, किंतु उसके पूर्व नहीं; क्योंकि सेक्स के साथ ही यौन निजता आती है। यौन के साथ ही वस्तुत:, वह एक आदमी बनता है, पर उसके पहले कदापि नहीं। अब वह स्वतंत्र हो सकता है। अब उसमें मूल ऊर्जा है, क्योंकि वह जन्म दे सकता है, बच्चे पैदा कर सकता है। अब वह पूर्ण है।

चौदह वर्ष की अवस्था में एक लड़का, एक लड़की पूरे ही जाते हैं। वे अपने माता-पिता से मुक्त हो सकते हैं। इसलिए विद्रोह शक्ल लेने लगता है। यदि समाज को उन्हें नियंत्रण में रखना है, तो उनके यौन को दबाना पड़ेगा। सारी प्रवृत्तियों को दबाना पड़ेगा; क्योंकि हम अभी तक ऐसा समाज निर्मित नहीं कर सके हैं, जिसमें कि वैयक्तिक स्वतंत्रता किसी के विरुद्ध नहीं हो। हम अभी तक नहीं बना सके ऐसा मसाज।

हम अभी भी बहुत प्राचीन, बहुत आदिम हैं–अभी भी सभ्य नहीं हैं; क्योंकि एक वही समाज सभ्य व सुसंस्कृत कह लाता है, जिनका हर एक व्यक्ति अपने मूल बीज में पूरा बढ़ गया हो और दबाया नहीं गया हो। किंतु राजनीति ऐसा नहीं होने देगी, धर्म ऐसा नहीं होने देंगे, क्योंकि एक बार आप अपनी स्वाभाविक प्रवृत्तियों को पूर्ण स्वतंत्रता दे दें, तो ये गिरजे, ये मंदिर–ये जो तथाकथित धर्म के ढांचे खड़े हैं, चल नहीं सकते। धर्म तो और अधिक रूप से प्रभावित होगा, परन्तु ये सारे धर्म नहीं चल सकते; क्योंकि यदि आप भय पैदा नहीं करते, तो कोई भी इन धार्मिक ढांचों के पास नहीं आएगा।

भय के कारण लोग आते हैं। और यदि आप उनकी प्रवृत्तियों को दबाएं, तो वे भयग्रस्त हो जाते हैं–स्वयं से भयभीत। पहली बार एक बच्चा भय अनुभव करता है, जब कि उसका यौन दबाया जाता है। वह अपराधी अनुभव करता है। उसे ऐसा महसूस होता है कि कुछ गलत है, और उसे ऐसा लगता है कि किसी में भी यह बुराई नहीं है जो कि मेरे भीतर है; मैं अपराधी हूं। आप अपराध उत्पन्न कर देते हैं, तभी आप नियंत्रण कर सकते हैं। तब वह भीतर से हीन हो जाता है–डर हुआ। यह भय फिर धार्मिक व राजनैतिक नेताओं द्वारा शोषित किया जाता है, क्योंकि वे सब हुकूमत करना चाहते हैं।

आप शासन भी तभी कर सकते हैं जब कि लोग डरे हुए हों। आप डर पैदा कर सकते हैं। यदि आप लगातार उन्हें आश्वस्त करते चले जाए कि कुछ पाप है, इससे वे डर जाएंगे। हर बार यौन उठेगा और वे डर जाएंगे–स्वयं से डर जाएंगे और अपराधी महसूस करेंगे। तब वे फिर किसी भी बात में आनंद नहीं ले सकते। तब सारा जीवन एक विषाद बन जाता है। तब वे भटकते रहते हैं किसी मदद, किसी मार्गदर्शन की तलाश में, किसी ऐसे व्यक्ति की खोज में, जो कि उनकी जिम्मेवारी ले ले, जो कि उनको स्वर्ग में ले जाए, जो कि उन्हें नर्क से बचाए।

प्रवृत्तियों की यह तीसरी परत अचेतन की है। अर्धचेतन इसे सारे समय नियंत्रित कर रहा है, हर क्षण। और हम ऐसी कटरता से नियमन कर रहा है कि हर चीज नष्ट हो जाती है, या विकृत हो जाती है। इस तीसरी परत से हम कभी भी अनुभव नहीं करते। क्या है वास्तविक प्रवृत्ति? हम कभी महसूस नहीं कर पत्तों। हर बात इस अर्धचेतन द्वारा विकृत कर दी जाती है। यह प्रवृत्तियों वाली परत सर्वाधिक दमित की जाती है, सबसे अधिक विकृत की जाती है, सब से अधिक नष्ट की जाती है, और इसी से सारी वेदना, सारे दु:ख निकलते

हैं। सारे दु:ख, सारी विकृतियां, सारी मानसिक बीमारियां व कुंठाएं, से सब इसी दमित की हुई तीसरी परत से आती हैं।

ये तीन—चेतन, अर्धचेतन तथा अचेतन, ये तीन मन को परतें हैं। जितनी गहरी परत से विचार आएगा, वह उतना ही, असंगत लगेगा। इसलिए यदि आप अपने विचारों को आने दें, जैसे कि वे आते हैं, तो आपको लगेगा कि आप बस पागल हैं। क्या हो रहा है आपके दिमाग में! जिस तरह की विचारणा चल रही है, वह बहुत कुछ असंगत सी लगती है, परन्तु ऐसा है नहीं। वह संगत है, केवल बीच के जोड़ गायब हैं; क्योंकि अर्धचेतन उस सब को ऊपर नहीं आने देता। कुछ बच कर निकल जाता है और मस्तिष्क तक आ जाता है, और बीच-बीच में अंतराल छूट जाते हैं। इसीलिए आप अपने सपनों को नहीं समझ सकते, क्योंकि सपनों में भी अर्धचेतन सदैव सजग रहता है कि हर बात को ऊपर तक न आने दे। तब अचेतन की प्रतीकात्मक साधनों का प्रयोग करना पड़ता है। उसे सब कुछ बदलना पड़ता है अर्धचेतन की आंख बचने के लिए इसलिए वह आपको प्रतीकों में, आकृतियों में खबरें भेजता ही रहता है।

आपका मन भर जाता है, प्रथम बाहरी प्रतिक्रियाओं व प्रतिबिंबों से, दूसरा अर्धचेतन विचारों से, जो कि समाज के द्वारा पैदा किए जाते हैं; और तीसरे प्राकृतिक प्रवृत्तियों द्वारा, जो कि पूर्णत: दमित की गई हैं। ये तीनों लगातार मन में भरते रहते हैं। और इनके कारण आप निरंतर डांवांडोल रहते हैं—निरंतर डांवांडोल व कांपते हुए। यहां तक कि आप सो भी नहीं सकते। अपने चलते रहते हैं, उसका मतलब होता है कि चित्त डांवांडोल हालत में चल रहा है। चौबीस घंटे मन एक पागलखाने की तरह होता है, जो कि गोल-गोल घूमता रहता है।

ऐसी हालत में आप कैसे स्थिर हो सकते हैं? आप कैसे प्राप्त कर सकते हैं, एक आसन, एक निश्चल मन? कैसे आप उसे उपलब्ध कर सकते हैं? और जब ऋषि कहता है कि निश्चल ज्ञान ही आसन है—सम्यक आसन, तो उसका मतलब है कि जब तक ये परतें नहीं तोड़ी जाएं और उनमें जो भरा हो उसे बाहर नहीं कर दिया जाए, तब तक कभी भी आप शुद्ध ज्ञान की स्थिति में नहीं हो सकते। मन साफ नहीं होगा, तो आप जानने की शुद्धता प्राप्त नहीं कर सकेंगे। तो फिर क्या करें? क्या करें? इस निश्चल जानने की स्थिति को उपलब्ध करने के लिए? तीन बातें—जिए—क्षण-क्षण अपने अर्धचेतन को बार-बार दखल न देने दें। समय-समय पर अर्धचेतन को गिरा दें और क्षण क्षण जिए। उसकी हमेशा कोई आवश्यकता नहीं है।

कभी-कभी उसकी आवश्यकता है। जब आप मोटर चला रहे हैं, तो अर्धचेतन की आवश्यकता है, क्योंकि मोटर चलाने की प्रवीणता अर्धचेतन का हिस्सा बन जाती है। इसीलिए आप बातचीत कर सकते हैं, आप सिगरेट पी सकते हैं, आप सोच सकते हैं और कार चलाते रह सकते हैं। अब कार चलाना कोई चेतन मन का प्रयत्न नहीं है। अब अर्धचेतन के द्वारा ले लिया गया। इसलिए यह ठीक है कि जब उसकी आवश्यकता हो, उसका उपयोग किया जाए; परन्तु जब उसकी कोई जरूरत नहीं हो, तो उसे हटा दें, एक तरफ कर दें और क्षण में जिए।

कितने ही ऐसे क्षण होते हैं जब कि अर्धचेतन की जरूरत नहीं होती, परन्तु पुरानी आदत के कारण आप उसका उपयोग करते चले जाते हैं। आप दफ्तर से वापस आ गए हैं और आप अपने बाग में बैठे हैं। अब अर्धचेतन को आने की क्या आवश्यकता है? आप चिड़ियां का गाना सुन सकते हैं, जैसे कि आप जब बच्चे थे, तब सुनते थे, बिना अर्धचेतन के। इन क्षणों में विश्राम में हों। वास्तविकता की स्थिति में हो। अर्धचेतन को बीच में न आने दें। उसे अलग रख दें। बच्चों की भांति खेलें। अर्धचेतन को अलग हटा दें।

एक पिता, जो कि अपने बच्चों के साथ उनके समान हो कर नहीं खेल सकता, वह अच्छा पिता नहीं हो सकता; क्योंकि कोई संवाद संभव नहीं है, जब तक कि आप उनके बराबर नहीं हो जाते। एक मां कभी मां

नहीं बन सकती, जब तक कि वह अपने बच्चों के साथ फिर से एक बच्चा नहीं बन जाती। तभी संवाद होता है। तब एक दूसरी ही प्रकार का प्रेम पैदा होता है। इसीलिए वस्तुत: एक बच्चा कभी स्वतंत्र, मुक्त अनुभव नहीं करता अपने माता-पिता के साथ—कभी नहीं। वह पहली बार तब मुक्त अनुभव करता है, जब कि वह अपने मित्रों के पास जाता है, न कि अपने माता-पिता के पास। इसलिए निरंतर स्मरण रखें कि जब कभी आप अपने अर्धचेतन को विश्राम दे सकें, अवश्य दें। उसकी सारे समय कोई आवश्यकता नहीं है।

परन्तु कितने ही क्षणों में आप उसे विश्राम नहीं करने देंगे, यहां तक कि अपने बिस्तर में भी। आप सो गए हैं, और वह कार्य कर रहा है। आप सोना चाहते हैं, परन्तु वह आपको सोने नहीं देगा। वह सोचता चला जाएगा। आप रोशनी बंद कर सकते हैं। उसका मतलब होता है कि आप पहला, परिधि पर जो मन है, उसे बंद करते हैं। अब चूंकि रोशनी नहीं है, आप देख सकने में समर्थ नहीं होंगे। आप दरवाजे बंद कर दे सकते हैं; अब कोई आवाज, शोर नहीं है। आपने अपने बाहरी विषय से स्वयं को तोड़ लिया है। उसका अर्थ है कि आपको कोई प्रतिक्रिया करने की जरूरत नहीं है। अत: मन की पहली परत विश्राम में हो गई।

दूसरी परत के साथ क्या करें? आपने दरवाजे बंद कर दिए, आंख बंद कर लीं, कान भी बंद कर लिए हैं, परन्तु वह काम करता चला जाता है; क्योंकि आपने उसे कभी काम करते रहने से मना नहीं किया। और वास्तव में, एक आदमी अपने मन का मालिक नहीं हो सकता, जब तक कि उसने इस योग्यता को प्राप्त नहीं किया है। कि जब वह उससे काम लेना चाहे तो ले और यदि वह मन से काम नहीं लेना चाहता हो तो नहीं ले। और यह दूसरी क्षमता ही क्षण में जीने की क्षमता है। लीह त्जू से एक चीनी सम्राट ने पूछा था—मैंने एक साधु के बार में बहुत से चमत्कारों की बात सुनी है। मैंने सुना है कि वह पानी पर चल सकता है, और आकाश में उड़ सकता है, और गुरुत्वाकर्षण का उस पर कोई असर नहीं होता, और वह आसमान में से चीजें प्रकट कर सकता है। इसलिए मैं पूछना चाहता हूं लीह त्जू, एक बात कि क्या तुम्हारा गुरु लाओत्जू भी ऐसे चमत्कार कर सकता है? लीह त्जू ने कहा, हां, वह कर सकता है। वह कोई भी चमत्कार कर सकता है। तब सम्राट ने कहा—मैंने तो नहीं सुना कि उसने कभी कोई चमत्कार किया हो। वह क्यों नहीं करता? लीह त्जू ने कहा—वह उससे भी बड़े चमत्कार करने की क्षमता रखता है, यानी वह उन्हें नहीं करने की भी क्षमता रखता है। वह चमत्कार करने की भी क्षमता रखता है और वह उन्हें नहीं करने की भी क्षमता रखता है।

और दूसरी क्षमता उससे अधिक बड़ी है, क्योंकि कोई भी चमत्कार एक प्रकार से सचमुच एक शक्ति है। और जब वह शक्ति आपके पास है और तब उसका उपयोग न करना उससे भी बड़ी शक्ति है। और वह असंभव बात है। दूसरा चमत्कार, वास्तव में, करीब-करीब असंभव है। और दूसरे चमत्कार के कारण ही बुद्ध ने कभी कोई चमत्कार नहीं किया। महावीर ने कभी कोई चमत्कार नहीं किया—उस दूसरी क्षमता के कारण ही। और वह पहली से ज्यादा बड़ी है।

आप सोचते हैं कि एक चमत्कार, एक चमत्कार है; परन्तु यदि आप एक न सोचते की स्थिति में हो सकें, तो वह उससे भी बड़ा चमत्कार है। यह केवल पुरानी आदत को तोड़ना मात्र है। परन्तु आपने उसकी कभी कोशिश नहीं की। आपने निरंतर अपने अर्धचेतन का उपयोग किया है। आपके अर्धचेतन को ऐसा कोई स्मरण नहीं है कि कभी आपने उसे काम न करने दिया हो। इसलिए पहली बात तो यह है कि अपने अर्धचेतन को कभी-कभी अलग रख दें। उससे काम न लें, और शीघ्र ही आपके पास एक कम डोलता हुआ मन होगा। आप इसके लिए समक्ष हो सकते हैं, और यह कठिन नहीं है। आप केवल अपने अर्धचेतन के काम के प्रति सजग हो जाएं। बस, कभी-कभी विश्राम में हो जाएं और तब अपने अर्धचेतन से कह दें कि वह बंद रहे।

एक बात और स्मरण रखें। कभी उससे लड़े नहीं, अन्यथा आप कभी भी निश्चल नहीं हो सकेंगे। कभी भी उससे लड़ें नहीं, क्योंकि जब कभी मालिक अपने नौकरों से लड़ने लगता है, तो वह उनकी समानता स्वीकार कर लेता है। जब एक मालिक अपने नौकर से लड़ता है, तो इसका मतलब है कि उसने उसे मालिक स्वीकार कर लिया। इसलिए, कृपया स्मरण रखें, कि कभी अपने अर्धचेतन से न लड़े; अन्यथा आप हरा दिए जाएंगे। बस, आज्ञा दें; कभी लड़ें नहीं। और इस अंतर को समझें, जानें कि मेरा क्या मतलब है जब मैं कहता हूं कि उसे बस, आज्ञा दें, मात्र उससे कहें–स्टाप। रुक जाओ। उससे कभी न लड़ें। यह मंत्र है। और मन अनुकरण करने लगता है। बस, कहें, रुको। और कुछ नहीं न अधिक, न कम। कहें, स्टॉप समग्रता से, और इस तरह से व्यवहार करने करने लग जाएं जैसे कि मन रुक गया। आप बहुत जल्दी ही सक्षम हो जाएंगे। और आप आश्चर्य से भर जाएंगे कि किस तरह यह मन रुक जाता है आपके कहने मात्र से कि रुको! क्योंकि मन की अपनी कोई मरजी नहीं है।

आपने किसी को सम्मोहित हुए देखा होगा। क्या होता है? सम्मोहन की अवस्था में, सम्मोहित करने वाला सिर्फ आज्ञा दिए चला जाता है और मन अनुकरण करता चला जाता है। आदमी बड़े मूर्खतापूर्ण हुक्म मानता चला जाता है। सम्मोहित व्यक्ति उनका अनुसरण करता है। क्यों? क्योंकि चेतन मन को सुला दिया गया गया है और अर्धचेतन मन की अपनी कोई मरजी नहीं होती। बस, उससे कुछ भी करने को कहो और वह उसे करता है। परन्तु हमें अपनी क्षमता का कुछ भी पता नहीं है, अत: बजाय आज्ञा देने के हम भीख मांगते रहते हैं या ज्यादा से ज्यादा हम उसमें लड़ने लग जाते हैं।

जब आप लड़ते हैं, तो आप बंट जाते हैं। आपकी अपनी संकल्प शक्ति आपसे लड़ने लगती है। अर्धचेतन की अपनी कोई संकल्प शक्ति नहीं होती। इसलिए यदि आप सिगरेट पीना छोड़ना चाहते हैं, तो कोशिश न करें। मात्र आज्ञा दें उसे बंद करने के लिए और वह रुक जाएगा। प्रयत्न जरा भी न करें। यदि आप प्रयत्न करने जाल में फंस गए, तो आप कभी कि वहां है ही नहीं। आप बस, मन से कह दें, अभी, इसी क्षण से बंद करो। और शीघ्र ही आप देखेंगे कि बात होने लगी। यह प्राकृतिक है। उसमें कुछ भी आश्चर्यजनक नहीं, वह मात्र प्रकृतिगत है। आप सजग हो जाएं; बस, इतना पर्याप्त है। अत: उस अर्धचेतन को एक तरफ रख दें, और क्षण में जीने लगें।

और एक दूसरी बात भी है जो कि आपको करनी है: जब आप अपने मन को अलग करने में सक्षम हो जाए, जब कि बाहर से कुछ भी प्रतिक्रिया का विषय नहीं बने। जब भी कोई वृत्ति ऊपर उठ रही हो, तब केवल अपने अर्धचेतन मन को अलग हटा दें। यह थोड़ा कठिन होगा, परन्तु पहली बात उपलब्ध करना जरा भी कठिन नहीं होगा। केवल देखें कि फिर काम-वासना उठ रही है अथवा क्रोध उठ रहा है, तब बस, अर्धचेतन से कहें–मुझे इसे सीधा देखने दो, बीच में न आओ। मुझे प्रत्यक्ष सामना करने दो, तुम्हारी कोई जरूरत नहीं है। बस, मन को ऐसी आज्ञा दो, और वृत्ति की सीधा देखो, आमने-सामने और यदि एक बार भी आप अपनी वृत्ति को प्रत्यक्ष देख सकें, तो आप उसके मालिक हो जाएंगे, बिना किसी भी नियंत्रण के।

जब तक आपको नियंत्रण की जरूरत है, आप मालिक नहीं हैं। एक मालिक को नियंत्रण करने की कोई जरूरत नहीं। यदि आप कहते हैं कि आप अपने क्रोध को नियंत्रित कर सकते हैं, तो आप मालिक नहीं हैं, क्योंकि जिसे नियंत्रक किया गया है, वह कभी विस्फोटित हो सकता है। और आप सदैव डरे हुए रहेंगे उससे जिसे कि दबाया गया है, और निरंतर एक लड़ाई चलती रहेगी और वे कमजोर क्षण आते रहेंगे, जब कि आप हार जाएंगे। इसलिए कृपया, नियंत्रण करें। मालिक बनें, नियंत्रित न करें। ये दो बिलकुल भिन्न आयाम हैं।

जब मैं कहता हूं कि मालिक बनें, तो मतलब है कि यह मालकियत केवल तभी आती है जब कि आप अपनी जैविक प्रकृति को जैसी भी वह है, वैसी ही प्रत्यक्ष जान लें, उसकी शुद्धता में। मैं नहीं सोचता कि

आत्मा पूजा भाग-१

आपने कभी यौन को उसकी शुद्धता में जाना है, बिना नैतिक शिक्षाओं को बीच में लाए, बिना किन्हीं गुरुओं, महात्माओं और नैतिकता वादियों के सिद्धांतों को बीच में लाए, बिना धर्मग्रंथों के! यदि आपने इस तरह उसे देखा हो, तो आप उसके मालिक बन जाएंगे। यदि आपने उसे नहीं देखा है, तो आप लंगड़े ही रहेंगे, आप एक हारे हुए रहेंगे। और उसे कुछ फर्क नहीं पड़ता कि आप किस भांति उसे नियंत्रित करते हैं, आप उसे कभी नियंत्रित नहीं कर सकेंगे। वह असंभव है।

नियंत्रण असंभव है, परन्तु मालकियत संभव है। मालिक होने की एक दूसरी ही जड़ है। मालिक होने का मतलब है ज्ञान; नियंत्रण का अर्थ होना है भय। जब आप किसी बात को जान लेते हैं, तो उसके मालिक हो जाते हैं। तब फिर किसी भी नियंत्रण की आवश्यकता नहीं। और ज्ञान का अर्थ होता है—सीधा साक्षात्कार। वृत्तियां को उनकी शुद्धता में जानना चाहिए। अर्धचेतन को गिरा दें, क्योंकि यह सदैव दखल देने वाला टुकड़ा है। यह चीजों को विकृत करता चला जाता है। यह कभी भी आपको वास्तविकता नहीं देखने देगा। वह सदैव समाज को बीच में ले जाएगा, और आप समाज के बीच से उनको देखेंगे और जैसी वे चीजें नहीं हैं, वैसी उन्हें देखेंगे। और वस्तुतः यही अर्धचेतन का चमत्कार है, कि यदि आप उसके मार्फत देखेंगे, तो चीजें वैसी ही दिखलाई पड़ेंगी, जैसी कि आप देखते हैं। वे वैसी होने लगेंगी, जैसी आप देखेंगे। अर्धचेतन कोई भी रंग, कोई भी रूप आरोपित कर सकता है।

केवल उसे अलग कर दें; अपने जैविक स्वभाव को सीधा देखें; वह बहुत सुंदर है, वह अदभुत है। बस, उसको सामने से प्रत्यक्ष देखें। वह दिव्य है। किसी प्रकार की नैतिक नासमझी को उसे बिगाड़ने न दें। उसे वैसा ही देखें जैसा कि वह हैं।

वैज्ञानिक वस्तुओं। को देखते हैं, और उनका देखने का आधार होता है कि देखने वाला बीच में न आए; वह वह बस द्रष्टा बना रहे। और जो कुछ भी वह वस्तु बतलाए उसे बतलाने दे। द्रष्टा बीच में दखल देने या नष्ट करने न आए अथवा विकृत न करे या कोई रंग या रूप न बतलाए। एक वैज्ञानिक प्रयोगशाला में काम कर रहा है, यहां तक कि यदि कोई बात प्रकट होती है जो कि उसकी पुरानी धारणा को गड़बड़ करती है, उसके पूरे दर्शन को, उसके सारे धार्मिक मतों को झूठ लाती है, तो भी उसे अपने मन को बीच में नहीं आने देना है। उसे सत्य को प्रकट होने देना है, जैसा भी वह है।

यही बात आंतरिक कार्य, आंतरिक शोध भी है। अपनी जैविक प्रकृति को अपनी शुद्धता में प्रकट होने दें। और यदि एक बार भी आप उसे जान लेते हैं, तो आप उसके मालिक हो जाएंगे, क्योंकि जानना ही मालिक होना है, ज्ञान का मतलब है शक्ति। केवल ही कमजोरी है। और संयम में कोई ज्ञान नहीं है, क्योंकि संयम की सारी धारणा अर्धचेतन द्वारा, समाज द्वारा लादी गई है।

अतः यदि आप दो बातें अपनी चेतना के साथ कर सकें—एक, बाहरी तथ्य को प्रत्यक्ष, सीधा आने दें और दूसरा, कि भीतरी अस्तित्व को अपने शुद्ध रूप में प्रकट होने दें, अपनी निर्दोषिता में, तो चमत्कार घटित हो जाता है। यह एक चमत्कार है, और यह ऐसा चमत्कार है कि अर्धचेतन व अचेतन तब दोनों गिर जाते हैं। तब मन तीन में विभक्त नहीं होता मन एक हो जाता है और उस मन की एकता, वैसी अविभाज्य एकता को ही उपनिषद ज्ञान कहते हैं, क्योंकि जानने वाला भी वहां नहीं होता। जब ये तीनों खंड गिर जाते हैं, जब कि जानने वाले का खंड भी वहां होता, तभी शुद्ध जानना होता है, केवल तभी दर्पण की भांति जानना शेष रहता है। ऐसे जानने में, ऐसे ज्ञान में, आपके दो केंद्र होते हैं; एक, बाह्य परिधि जहां कि आप विश्‍व से जुड़ते हैं; और दूसरा, आंतरिक जहां कि आप पुनः अंतर्जगत से जुड़ते हैं। और यह जानना आंतरिक व बाह्य दोनों को जोड़ता है—आत्मा व ब्रह्म को।

यह शुद्ध जानना, ज्ञान किसी कंपन के होता है। यह शुद्ध जानना ही आसन है, सम्यक आसान, जिसमें कि ज्ञानोपलब्धि होती है, जिसमें कि आत्म-ज्ञान की घटना घटित होती है, जिसमें कि आप सत्य के साथ एक हो जाते हैं। यही द्वार है। परन्तु इस तक पहुंचें कैसे? यह कोई सिद्धांत नहीं है, कोई सैद्धांतिक कथन नहीं है। यह एक वैज्ञानिक विधि है। यह एक प्रक्रिया है, इसलिए मन के खंडों को विलय करने के लिए कुछ न करें। और यदि आप मन को वाष्पीभूत करने के लिए कुछ करना ही चाहते हैं, तो अपने अर्धचेतन पर ध्यान केंद्रित करें, मन के मध्य भाग पर जो कि समाज का है, और उसे गिरा दे।

वस्तुत: यह आवश्यक है कि एक बच्चे को समाज में पाल-पोस कर बड़ा किया जाए। वह अनिवार्य है। अत: अर्धचेतन एक आवश्यक बुराई है। समाज को बहुत सी बातें सिखानी पड़ती है। परन्तु व जंजीरें न बन जाएं। इसलिए मैं कहता हूं कि ज्यादा अच्छा समाज, एक आदर्श समाज साथ ही साथ बच्चे को यह भी सिखाता है कि अर्धचेतन को किस तरह गिराया जाए। एक अधिक अच्छा समाज अपने बच्चों को एक सचेतन विधि भी देता है अर्धचेतन के साथ-साथ कि जब अर्धचेतन की आवश्यकता न हो तो उसे कैसे गिराया जाए और उससे कैसे मुक्त हुआ जाए।

उसकी आवश्यकता उसी समय तक है, जब तक कि आप सजग नहीं हो जाते, तब तक कि आप मन की जाग्रत अवस्था को उपलब्ध नहीं कर लेते। केवल तब तक ही है। यह जरूरत एक अंधे की लकड़ी की तरह है। परन्तु लकड़ी आंख तो नहीं हो सकती, वह तो सिर्फ अंधेरे में टटोलने के लिए है। परन्तु एक अंधे आदमी को उसकी आवश्यकता है, क्योंकि वह सहायक है। परन्तु एक अंधा आदमी इतना अधिक उससे चिपक सकता है कि जब उसकी आंखें ठीक हो जाती हैं और और वह देखने लग जाता है, तब भी वह अपनी लकड़ी नहीं फेंकता और उससे टटोलता ही जाता है। वस्तुत: टटोलना तभी तक है जब तक कि आंखें बंद हैं, पर वह आंख ठीक हो जाने पर भी उन्हें बंद कर के रहता है और अपनी लकड़ी से ही टटोलता रहता है।

यह अर्धचेतन अंधे की छड़ी के समान है। एक बच्चा पैदा होता है, परन्तु वह जाग्रत पैदा नहीं होता। समाज को उसे कुछ देना पड़ता है जिससे कि यह चल सके और टटोल सके—कुछ मान्यताएं, कुछ आदर्श, कुछ विचार। परन्तु ये आंखें न बन जाएं। और मैं जो कह रहा हूं वह यह है: यदि आप खंडों को गिरा देते हैं, और स्वयं के भीतर अधिक चेतना बढ़ा लेते हैं, तो आपको आंखें मिल जाती हैं। और उन आंखों के साथ लकड़ी की आवश्यकता नहीं है।

परन्तु यह सापेक्ष चीज है। यदि आप अर्धचेतन को गिरा दें, तो आप जाग्रत हो जाते हैं। यदि आप सजग हो जाते हैं, तो अर्धचेतन गिर जाएगा। इसलिए कहीं से भी प्रारंभ करें। आप अधिक सजग होने से ही शुरू कर सकते हैं और तब अर्धचेतन गिर जाएगा। यह सांख्य की विधि है, सांख्य की पद्धति है—बस, सजग रहना ताकि धीरे-धीरे अर्धचेतन गिर जाए। योग की प्रक्रिया दूसरी प्रकार की है—इसके विपरीत, अर्धचेतन को गिरा दें, और आप जाग्रत हो जाएंगे। दोनों जुड़े हुए हैं। अत: जब भी आप प्रारंभ करना चाहें, तो महत्वपूर्ण बात है प्रारंभ करना। कहीं से भी शुरू करें, चाहे अधिक सजग होने से अथवा अर्धचेतन से कम से कम चालित होने से। और जब ये विभाजन गिर जाएंगे, तो आपके पास शुद्ध ज्ञान होगा। यह शुद्ध ज्ञान ही आसन है। इस शुद्ध ज्ञान से ही वह जो निश्चल ज्ञान है, उपलब्ध होगा। आपका शरीर उस निश्चलता को उपलब्ध होगा जो कि आपने कभी पहले नहीं जानी।

हमें पता ही नहीं है कि हम अपने शरीरों के भीतर कितनी बुरी तरह से परेशान हैं। हम स्थिर नहीं बैठ सकते और यदि स्थिर बैठने की कोशिश करें भी तो पहली बार हमको अपने शरीर के जो सूक्ष्म कंपन हैं, उनका पता चलेगा। पांव कुछ कहने लगेगा, हाथ कुछ और कहने लगेगा, गर्दन कुछ और बात कहने लगेगी। शरीर

का हर अंग कुछ न कुछ सूचना देने लगेगा। क्यों? ऐसा है कि जब आप स्थिर बैठ जाते हैं, तभी शरीर गति करने लगता है; वह तो हर क्षण गति कर ही रहा है। आपका ध्यान कहीं और लगा हुआ रहता है और आप इस तरफ सजग नहीं हैं। अत: इस गति का पहले पता नहीं चलता। ये सूक्ष्म गतियां लगातार हो रही हैं। आपका शरीर चल रहा है। यह जो निरंतर कंपन हैं, ये वास्तव में आपके शरीर के नहीं हैं। ये आपके मन के हिस्से हैं। शरीर तो सिर्फ इन्हें प्रतिबिंबित करता है। आप सो भी नहीं सकते निश्चल आसन में। सारी रात आप इधर से उधर करवटें लेते रहते हैं, चलते रहते हैं, चलते रहते हैं और चलते ही रहते हैं।

अभी अमेरिका से हमारे पास स्लीप लैस, निद्रा-परीक्षण प्रयोशालाओं की तस्वीरें आई हैं। अब वे फिल्म बनाने लगे हैं—सोते हुए आदमियों की। यदि आप अपनी फिल्म देख सकें कि आप सोते में कितनी गति कर रहे हैं, तो आप देखेंगे कि सारी रात आप कितने परेशान है। और आपके शरीर की गतियों से यह देखा जा सकता है कि भीतर काफी कुछ हो रहा है! चेहरे की बहुत सी आकृतियां बनती है, हाथों के, उंगलियों के व शरीर के अनगिनत हाथ-भाव होत हैं। अवश्य एक पागल आदमी आपके भीतर होना चाहिए, अन्यथा ये हाथ-भाव असंभव हैं। परन्तु आपको कभी पता ही नहीं चलता कि आपको क्या हो रहा है। कोई सजग नहीं है। प्रत्येक सोया है, कोई भी जागा हुआ नहीं है। आपको पता ही नहीं है कि आप नींद में अपने शरीर के साथ क्या कर रहे हैं। परन्तु वह करना मन के कारण है। एक अशांत चित्त ही शरीर के द्वारा प्रतिबिंबित हो रहा है।

एक बुद्ध मूर्तिवत बैठते हैं। ऐसा नहीं है कि उन्होंने शरीर को जबरन वैसे बिठलाया है। मन स्थिर हो गया है, और शरीर उसकी स्थिरता प्रतिबिंबित करता है, क्योंकि अन्य कुछ भी प्रतिबिंबित करने को नहीं है। एक बार बुद्ध एक बड़ी राजधानी में अपने दस हजार भिक्षुओं के साथ ठहरे थे। वहां का राजा भी दिलचस्पी लेने लगा। किसी ने उससे कहा—आपको इस आदमी से मिलने के लिए अवश्य जाना चाहिए। उस राजा का नाम था अजातशत्रु, जिसका मतलब होता है कि उसका कोई शत्रु ही नहीं है। इस जगत में, जिसका कोई शत्रु पैदा ही नहीं हुआ, और हो भी नहीं सकता। परन्तु यह अजातशत्रु अपने दुश्मनों से बहुत डरा हुआ रहता था। इसको दिलचस्पी पैदा हुई; क्योंकि कई आदमी उसके पास आए और उन्होंने कहा—आपको अवश्य ही आना चाहिए और देखना चाहिए। यह आदमी बड़ा विचित्र है। आएं और देखें।

इसलिए वह आता है। वह उस कुंज में, उस बाग में पहुंचता है। शाम हो चुकी है। वह अपने मंत्रियों से पूछता है—तुम क्या सोचते हो? यहां पर दस हजार भिक्षु उपस्थित हैं, परन्तु कोई शोर सुनाई नहीं पड़ता! क्या तुम मुझे धोखा दे रहे हो? वह अपनी तलवार निकाल लेता है। वह सोचता है कि उसके साथ कोई धोखा करके उसको इस जंगल में लाया गया है और अब ये लोग उसे मारने जा रहे हैं। दस हजार भिक्षु इन पेड़ों के पीछे हैं और कोई आवाज नहीं! जंगल बिलकुल शांत है और अजातशत्रु कहता है—मैं इस जंगल में कितनी बार आया हूं। यह पहले तो कभी भी इतना शांत नहीं था। जब यहां कोई भी नहीं था, तब भी यह इतना शांत नहीं था। अब चिड़ियां भी चुप हैं। क्या मतलब है तुम्हारा? क्या तुम मुझे धोखा देना चाहते हो? उन्होंने कहा, डरें नहीं। बुद्ध यहां ठहरे हैं। इसी कारण जंगल इतना शांत हो गया है और यहां तक कि चिड़ियां भी चुप हैं। आप आ जाएं।

वह आता है, परन्तु उसने अपनी तलवार अपने हाथ में ले रखी है। वह डरा हुआ है और कांप रहा है और वे उसे जंगल में ले जा रहा हैं, जहां कि बुद्ध और दस हजार भिक्षु पेड़ों के नीचे बैठे हैं। प्रत्येक पत्थर की मूर्ति की तरह स्थिर है। वह बुद्ध से पूछता है—इन सब लोगों को क्या हो गया है? क्या ये मर गए हैं? मैं तो डर गया हूं। ये सब भूत जैसे लगते हैं। कोई हिलता तक नहीं इनकी आंखें तक भी नहीं हिलती। क्या हो गया है इनको? बुद्ध कहते हैं—बहुत कुछ हो गया इनको। ये अब पागल नहीं रहे।

आत्मा पूजा भाग-१

जब तक कि कोई इतना शांत व स्थिर न हो जाए वह नहीं जान सकता कि अस्तित्व क्या है, जीवन का क्या अर्थ है, उसका क्या आनंद है, उसकी क्या अनुकंपा है। केवल इसी शांति में, मौन में जीवन उतरता है, और आप उस संगीत को, उस अमृत को चख पाते हैं। आप उसको अनुभव करने लगते हैं, परन्तु केवल उसी शांति में। और वैसी शांति, वैसा मौन केवल तभी उपलब्ध होता है, जब कि आप अकंप हों, अडिग हों। यदि आप इधर से उधर डोल रहे हैं, यदि मन सिर्फ यहां-वहां डोल रहा है, और भीतर कंपन हो रहा है, तो आप उस मौन को अनुभव कर नहीं सकते।

आप सीधे उस मौन को नहीं पा सकते। पहले आपको निश्चलता को पाना होगा। तब छाया की तरह मौन पीछे पीछे आता है। यदि कोई निष्कंप हो जाता है तो मौन भी आ जाता है। इसलिए बुद्ध कहते हैं कि–बहुत कुछ हो गया है इन लोगों को। अब ये पागल नहीं रहे। ये सब शांत हो गए हैं, और अब ये इन वृक्षों से, इस पृथ्वी से, इस आकाश से एक हो गए हैं। तुम्हें केवल शोर से ही बांटा जा सकता है। मौन कभी बांटता नहीं, मौन तो तुम्हें जोड़ देता है।

उदाहरण के लिए, यदि हम सब जो यहां बैठे हुए हैं, इतने मौन ही हो जाएं कि किसी विचार का भी अस्तित्व न हो, एक छोटी सी तरंग भी मन में न उठती हो, प्रत्येक मौन हो–समग्ररूपेण मौन, तो क्या तुम दूसरों से भिन्न होओगे? क्या तुम स्वयं को अपने पड़ोसी से भिन्न पाओगे? भिन्नता का अनुभव विचार में होता है। क्या मेरा मतलब है कि आप उनसे एक हो जाएंगे। नहीं, क्योंकि एकता का अनुभव भी विचार ही है। आप सिर्फ एक होंगे, बिना किसी अनुभूति के। वस्तुतः यहां कोई भी न होगा, केवल मौन होगा।

बुद्ध कहते हैं–ये सब वृक्षों से, पृथ्वी से, आकाश से एक हो गए हैं। वस्तुतः अब ये यहां नहीं हैं। केवल शांति ही है और इसीलिए यहां की चिड़ियों तक को मौन पकड़ गया है। दस हजार मनुष्य इतने मौन कि वृक्षों में पक्षी भी सजग हो गए। उन्होंने भी उस मौन को अनुभव किया। वह छूत की बीमारी की तरह फैल गया। बुद्ध कहते हैं–अजातशत्रु, तुम ठीक कहते हो। तुम कितनी ही बार इस वन से गुजरे होगे और इतनी शांति यहां कदापि न हुई होगी। यह आगे भी इतना नीरव कभी न होगा, क्योंकि आज पहली बार दस हजार लोगों के शांत मन यहां उपस्थित हैं। अतः शांति दस हजार गुना बढ़ गई है। प्रत्येक चीज प्रभावित है। पेड़ भी हिलने-डुलने से बचते हैं। पक्षी भी कंपने में, शोर करने में हिचकते हैं। शाम हो गई है, वे घर लौट रहे हैं और जब पक्षी घर लौटते हैं, तो बहुत शोर मचाते हैं, परन्तु यहां तो एक तरंग भी नहीं है।

जब आप शांत होने लगते हैं, तो आप अस्तित्व के साथ एक गहरे संपर्क में आते हैं। विचार और विचार, यह सब बड़ा शोर है। लहरें और लहरें, ये सब विचार है और कंपन हैं भीतर के। ये सब बाधा उपस्थित करते हैं; ये तोड़ते हैं, ये आपको अकेला कर देते हैं। तब आप इस सारे जगत में अपने को अकेला पाते हैं और यह अकेलापन अर्थ शून्यता उत्पन्न करता है। जितने अधिक अकेले आप होंगे, उतना ही अधिक अर्थहीनता का, निकृष्टता का, बेकारपने का अनुभव आप करेंगे और तब स्वयं को और अधिक शोर से भरने लगेंगे। रेडियो के, टेलीविजन के या किसी भी चीज के शोर से आप अपने को भरने लगेंगे, व्यस्त रखेंगे। आप यहां से वहां दौड़ते हैं, इस क्लब से उस क्लब में। दौड़ते चले जाएं। कोई अंतराल न छोड़ें जिसमें कि आप अपने अकेलेपन के प्रति सजग हो सकें।

इस तरह यह सारा जीवन ही यहां से वहां की एक दौड़ हो जाता है। यह विक्षिप्तता है और सारा संसार एक पागलखाना हो गया है।

अतः इस आसन को उपलब्ध करें और शरीर से प्रारंभ न करें, अर्धचेतन मन से प्रारंभ करें और तब आपका शरीर वह प्रकट करेगा जो कुछ आपके भीतर होगा। वह अभी भी जो कुछ भीतर हो रहा है, उसके प्रकट कर रहा है। शरीर एक दर्पण है, वह पारदर्शक है। जिनके पास अंतदृष्टि है वे जानते हैं कि शरीर पारदर्शक

है। आप हॉल में प्रवेश करते हैं और मैं जान लेता हूं कि आपके भीतर क्या हो रहा है, क्योंकि आप उसे बिना बतलाए भीतर प्रवेश नहीं कर सकते। आप मेरी तरफ देखते हैं, और मैं जान लेता हूं कि आपकी आंख के भीतर क्या हो रहा है; क्योंकि आप अपनी आंखों को ऊपर उठा ही नहीं सकते हैं बिना व्यक्त किए कि आपके भीतर क्या हो रहा है। वह तो हर क्षण दर्शाया जा रहा है।

प्रत्येक क्षण एक संकेत है। वह सुसंबद्ध है। कुछ भी असंगत नहीं है। हर क्षण आपका शरीर वह बतला रहा है कि भीतर क्या हो रहा है, परन्तु आप शरीर की भाषा नहीं जानते। शरीर की अपनी भाषा होती है, और वह सब कुछ प्रकट कर देती है। आप धोखा नहीं दे सकते। आप अपनी मौखिक भाषा से धोखा दे सकते हैं, परन्तु शरीर से भाषा से नहीं। आप मुस्कुरा सकते हैं, परन्तु आपके होठ बतला देंगे कि भीतर कोई मुस्कुराहट नहीं है। आप अपने चेहरे से कुछ प्रदर्शित करने का प्रयत्न कर सकते हैं, कोशिश कर सकते हैं; परन्तु फिर भी चेहरा इतना इशारा अवश्य दे देता है कि वह झूठा है।

यह शरीर सारे समय सूचना दे रहा है और आप उसे बदल नहीं सकते। आप प्रयत्न कर सकते हैं, परन्तु आप बदल नहीं सकते। और यदि आप अपने शरीर में परिवर्तन करने में सफल भी हो जाएं तो आप दूसरों को धोखा देने में सफल हो जाएंगे, परन्तु स्वयं को नहीं; क्योंकि वह जो भीतरी है, वह बाहरी परिवर्तन से बदल नहीं सकता। वह परिवर्तित नहीं होगा।

आप एक वृक्ष को जड़ से काट सकते हैं, परन्तु पत्तियों से नहीं। यदि आप पत्तियों को काटेंगे तो फिर नई पत्तियां आ जाएंगी, और एक पत्ती के स्थान पर दो पत्तियां निकलेंगी।

यदि आप दो काटेंगे, तो उसी स्थान पर चार निकल आएंगी। वृक्ष बदला लेगा, जड़ें बदला लेंगी। वे कहेंगी कि तुम एक पत्ती तोड़ते हो, परन्तु हम दो पैदा कर देंगे। हम लगातार नहीं पत्तियां प्रदान करने की क्षमता रखती हैं--अनंत क्षमता।

इसलिए पत्तियों की परवाह न करें। शरीर के पास केवल पत्तियां हैं। जड़े तो बहुत गहरे में भीतर हैं। जड़ों को ही काट दें, और पत्तियां अपने आप सूख जाएंगी। जब रस देने को कोई जड़ें नहीं होंगी, तो पत्तियां स्वयमेव गिर जाएंगी। आपका शरीर भी बदल जाएगा, यदि आपने अपना मन बदल लिया। मन ही जड़ है।

निश्चल ज्ञान को उपलब्ध करें और द्वार खुल जाएंगे। तब आप उस अज्ञात की एक झलक पा सकेंगे। वह अज्ञात बहुत दूर नहीं है, केवल आप ही बंद हैं। अज्ञात तो यहीं है, लेकिन आप दौड़ रहे हैं। आप इतनी जल्दी में और इतनी तीव्र गति में जी रहे हैं कि आप उस तरफ देख भी नहीं सकते।

स्थिर खड़े हो जाएं। मेरा मतलब आपके शरीर से नहीं; आप अपने मन में स्थिर खड़े हो जाएं, अपनी चेतना में ओर। अचानक आप कुछ ऐसा जानेंगे जो सदैव से है और आप जिसे हमेशा-हमेशा से खोज रहे हैं, कई-कई जीवनों से ढूंढ रहे हैं--उसके लिए दौड़ रहे हैं--और वह यहां ही है। वह इतना पास है, इतना निकट है, इसीलिए आप उसे चूक जाते हैं। वह यहां कोने में ही है और आपने उसे सब जगह खोज लिया, सिवा उस स्थान को छोड़ कर, जहां कि आप खड़े हैं।

मन की स्थिरता उसे प्रकट करती है, जो कि यहां है। चेतना में निश्चल खड़े होना वर्तमान को प्रकट करता है, जो कि यही है।

आज के लिए इतना पर्याप्त है। कल प्रश्नों के उत्तर। आज की चर्चा और आज के सूत्र के संबंध में यदि कोई प्रश्न हों, तो कल बात करेंगे।

बंबई, दिनांक <u>१८</u> फरवरी १९७२, रात्रि

19(MsV pSd djuk gS pkSFks v?;k; iz'u ,oa mRrj dh Hkh ;gh MsV vkSj le; gS)

६ प्रश्न एवं उत्तर

पहला प्रश्न: भगवान, काम-वृत्ति के उदाहरण को ध्यान में रखते हुए कृपया बतलाएं कि अचेतन को प्रत्यक्ष देखने के लिए क्या-क्या प्रयोगिक उपाय हैं और कैसे कोई जाने कि वह उससे मुक्त हो गया है?

अचेतन वास्तव में अचेतन नहीं है। बल्कि वह केवल कम चेतन है अत: चेतन व अचेतन में विपरीत ध्रुवों का भेद नहीं है, बल्कि मात्राओं का भेद है। अचेतन और चेतन दोनों जुड़े हुए हैं, संयुक्त हैं। वे दो नहीं हैं। परन्तु हमारा सोचने का जो ढंग है, वह विशेष तर्क की झूठी पद्धति पर आधारित है जो कि प्रत्येक बात को विपरीत ध्रुवों में बांट देती है। वास्तविकता उस तरह कभी भी बंटी हुई नहीं है; केवल तर्क ही उस तरह विभाजित है।

हमारा तर्क कहता है-हां या नहीं। हमारी लाजिक कहती है-प्रकाश या अंधकार। जहां तक तर्क का संबंध है, उन दोनों में कोई संबंध नहीं है। और जीवन न तो सफेद है और न काला। बल्कि, वह तो एक बहुत बड़ा विस्तार है भूरे रंग का। एक छोर सफेद हो जाता है, दूसरा छोर काला हो जाता है। और जीवन भूरे रंग का एक बड़ा विस्तार है-भूरे की मात्राओं का। परन्तु तर्क के लिए सफेद और काला दो वास्तविकताएं हैं और उन दोनों के बीच कुछ लेना-देना नहीं। परन्तु जीवन सदैव ही इन दोनों के बीच है। इसलिए वस्तुत: हर एक समस्या को किसी तर्क की समस्या की तरह नहीं समझना चाहिए वरन एक जीवन की समस्या की तरह ही उसे लेना चाहिए। केवल तभी आप उसके साथ कुछ कर सकते हैं। यदि आप इस झूठे तर्क से बहुत अधिक चिपके, तो फिर आप आप किसी भी समस्या को नहीं सुलझा सकेंगे।

अरस्तू मनुष्य के दिमाग के लिए एक बहुत बड़ी रुकावट सिद्ध हुआ, क्योंकि उसने एक पद्धति का सृजन किया, जो कि सारी दुनिया पर छा गई; जिसने कि प्रत्येक वस्तु को दो विरोधों में बांट दिया। सचमुच, यह एक विचित्र तथ्य है। हमारे पास कुछ भी नहीं है वास्तविकता के बीच में-यहां तक कि शब्द भी नहीं हैं।

डी बोनो एक आधुनिक तर्कशास्त्री, जो कि अरस्तू की तरह नहीं है, उसने एक नए शब्द की रचना की है-पो। वह कहता है कि हमारे पास केवल दो शब्द है-हां या ना और कोई भी बीच का तटस्थ शब्द नहीं है। हां एक विरोध है और ना दूसरा। कोई तटस्थ शब्द नहीं है। इसलिए उसने एक नया शब्द बनाया पो, जिसका मतलब है कि न तो मैं पक्ष में हूं और न विपक्ष में हूं। यदि आप कुछ भी कहें और मैं कहूं तो पो, तो उसका अर्थ हुआ-मैंने आपकी बात सुन ली है। न तो मैं पक्ष में हूं, और न विपक्ष में हूं। मैं कोई निर्णय नहीं करता। और पो कहने का अर्थ होता है-शायद तुम ठीक हो, शायद तुम गलत हो। दोनों बात संभव हैं। अथवा पो शब्द के प्रयोग का अर्थ है कि यह भी एक दृष्टिकोण है। मुझे हां के अथवा ना के पक्ष के होने की कोई आवश्यकता नहीं। यह कोई बाध्यता नहीं।

डी बोनो ने यह हाइपोथेसिस (अनुमान) अथवा पोटैन्शलिटी (संभावना) जैसे शब्दों से निकाला है। यह पो शब्द एक तटस्थ शब्द है जो कि किसी प्रकार का निर्णय, निंदा अथवा संबंध नहीं बतलाता। जरा इस शब्द का उपयोग कर के देखें और आपको इसके भेद का पता चल जाएगा। आप किसी विपरीत ध्रुव वाले बिंदु पर नहीं जाएंगे।

अत: जब मैं चेतन और अचेतन कहता हूं, तो मेरा मतलब फ्रायड के विरोध से नहीं है। फ्रायड के लिए चेतन चेतन है, और अचेतन अचेतन। तब दोनों के बीच काले और सफेद, हां और ना, जीवन और मृत्यु का भेद है। जब मैं कहता हूं अचेतन, तो मेरा मतलब है कम चेतन। और जब मैं कहता हूं चेतन, तो मेरा मतलब है कम अचेतन। वे दोनों एक दूसरे पर गिरते हुए हैं।

इसलिए क्या करें अचेतन का सामना करने के लिए? जहां तक फ्रायड का संबंध है, यह सामना असंभव है; क्योंकि वह अचेतन है। आप उसका सामना कैसे कर सकते हैं? यह प्रश्न ऐसा ही है जैसे कि कोई पूछे–अंधकार में कैसे देखें? यह प्रश्न ही असंगत है, अर्थहीन है। यदि आप ऐसा प्रश्न पूछते हैं कि अंधकार में कैसे देखें और मैं जवाब देता हूं कि प्रकाश के द्वारा, तो फिर प्रश्न का उत्तर बिलकुल नहीं दिया गया। आपने पूछा है–अंधकार में कैसे देखें, और यदि प्रकाश है तो फिर अंधकार नहीं है। आप प्रकाश में देख रहे हैं।

अत: अंधकार में वस्तुत: कोई नहीं देख सकता, जब तक कि हमारा मतलब यह नहीं हो कि देखना संभव नहीं है। क्या मतलब होता है आपका, जब आज कहते हैं अंधकार? आपका अर्थ होता है कि देखना संभव नहीं है। जब आप कहते हैं प्रकाश, तब आपका क्या अर्थ होता है। आपका अर्थ होता है कि अब चीजें देखी जा सकती हैं। वास्तव में, प्रकाश आपने कभी नहीं देखा; आपने वस्तुओं में प्रकाश को प्रति बिम्बित होते देखा है, जिन्हें कि आप देख सकते हैं। अपने प्रकाश को कभी नहीं देखा है। कोई भी नहीं देख सकता है। हम केवल वस्तुएं देखते हैं, न कि प्रकाश, और चूंकि वस्तुएं देखी जा सकती हैं, हम अनुमान लगाते हैं, मतलब लेते हैं प्रकाश से।

आपने अंधकार नहीं देखा है; किसी ने भी नहीं देखा है। सचमुच, अंधकार भी मात्र एक अनुमान है, क्योंकि उसमें कुछ भी नहीं देखा जा सकता। आप कहते हैं, अंधकार है। अत: जब कोई पूछता है–अंधकार में कैसे देखें? तो ये शब्द अर्थपूर्ण दिखलाई पड़ते हैं, परन्तु वे हैं नहीं। भाषा बड़ी प्रवंचनात्मक है और जब कि कि उसका उपयोग करने में सावधानी नहीं बरतें। तब तक वह किसी भी समस्या के भाषा को लेकर होती हैं। यदि आप नहीं जानते कि भाषा के जाल में कैसे प्रवेश करें, तो आप किसी भी वास्तविक समस्या का समाधान नहीं कर सकेंगे।

फ्रायड से पूछें कि अचेतन का सामना कैसे करें और वह कहेगा, यह मूर्खतापूर्ण बात है; आप उसका सामना नहीं कर सकते। यदि आप उसका सामना करते हैं, तो वह चेतन हो जाता है; क्योंकि सामना करना एक चेतन घटना है। यदि आप मुझसे पूछते हैं कि अचेतन का सामना कैसे करें, तो मैं कहूंगा–हां, ऐसे, तरीके हैं जिनसे उसका सामना किया जा सकता है। मेरे लिए, पहली बात जो कि ध्यान रखनी है वह है कि चेतन का मतलब है सिर्फ कम चेतन। यदि आप अधिक चेतन हो जाते हैं, तो आप उसका सामना कर सकते हैं। यह उस पर निर्भर करता है।

दूसरी बात, अचेतन और चेतन कोई बंधी हुई सीमाएं नहीं हैं। वे हर क्षण बदलती रहती हैं, जैसे कि हमारी आंख की पुतलियां। वे लगातार बदल रही हैं। यदि अधिक प्रकाश है, तो वे संकीर्ण हो जाती हैं। यदि कम रोशनी है, तो वे चौड़ी हो जाती हैं। वे निरंतर बाहर के प्रकाश के साथ एक संतुलन बना रही हैं। आपकी आंख वास्तव में, कोई ठहरी हुई स्थिर वस्तु नहीं है, वह लगातार बदल रही है। उसी तरह, आपकी आंख की तरह ही चेतना का घटनाचक्र भी संगति रखता है, क्योंकि चेतना आपकी अंतर्चक्षु है, आत्मा की आंख है। अत: आपकी आंख की भांति ही, आपकी चेतना लगातार बढ़ रही है, अथवा सिकुड़ रही है। यह सब निर्भर है एक-दूसरे पर।

उदाहरण के लिए, यदि आप क्रोध में हैं, तो आप ज्यादा अचेतन हो जाते हैं। अचेतन की स्थिति अब अधिक है, और आपका जरा सा हिस्सा ही चेतन है। यहां तक कि वह हिस्सा भी कभी-कभी नहीं होता, और आप पूरे के पूरे ही अचेतन हो जाते हैं। मान लें आप अकस्मात दुर्घटना-ग्रस्त हो जाते हैं। आप सड़क पर जा रहे हैं और अचानक आपको लगता है कि दुर्घटना होने वाली है, आप उसके कगार पर ही हैं, तो आप चेतन हो

जाते हैं, और तक कोई अचेतन नहीं होता। पूरा का पूरा मन ही चेतन हो जाता है। यह परिवर्तन लगातार हो रहा है।

इसलिए जब मैं कहता हूं, चेतना और अचेतन, तो मेरा मतलब किसी पक्की सीमा रेखा से नहीं है। ऐसा कोई सीमाएं नहीं हैं। वह एक सतत परिवर्तित होता हुआ घटनाचक्र है। यह आप पर निर्भर आता है कि आप कम चेतन हैं या अधिक चेतन। आप चेतना निर्मित कर सकते हैं। आप अपने को प्रशिक्षित व अनुशासित कर सकते हैं ज्यादा चेतना के लिए या कम चेतना के लिए। यदि आप अपने को कम चेतना के लिए प्रशिक्षित करते हैं, तो आप चेतन का कभी प्रत्यक्षीकरण न कर सकेंगे। सचमुच, आप चेतन को जानने या उसे प्रत्यक्ष देखने के लिए अयोग्य हो जाएंगे।

जब किसी ने कोई मादक पदार्थ लिया है, तो वह अपने मन को पूर्णत: अचेतन होने का प्रशिक्षण दे रहा है। वही होता है, जब आप नींद में जाते हैं। आपको सम्मोहित किया जा सकता है, अथवा आप स्वयं अपने को सम्मोहित कर सकते हैं; और तब अपनी चेतना को खाते हैं। बहुत सी तरकीबें हैं, और उनमें बहुत सी तरकीबें, जो कि आपको अधिक मूर्च्छित होने में सहायक होती हैं, धार्मिक रीति-रिवाज समझी जाती हैं। यदि आप कोई भी उबाने वाला काम–दोहरायी जाने वाली चीज करें–जैसे कि यदि आप लगातार राम, राम, राम शब्द का उच्चारण बड़े ही उबाने वाले ढंग से करें–तो वह मात्र आत्म-सम्मोहन होगा। आप नींद में चले जाएंगे; वह नींद के लिए ठीक उपाय है। जब आप ऊब में होंगे, तब आप कम चेतन होंगे, क्योंकि एक ऊबा हुआ मन सजग नहीं हो सकता। ऊब बहुत अधिक है, और मन सोना चाहेगा।

प्रत्येक माता जानती है कि आपने बच्चे को कैसे सुलाए। एक लोरी कुछ और नहीं करती वरन एक ऊब, एक बोरडम पैदा करती है। हर माता जानती है कि बच्चे को कैसे सुलाया जाए; एक लोरी सुना कर–वही शब्द बार-बार दोहरा कर–उससे बच्चा बोर हो जाता है, और वह सो जाता है। यह लोरी हलन-चलन से भी पैदा की जा सकती है, किसी भी ची से पैदा की जा सकती है जो कि उबाने वाली है। बच्चे को हिला-डुला कर ऊबा दो, उसको इतना घुमाओ कि वह ऊब जाए, और वह सो जाएगा, क्योंकि वह ऊब गया। यहां तक कि यदि आप ह्रदय के पास भी उसका सिर रखें, तो भी वह सो जाएगा, क्योंकि आपके दिल की धड़कन भी बहुत ही उबाने वाली चीज है। अत: बच्चे को अपने दिल के पास रखो, और वह ऊब महसूस करेगा आपके दिल की लगातार हो रही धड़कन के मारे, जो कि निरंतर दोहराई जा रही है।

बच्चा अच्छी तरह से उसे जानता है, क्योंकि पूरे नौ महीने उसने सतत उसे सुना है। बूढ़े भी घड़ी की टिक-टिक का उपयोग सोने के लिए कर सकते हैं। और उसका कारण ह्रदय की धड़कन ने उसका मिलता हुआ होना है। यदि आपको लगे कि नींद नहीं आ रही है, तो घड़ी पर चित्त एकाग्र करें, टिक-टिक को महसूस करें और जल्दी ही आप नींद में गिर जाएंगे।

अब मूर्च्छा उत्पन्न कर सकते हैं ऊब पैदा कर के। कोई मादक-द्रव्य ले कर, कोई नींद की दवा ले कर, या कोई शांत करने वाली दवाई खा कर, आप मूर्च्छा पैदा करते हैं। सजगता भी पैदा की जा सकती है, परन्तु तब बिलकुल भिन्न ही विधियां उपयोग में लानी होंगी।

सूफी रहस्यवादी बहुत तेज घूमते हुए नृत्य का उपयोग करते हैं। आप इतनी तीव्रता से घूम रहे होते हैं कि आप सो नहीं सकते। कैसे आप सो सकते हैं, जब कि आप नाच रहे हैं। कोई जो कि तुम्हारा नृत्य देख रहा है, वह सो सकता है। उसके लिए वह उबाने वाली बात हो सकती है। परन्तु तुम नहीं सो सकते। इसलिए सूफी नाच का उपयोग करते हैं। अपने भीतर अधिक स्फूर्ति उत्पन्न करने के लिए, अपने भीतर अधिक शक्ति के लिए ताकि चेतना फैले, बढ़े!

वे नृत्य, वास्तव में, नृत्य नहीं है। ये नृत्य की तरह लगते हैं। सूफी, जो कि नृत्य कर रहा है, वह सतत शरीर की हरकतों को स्मरण रख रहा है। कोई भी गति मूर्च्छा में नहीं करनी है। यहां तक कि यदि हाथ भी उठे, तो यह हाथ भी आपके इस पूरे होश कि आप इस हाथ को उठा रहे हैं। अब इस हाथ को उठा रहे हैं या अब इस हाथ को नीचे गिर रहे हैं। कोई भी हरकत बेहोशी, मूर्च्छा की हालत में नहीं होनी चाहिए। जोरों से घूमते हुए, तीव्रता से नृत्य करते हुए, किसी प्रकार की गति मूर्च्छित नहीं करनी है। हर एक गति होशपूर्वक करनी है, पूर्ण सजगता के साथ। तब अचानक अचेतन गिर जाता है, और लगातार तीन महीने घंटों नृत्य कर के आप अचेतन का सामना कर सकते हैं। आप गहरे, गहरे और गहरे उतर जाएं और अचानक आप उस सब के प्रति सजग हो जाते हैं, जो कि आपके भीतर है।

यही मेरा मतलब है अचेतन से सामना करने से। कुछ भी नहीं बचता जो कि स्पष्ट दृष्टि में न आए; आपकी समग्रता–आपकी वृत्तियां, आपके दमन, आपका सारा जैविक ढांचा, सब कुछ–इस जीवन का ही नहीं, परन्तु सब जीवनों का–अचानक प्रकट हो जाता है। आप एक नए ही जगत में फेंक दिए जाते हैं, जो कि छिपा हुआ था या जिसके प्रति आप सजग नहीं थे। वह वहां था, परन्तु आप सोए हुए थे अथवा आपकी चेतना इतनी सिकुड़ी हुई थी कि वह बच जाती थी।

हमारी चेतना एक संकीर्ण की हुई टार्च की भांति है। आप यह टार्च लेकर चेतना में प्रवेश कर सकते हैं। आपके पास प्रकाश है, परन्तु यह संकीर्ण की हुई रोशनी है। आप कुछ देख सकते हैं, पर बाकी सारा अंधकार में ढंका हुआ ही रहता है। जब मैं कहता हूं कि कुछ भी अचेतन नहीं बचता, तो मेरा मतलब है–अनफोकस्ड लाइट (संकीर्ण न की गई रोशनी) एक फोकस की हुई रोशनी सदैव कोई न कोई एक वस्तु देखने के लिए चुन लेगी और बहुत सी चीजें नहीं देखने के लिए चुन ली जाएंगी। यह एक चुनाव है। इसीलिए मैं इस उपमा का उपयोग करता हूं–टार्च की भांति, जो कि संकीर्ण कर ली गई हो। एक बिंदु बिलकुल स्पष्ट हो जाएगा, और बाकी सब कुछ अंधकार में रह जाएगा। यही मतलब है हमारा एकाग्रता से, कंसेन्टेशन से।

जितने अधिक आप एकाग्र-चित्त होते हैं, उतना ही कम आप अचेतन का सामना कर पाते हैं। आप कुछ के बारे में बहुत ठीक प्रकार से, निश्चित जान पाते हैं, बहुत सी बातों के संबंध में न जानने की कीमत पर। इसीलिए, विशेषज्ञ धीरे-धीरे अज्ञानी होते जाते हैं, सारे संसार के प्रति अज्ञानी; क्योंकि उन्होंने अपने दिमागों को संकीर्ण कर लिया है–एक विशेष चीज के लिए, उसके बारे में अधिक से अधिक जान कर। ऐसा कहा जाता है कि विशेषज्ञ वह है जो कि कम से कम के बारे में ज्यादा से ज्यादा जानते हो और ज्यादा से ज्यादा के बारे में कम से कम। अंततः केवल एक बिंदु के बारे में वह जान जाता है, बाकी सब चीजों के बार में अज्ञानी होने की कीमत पर।

इस तरह कार्य करती है एकाग्रता। एकाग्रता से आप कभी अचेतन के समक्ष नहीं हो सकते। आप केवल ध्यान से ही अचेतन का सामना कर सकते हैं और यही भेद है एकाग्रता में और ध्यान में। ध्यान का अर्थ है कि आपका मन टार्च की भांति नहीं, बल्कि लैंप की तरह काम कर रहा है; प्रत्येक वस्तु आपके चारों तरफ प्रकाशित हो गई, प्रत्येक चीज। यहां रोशनी संकीर्ण नहीं की गई। प्रकाश को फैला दिया गया–वह सब दिशाओं में बढ़ रहा है। वह सब दिशाओं में चुपचाप गति कर रहा है। सब का सब प्रकाश से भर गया है। सब कुछ आलोकित हो गया है।

कैसे करें इसे? मैंने कहा सूफी लोग नृत्य का उपयोग करते हैं सक्रिय ध्यान के लिए और तब फिर वे अचेतन का सामना करते हैं। जापान में झेन फकीर बड़ी अर्थहीन समस्याएं काम में लाते हैं अचेतन का सामना करने के लिए। आप कुछ ऐसी समस्याओं का सामना करते हैं, जिन्हें कि आप कभी सुलझा नहीं

सकते। आप कितनी ही कोशिश करें, परन्तु समस्या ही ऐसी है कि सुलाझाई ही नहीं जा सकती। ये अर्थहीन, एब्सर्ड समस्याएं हैं।

उदाहरण के लिए, वे किसी साधक से कहेंगे, पता लगाओ कि तुम्हारा असली चेहरा कौन सा है? और असली चेहरे से उनका अर्थ है उस चेहरे से जो कि तुम्हारा चेहरा था जन्म के पहले अथवा जो कि तुम्हारा चेहरा होगा मृत्यु के बाद–असली चेहरा! वे कहेंगे–खोजो कि तुम्हारा असली चेहरा कैसा दिखलाई पड़ता है। आप कैसे पता लगा सकते हैं? उस पर ध्यान करना होगा। समस्या ऐसी है कि आप उसे बुद्धि से तर्क सके नहीं सुलझा सकते। आप तर्क से उसका समाधान नहीं कर सकते आपको उस पर सोचना पड़ेगा, ध्यान करना पड़ेगा। आपको उस पर ध्यान करते जाना होगा और खोजते जाना होगा कि आपका वास्तविक, मूल चेहरा क्या है। गुरु वहां पर अपना डंडा लिए हुए होगा और वह चारों और देखता हुआ घूमता रहेगा कि कोई सो तो नहीं गया है, आप सोएंगे और तभी गुरु का डंडा आपके सिर पर पड़ेगा। आप सो नहीं सकते। निद्रा वहां पर बिलकुल भी नहीं आने दी जाएगी। आपको सतत जागते रहना पड़ेगा।

इसलिए एक झेन गुरु बड़ा सख्त होता है। आपको उसके समक्ष ध्यान करना होता है और वह आपको नींद में नहीं जाने देगा, क्योंकि जिस क्षण आप नींद में गिरने को होते हैं, वही तो क्षण है जब आप अचेतन को आमने-सामने देख सकते हैं। उस क्षण यदि आप नींद के बाहर रह सकें। तो अचेतन वास्तविक रूप में सामने होगा; क्योंकि यही रेखा है, जहां से आप नींद में प्रवेश करते हैं और जहां आप अचेतन को प्रत्यक्ष देख सकते हैं।

आप रोज सोते हैं, परन्तु आपने कभी नींद का सामना नहीं किया है। आपने उसे देखा नहीं है–क्या है वह, कैसे वह आती है, आप उसमें कैसे गिरते हैं। आपने इसके बारे में कभी भी नहीं जाना है। आप उसमें रोज गिरते हैं, रोज ही उससे बाहर निकलते हैं, परन्तु आपने कभी अनुभव नहीं किया कि जिस क्षण नींद चित्त पर छाती है, तब क्या होता है। इसलिए इस पर प्रयोग करें, और तीन महीने के प्रयास अचानक आप किसी दिन अचेतन नींद में प्रवेश करेंगे। अपने बिस्तर पर लेट जाए, अपनी आंखें बंद कर लें और तब स्मरण करे कि नींद आ रही है और मुझे जागते हुए रहना है जब नींद आती है। यह बहुत कठिन है, परन्तु यह बड़ा सहायक है। एक दिन यह नहीं होगा, दूसरे दिन भी नहीं होगा। हर रोज प्रयत्न करें, निरंतर याद रखें कि नींद आ रही है और मुझे उसे बिना जाने नहीं देना है। मुझे सजग रहना है जब नींद प्रवेश करती है। मुझे अनुभव करना है कि जब नींद मुझ पर अधिकार करती है, तब कैसा अनुभव होता है।

एक दिन ऐसा होगा कि नींद होगी, और आप फिर भी जागे हुए होंगे। उसी क्षण आप अपने चेतन के प्रति भी सजग हो जाएंगे। और एक बार आप अपने अचेतन के प्रति जागरूक हो जाएं, तो दिन में फिर आप कभी भी सो नहीं सकेंगे। नींद वहां होगी, परन्तु साथ ही साथ आप जागे हुए भी होंगे। एक केंद्र आपके भीतर जाग रहा होगा। चारों ओर नींद होगी, और केंद्र जाग रहा होगा। जब यह केंद्र जाग रहा होता है, तो फिर स्वप्न असंभव हो जाते हैं। और जब स्वप्न असंभव हो जाते हैं, तो दिवा-स्वप्न भी असंभव हो जाते हैं। तब आप भिन्न ही अर्थ में सोते हैं और सबेरे एक भिन्न ही अर्थ में जागते हैं। एक बिलकुल ही भिन्न गुण-धर्म पैदा होता है इस प्रत्यक्षीकरण से।

परन्तु यह आपको कठिन प्रतीत होगा, अत: मैं आपको सरल तरीका उसे देखने का बतलाता हूं। अपने कमरे के दरवाजे बंद कर दें, और एक एक बहुत बड़ा दर्पण अपने सामने रख लें। कमरा अंधेरा होना चाहिए। और फिर दर्पण के पास एक हल्की रोशनी का लैंप रख लें इस तरह कि इसकी छाया शीशे में दिखलाई न पड़े। केवल आपका चेहरा ही दर्पण में प्रतिबिंबित हो। फिर लगातार दर्पण में अपनी स्वयं की आंखों में देखें।

पलक न झपके। यह चालीस मिनट का प्रयोग है और दो या तीन दिन में आप अपनी आंखों की पलक न झपकने देने में समर्थ हो जाएंगे।

यदि आंसू भी आए तो आने दें, परन्तु पलक न झपके इसके लिए पूर्ण प्रयास करें। लगातार अपनी आंखों में देखते जाएं। दृष्टि का कोण न बदलें। देखते जाएं लगातार अपनी ही आंखों में और दो या तीन दिन में ही आप सारे कंपनों से अवगत हो जाएंगे। आपका चेहरा नए रूप लेने लगेगा। हो सकता है कि आप डर जाएं। शीशे में आपका चेहरा बदल जाएगा। कभी बिलकुल भिन्न ही चेहरा प्रकट होगा, जिसे कि आपने कभी नहीं देखा।

वास्तव में, ये सारे चेहरे आपके हैं। अब अर्धचेतन मन विस्फोट करना शुरू कर रहा है। ये चेहरे, ये मुखौटे आपके हैं। कभी-कभी पिछले जन्मों के चेहरे भी आ सकते हैं। रोजाना चालीस मिनट एक सप्ताह तक देखने के बाद, आपका चेहरा एक प्रवाह, एक धीमी रोशनी का प्रवाह जैसा हो जाएगा। बहुत से चेहरे निरंतर आते-जाते रहेंगे। तीन सप्ताह के बाद आपको याद भी नहीं रहेगा कि आपका चेहरों कौन सा है। आपका अपना ही चेहरा आपको याद नहीं रहेगा, क्योंकि आपने इतने चेहरे आते और जाते देखे हैं कि सब गुम हो गया।

यदि आप इसे चालू रखते हैं, तो तीन सप्ताह बाद किसी दिन भी एक सब से अधिक विचित्र बात होगी: अचानक दर्पण में कोई भी चेहरा नहीं होगा। दर्पण खाली होगा। आप रिक्तता में झांक रहे होंगे। कोई चेहरा भी चेहरा नहीं होगा। इसी क्षण अपनी आंखें बंद कर लें और अचेतन को देखें। जब दर्पण में कोई चेहरों न हो, तभी अपनी आंखें बंद कर लें, भीतर देखें, और आप अचेतन के समक्ष खड़े होंगे। आप नंगे होंगे, बिलकुल नंगे, जैसे कि आप हैं, सारी प्रवंचनाएं गिर जाएंगी।

यह वास्तविकता है। समाज ने कितनी ही तहें निर्मित की हैं, ताकि आप उनके प्रति सजग न हों। इसके लिए एक बार जब आप स्वयं को अपनी नग्नता में, अपनी पूर्ण नग्नता में जान लेते हैं, आप दूसरे ही व्यक्ति होने शुरू हो जाते हैं। तब आप अपने को धोखा नहीं दे सकते। अब आप जानते हैं कि आप क्या है, और जब तक आप न जानें कि आप क्या है, आप रूपांतरित नहीं हो सकते; क्योंकि कोई भी रूपांतरण केवल इसी नग्न वास्तविकता में संभव है। यह नग्न वास्तविकता प्रसुप्त बीज है किसी भी रूपांतरण के लिए। कोई प्रवंचना रूपांतरित नहीं हो सकती। जब आपको मूल चेहरों यहां है और आप इसे रूपांतरित कर सकते हैं; और वस्तुत: उसे रूपांतरित करने का संकल्प ही रूपांतरण को प्रभावित करता है।

परन्तु आपके झूठे चेहरे-आप उन्हें नहीं बदल सकते। मतलब कि आप उन्हें बद तो सकते हैं, परन्तु रूपांतरित नहीं कर सकते। बदलने से मेरा मतलब है कि आप उनके स्थान पर दूसरे झूठे चेहरे लगा सकते हैं। एक चोर एक साधु हो सकता है। यदि एक अपराधी साधु हो सकता है, तो बहुत ही सरल है मुखौटा का बदलना, किंतु यह रूपांतरण नहीं है। रूपांतरण का मतलब है वही हो जाना जो कि तुम हो असल में, जो कि तुम वस्तुत: हो। अत: जिस क्षण आप अचेतन को अपने समक्ष पाएं, उसका सामना करें, देखें, आप वास्तविकता के आमने-सामने खड़े हैं, आप आपने प्रामाणिक स्वरूप के समक्ष खड़े हैं।

आपका झूठा स्वरूप वहां नहीं है, आपका नाम भी नहीं है, आपकी आकृति भी नहीं है, आपका चेहरा भी नहीं है। प्रकृति की नग्न शक्तियां रह गई हैं और इस नग्न शक्तियों के साथ कोई भी रूपांतरण संभव है, आपके जरा से संकल्प करने मात्र पर, चाहने भर पर। कुछ और नहीं करना है। आप मात्र चाह करें, और चीजें होने लगेंगी। जब आप स्वयं को इस नग्नता में देख लें, तब मात्र इच्छा करें, और जो कुछ भी आप चाहेंगे, वह हो जाएगा।

आत्मा पूजा भाग-१

बाइबिल में, परमात्मा ने कहा–प्रकाश हो और–प्रकाश हो गया। कुरान में, खुदा ने कहा, संसार हो–और संसार हो गया। सचमुच, ये कथाएं हैं, संकल्प की कथाएं, जो कि आप में छिपा हुआ है। जब आप अपनी नग्न सत्यवत्ता को देखते हैं, मूल, आधारभूत शक्तियों को देखते हैं तो आप एक सृष्टा बन जाते हैं, एक देवता हो जाते हैं। बस कहें, एक शब्द बोलें, और वह हो जाता है। कहें कि प्रकाश हो, और प्रकाश हो जाएगा। अपने प्रामाणिक स्वरूप से साक्षात्कार होने के पहले यदि आप अंधेरे का प्रकाश में रूपांतरित करने की कोशिश कर रहे हैं, तो वह संभव नहीं है।

अत: यह सामना मूल है, आधारभूत है किसी भी धार्मिक घटना के लिए। कितनी ही विधियां आविष्कृत की गई हैं। एकदम हो जाएं ऐसी विधियां भी है, और धीरे-धीरे हों ऐसी विधियां भी हैं। मैंने आपको धीरे-धीरे होने वाली विधि के बारे में बतलाया है। अचानक होने वाली विधियां भी हैं, लेकिन अचानक होने वाली विधि में यह सदैव बड़ा कठिन होता है, क्योंकि अचानक विधि में हो सकता है कि आपकी मृत्यु हो जाएं। अचानक विधि में हो सकता है कि आप पागल हो जाएं, क्योंकि घटना इतनी अचानक होती है कि आप उसके लिए सोच भी नहीं सकते। आप बस गिर पड़ते हैं, भयग्रस्त।

गीता में यह होता है। अर्जुन कृष्ण को जोर देकर अपना विराट स्वरूप दिखलाने को कह रहा है। कृष्ण दूसरी चीजों की बात करते चले जाते हैं, लेकिन अर्जुन बार-बार जोर दे रहा है और वह कहता है–मुझे दिखलाना पड़ेगा। बिना देखे मैं मान नहीं सकता। यदि आप सचमुच परमात्मा हैं, तो अपना ब्रह्म स्वरूप मुझे दिखलाएं। कृष्ण उसे दिखलाते हैं, परन्तु वह इतना अचानक होता है कि अर्जुन उसके लिए कतई तैयार नहीं रहता, वह चिल्लाने लगता है और कृष्ण से कहता है–बंद करें! बंद करें इसे! मैं भय से मर रहा हूं। इसलिए याद आप किसी अचानक विधि से इस पर आए, तो यह खतरनाक होगा। कुछ खास विधियां हैं। वे केवल समूह में ही सिद्ध की जा सकती हैं–एक ग्रुप में, जिसमें आप दूसरों को दूसरे आपको सहायता दे सकें।

वास्तव में, आश्रम का निर्माण भी इन्हीं अचानक विधियों के लिए किया गया था, क्योंकि वे अकेले साधी नहीं जा सकतीं। एक समूह ही आवश्यकता होती है, दूसरों की जरूरत होती है, एक निरंतर चौकसी की आवश्यकता होती है, क्योंकि कभी-कभी आप महीनों के लिए बेहोश होकर गिर पड़ते हैं और तब यदि कोई नहीं हो जो कि जानता हो कि अब क्या करें, तो आपको मृत समझ लिया जाएगा। रामकृष्ण कितनी ही बार गहरी समाधि में चले जाते थे, छह-छह दिन के लिए, दो सप्ताह के लिए, लगातार। उन्हें सचमुच से जबरन खिलाया जाता था; क्योंकि वे बिलकुल ऐसे हो जाते थे, जैसे मूर्च्छित हों। एक साधक-समूह की आवश्यकता होती है। अचानक विधियों के लिए, और उसके लिए एक गुरु परम आवश्यक है।

ये अचानक विधियां, सडन मैथडस भारतीय विधियों में से निकाल दी गई–बुद्ध, महावीर व शंकराचार्य के कारण। उन्होंने इस बात पर जोर दिया कि साधुओं को सदैव यात्रा करते रहना चाहिए। उन्होंने साधुओं को आश्रमों में नहीं रहने दिया। उन्हें तीन दिन से ज्यादा कहीं भी नहीं रहना चाहिए। इसकी जरूरत भी थी, क्योंकि बुद्ध व महावीर के समय में, आश्रम शोषण के केंद्र बन गए थे, वे बड़े भारी व्यापार के केंद्र हो गए थे। इसलिए महावीर और बुद्ध दोनों ने इस बात पर जोर दिया कि संन्यासी तीन दिन से अधिक कहीं भी न रहे। और तीन दिन, एक बड़ी मनोवैज्ञानिक सीमा है, क्योंकि किसी भी स्थान या लोगों से परिचित होने के लिए आपको तीन दिन से अधिक की आवश्यकता होती है।

एक नए घर में आप आराम से नहीं हो सकते जब तक कि आपने उसमें तीन दिन नहीं गुजार लिए हों। यह मनोवैज्ञानिक समय सीमा है किसी भी स्थान से तालमेल करने के लिए। यदि आप किसी घर में तीन दिन से ज्यादा रहें, तो घर ऐसा लगने लगता है जैसे वह आपका है। इसलिए संन्यासी को कहीं पर भी तीन दिन से अधिक नहीं रहना चाहिए। बुद्ध और महावीर ने इस पर बड़ा जोर दिया था। उनके बहुत जोर देने से ही

आत्मा पूजा भाग-१

आश्रम नष्ट कर दिए गए और ये पुरानी विधियां प्रचलन में से निकाल दी गई, क्योंकि एक घूमता हुआ साधु अचानक घटने वाली विधियों का अभ्यास नहीं कर सकता। वह एक गांव में हो सकता है, जहां कोई भी उसके बारे में कुछ नहीं जानता और यदि वह अचानक होने वाली विधि का अभ्यास करता है और घटना घट जाती है, तो वह खतरे में पड़ जाएगा। वह मर गया हो–ऐसा लगेगा। इसलिए महावीर; बुद्ध और बाद में शंकराचार्य इन तीनों ने इस बात पर जोर दिया कि साधु बराबर घूमते रहें। वे एक स्थान पर न रहें। वे बेघरबार के घुमक्कड़ होने चाहिए। यह एक तरीके से ठीक भी था, और एक तरीके से गलत भी। यह अच्छा सिद्ध हुआ; क्योंकि पुराने जमे जमाए प्रबंध नष्ट हो गए, परन्तु यह बुरा भी साबित हुआ, क्योंकि पुराने प्रबंधों के साथ कुछ बड़े महत्वपूर्ण तरीके, विधियां आदि भी खो गई।

अचानक विधियां सतत ध्यान मांगती हैं किसी एक ग्रुप का। इनमें एक गुरु आवश्यक हो जाता है। इसीलिए भ्रमणवादी बुद्ध कह सके कि तुम मेरे बिना भी जान लोगे। परन्तु गुरजिएफ ऐसा नहीं कह सकते। कृष्णमूर्ति कह सकते हैं कि किसी गुरु की आवश्यकता नहीं है, परन्तु गुरजिएफ नहीं कह सकते। और इनके भेद का असली कारण इनकी पद्धतियां हैं। गुरजिएफ की पद्धतियां एक स्कूल की पद्धतियां हैं, और कृष्णमूर्ति घुमक्कड़ों की परंपरा से संबंधित है–कोई स्कूल नहीं–अतः गुरु की भी कोई जरूरत नहीं।

धीमी विधियों के साथ आप अकेले बढ़ सकते हैं, क्योंकि उसमें कोई खतरा नहीं है। एक-एक इंच आपको बढ़ना पड़ता है और जहां तक एक-एक इंच घटने का संबंध है, आप स्वयं उसको नियंत्रित कर सकते हैं। लेकिन यदि आपको छलांग लगानी है बिना मध्य में किसी भी सीढ़ी पर पैर रखे। तब आपको एक व्यक्ति की आवश्यकता पड़ेगी जो कि जानता हो कि आप कहां गिरोगे, जो कि जानता हो कि क्या हो सकता है। किसी विधि को बताने के लिए किसी गुरु की आवश्यकता नहीं होती; उसकी आवश्यकता तो बाद में होती है, जब कि उस विधि ने कुछ कर दिया हो, और आप अज्ञात में प्रवेश कर गए हो।

अतः अचानक घटित होने वाली विधियां हैं तो, परन्तु मैं उनकी बात नहीं करूंगा। मैंने आपको एक धीरे-धीरे होने वाली विधि की बात कही। और भी बहुत सी विधियां हैं। मैं अकस्मात होने वाली विधियों के बारे में बात न करूंगा, क्योंकि उनकी बात करना भी खतरनाक है। यदि कोई उनमें दिलचस्पी रखता हो, तो उसे मार्गदर्शन दिया जा सकता है, लेकिन उन पर बात करना असंभव है। इसीलिए जिन परंपराओं ने अकस्मात विधियों पर प्रयोग किया है, उन्होंने सदा जोर दिया है कि अकस्मात विधियों के बारे में कुछ भी न लिखा जाए, क्योंकि एक बार कुछ भी लिखा गया, तो वह सबके पास पहुंच जाता है, और कोई भी उसे कर सकता है। कोई भी अपनी ही उत्सुकता का शिकार हो सकता है, और तब उसकी कोई मदद नहीं की जा सकेगी। और जब कुछ भी लिखा जाता है किन्हीं भी पद्धतियों के बारे में, तब तक आधारभूत कड़ी हमेशा लुप्त होती है।

जो लोग शास्त्रों को पढ़कर अभ्यास करते हैं, वे सदा खतरे में होते हैं। कई बार ऐसा होता है कि वे पागल हो जाते हैं, क्योंकि वहां गुप्त कड़ी अवश्य गायब होगी और वह गुप्त कड़ी सदैव गुरु के द्वारा शिष्य को जबानी दी जाती है। यह एक गुप्त प्रक्रिया है, क्योंकि जो जानते हैं, वे अभी भी पूरी बात नहीं लिख सकते। कुछ छिपा हुआ अवश्य रहना चाहिए कुंजी की भांति। अतः कोई भी स्वतः पढ़कर उसे काम में नहीं ला सकता। आप पढ़ सकते है, आप उस पर आलोचन कर सकते हैं, आप उस पर शोध-प्रबंध लिख सकते हैं, परन्तु आप उसका अभ्यास नहीं कर सकते, क्योंकि एक विशेष कुंजी शास्त्र में नहीं दी गई है। अथवा यदि वह दी भी गई है, तो वह इस से दी गई है कि आप उसे इस्तेमाल नहीं कर सकते। उसे इस्तेमाल करने की तरकीब उसमें नहीं दी गई है।

इसलिए अकस्मात विधियों को न करें, लेकिन आप कुछ धीरे-धीरे कर सकते हैं और यह दर्पण-ध्यान बहुत शक्तिशाली विधि है, बहुत शक्तिशाली है स्वयं के खड्ड को, स्वयं के असली स्वरूप को जानने के लिए। और एक बार आपने इसे जाना नहीं कि आप मालिक हो जाते हैं। तब मात्र इच्छा करें और बात होने लगेगी। उस प्रत्यक्षीकरण में यदि आप कहें-मैं इस क्षण मर जाना चाहता हूं, तो आप उसी क्षण मर जाएंगे। यदि आप कहें-मुझे बुद्ध हो जाना है इसी क्षण, तो आप उसी क्षण बुद्ध हो जाएंगे। समय की जरूरत नहीं रहेगी जरा भी, केवल जरा सा संकल्प और सिद्धि सामने होगी।

आप सोच सकते हैं कि यह बहुत सरल है, परन्तु यह बड़ी कठिन समस्या है। प्रथम तो पहुंचना कठिन है। वह इतना कठिन नहीं है, परन्तु उस समय में चाहना बहुत मुश्किल है। ऐसी जीवंत शांति आप पर उतरती है कि आप सोचते हैं कि आपका मन जरा भी नहीं चलता। आप एक ऐसी आश्चर्यजनक शांति की अवस्था में होते हैं कि प्रत्येक चीज यहां तक कि श्वास भी रुक जाती है। ऐसे शांत व स्थिर क्षण में, जब कि आप पूर्णतः शांत हैं, कुछ भी चाहना असंभव है। इसलिए ऐसे क्षण में चाहना सीखना पड़ता है-बिना शब्दों के चाहना, बिना विचारों के चाहना। वह संभव है, लेकिन उनके लिए भी अभ्यास करना पड़ता है।

आप एक फूल को देख रहे हैं; फूल को देखें, उसकी सुंदरता को अनुभव करें, लेकिन सुंदरता शब्द का उपयोग न करे, मन में भी गहरी। उसकी और देखें, उसे अपने भीतर उतरने दें, उसकी निकट से अनुभव करें, परन्तु शब्द का प्रयोग न करें। उसके सौंदर्य का अनुभव करें, परन्तु यह न कहें-यह सुंदर है मन के भीतर भी नहीं। कुछ भी न बोलें, और धीरे-धीरे आप इस योग्य हो जाएंगे कि फूल की सुंदरता को अनुभव कर सकें बिना शब्दों के। वस्तुतः यह कठिन नहीं है, यह स्वाभाविक है। आप पहले अनुभव करते हैं, और तभी शब्द आते हैं। परन्तु हम शब्दों से इतने अभ्यस्त हो गए हैं कि अनुभूति और शब्द के बीच कोई अंतराल नहीं रहता। अनुभूति होती है, और आपने अनुभव किया नहीं कि शब्द आ जाता है। अतः अनुभूति और शब्द के बीच अंतराल पैदा करें। केवल सौंदर्य का अनुभव करें, शब्द का उपयोग बिलकुल न करें।

यदि आप शब्दों को अनुभूति से अलग कर सके, तो आप अनुभूति को अस्तित्व से अलग कर सकेंगे। तब फूल को होने दें, और आप भी हों, दो उपस्थितियों की तरह। परन्तु अनुभव को बीच में न आने दें। अब यह भी महसूस न करें कि फूल सुंदर है। फूल को होने दें और आप भी हों बिना किसी अनुभूति के एक गहरे मिलन में।

तब आप सौंदर्य का अनुभव करेंगे बिना अनुभूति के। वस्तुतः तब आप ही फूल का सौंदर्य होंगे। यह अनुभव नहीं होगा; बल्कि आप स्वयं ही फूल होंगे। तब आपने अस्तित्वगत कुछ अनुभव किया है। जब आप यह कर सकने में समर्थ होंगे आप इच्छा कर सकेंगे? सब कुछ खो जाता है: विचार, शब्द अनुभूति। तब आप अस्तित्वगत इच्छा कर सकते हैं।

इस प्रकार की इच्छा की प्रक्रिया की मदद के लिए बहुत सी चीजों का उपयोग किया गया है। एक यह है कि साधक लगातार सोचता रहे कि जब वह घटना घटेगी तो मैं क्या होना चाहूंगा? उपनिषदों के सूत्र, जैसे कि अहं ब्रह्मास्मि, ये कोई कोरे कथन नहीं हैं। ये कोई दार्शनिक वक्तव्य नहीं हैं। इनका मतलब आपके भीतर कोष-कोष में, एक गहरे संकल्प को खोद देना है, ताकि जब वह घटना घटित हो, तो आपके मन को, आपके कहना न पड़े मैं ब्रह्म हूं। आपका शरीर ही उसे अनुभव करने लगे, आपके कोश उसे अनुभव करने लगें, आपका रेशा-रेशा अनुभव करने लगे-अहं ब्रह्मास्मि। और इस भाव को आपको पैदा करना पड़े। यह आपके अस्तित्व में गहरे चला जाए। अचानक जब आप अचेतन को अपने समक्ष पाएं, उस क्षण, वह भाव आ जाए। तब आप एक सृष्टा हो सकते हैं-मुझे बुद्ध हो जाना है इसी क्षण तो आप उसी क्षण बुद्ध हो जाएंगे। समय की जरूरत नहीं रहेगी जरा भी, केवल जरा सा संकल्प और सिद्धि सामने आएगी।

आप सोच सकते हैं कि यह बहुत सरल है, परन्तु यह बड़ी कठिन समस्या है। प्रथम तो पहुंचाना कठिन है। वह इतना कठिन नहीं है, परन्तु उस समय में चाहना बहुत मुश्किल है। ऐसी जीवंत शांति आप पर उतरती है आप सोचते हैं कि आपका मन जरा भी चलता। आप एक ऐसी आश्चर्यजनक शक्ति की अवस्था में होते हैं कि प्रत्येक चीज यहां तक कि श्वास भी रुक जाती है। ऐसे शांत व स्थिर क्षण में, जब कि आप पूर्णत: हैं, कुछ भी चाहना असंभव है। इसलिए ऐसे क्षण में चाहना सीखना पड़ता है–बिना शब्दों के चाहना, बिना विचारों के चाहना। वह संभव है, लेकिन उनके लिए भी अभ्यास करना पड़ता है।

आप एक फूल को देख रहे हैं; फूल को देखें, उसको सुंदरता को अनुभव करें, लेकिन सुंदरता शब्द का उपयोग न करे, मन में भी नहीं। उसकी ओर देखें, उसे अपने भीतर उतरने दें, उसको निकट से अनुभव करें, परन्तु शब्द का प्रयोग न करें। उसके सौंदर्य का अनुभव करें, परन्तु यह न कहें–यह सुंदर है मन के भीतर भी नहीं।

कुछ भी न बोले, और धीरे-धीरे आप इस योग्य हो जाएंगे कि फूल की सुंदरता को अनुभव कर सकें बिना शब्दों के। वस्तुत: यह कठिन नहीं है, यह स्वाभाविक है। आप पहले अनुभव करते हैं, और तभी शब्द होते हैं। परन्तु हम शब्दों से इतने अभ्यस्त हो गई हैं। कि अनुभूति और शब्द के बीच कोई अंतराल नहीं रहता। अनुभूत होती है, और आपने अनुभव किया नहीं कि शब्द आ जाता है। अत: अनुभूति और शब्द के बीच अंतराल पैदा करें। केवल सौंदर्य का अनुभव करें, शब्द का उपयोग बिलकुल न करें।

यदि आप शब्दों को अनुभूति से अलग कर सके, तो आप अनुभूति को अस्तित्व से अलग कर सकेंगे। तब फूल को होने दें, और आप भी हों, दो उपस्थितियों की तरह। परन्तु अनुभव को बीच में न आने दें। अब यह भी महसूस न करें कि फूल सुंदर है। फूल को होने दें और आप भी हों बिना किसी अनुभूति के एक गहरे मिलन में।

तब आप सौंयर्य का अनुभव करेंगे बिना अनुभूति के। वस्तुत: तब आप ही फूल का सौंदर्य होंगे। यह अनुभव नहीं होगा; बल्कि आप स्वयं ही फूल होंगे। तब आपने अस्तित्वगत कुछ अनुभव किया है। जब आप यह कर सकने में समर्थ होंगे, आप इच्छा कर सकेंगे।? सब कुछ खो जाता है: विचार, शब्द अनुभूति। तब आप अस्तित्वगत इच्छा कर सकते हैं। इस प्रकार की इच्छा की प्रक्रिया की मदद के लिए बहुत सी चीजों का उपयोग किया गया है। एक यह है कि साधक लगातार सोचता रहे कि जब वह घटना घटेगी तो मैं क्या होना चाहूंगा? उपनिषदों के सूत्र, जैसे कि अहं ब्रह्मास्मि, ये कोई कोरे कथन नहीं हैं। ये कोई दार्शनिक वक्तव्य नहीं हैं। इनका मतलब आपके भीतर कोष-कोष में, एक गहरे संकल्प को खोद देना है, ताकि जब वह घटना घटित हो, तो आपके मन को, आपको कहना पड़े मैं ब्रह्म हूं। आपका शरीर ही उसे अनुभव करने लगे, आपके कोष उसे अनुभव करने लगें, आपका रेशा-रेशा अनुभव करने लगे–अहं ब्रह्मास्मि। और इस भाव को आपको पैदा न करना पड़े। यह आपके अस्तित्व में गहरे चला जाए। अचानक जब आप अचेतन को अपने समक्ष पाएं, उस क्षण, वह भाव आ जाए। तब आप एक सृष्टा हो सकते हैं–आपका सारा अस्तित्व झंकार रहा है–अहं ब्रह्मास्मि। जिस क्षण भी आपका अस्तित्व झंकृत करने लगता है, आप वह हो जाते हैं। जो कुछ भी आप महसूस करते हैं, वही आप हो जाते हैं।

इसे दर्शनशास्त्र की तरह नहीं जानना चाहिए; यह ऐसा नहीं है। यह एक अनुभूति है। इसलिए इसे आप एक सच्ची अनुभूति की तरह ही जान सकते हैं। ऐसा निर्णय न लें कि यह सही है या गलत हैं। हां या ना के अर्थों में भी न सोचें। केवल कहें–पो–ओके, और थोड़ा प्रयत्न करें। इतना ही कहें–ठीक; ऐसा हो सकता है। कोई निश्चल न करें, क्योंकि हम बहुत शीघ्रता करते हैं निर्णय लेने में। जब कोई कहता है नहीं, ऐसे संभव नहीं है। तब वस्तुत: वह कह रहा होता है–मैं प्रयत्न करने वाला नहीं हूं। वह ऐसा कह नहीं रहा है कि ऐसा

संभव नहीं है। वह स्वयं को धोखा दे रहा है। वह कह रहा है, मैं कोशिश करने वाला नहीं हूं और क्योंकि मैं कोशिश करने वाला नहीं हूं, तब यह कैसे संभव हो सकता है? वह स्वयं अपने लिए ही तर्कणा कर रहा है।

कोई कहता है, हां, यह संभव है। ऐसा बहुतों से हुआ है। ऐसा मेरे गुरु के साथ भी हुआ है। ऐसा इसके साथ, उसके साथ हुआ है। वह भी प्रयत्न करने वाला नहीं, क्योंकि वह इसे एक सामान्य बात बना देने वाला है, ऐसा बहुतों के साथ हुआ है, इसलिए यह ऐसी कोई बात नहीं है जिसके लिए प्रयत्न करना चाहिए। वह सोचता है यह मेरे साथ भी हो सकता है। नहीं, ऐसा नहीं कहें—बल्कि कहें हां, मैं जानता हूं। बस, इसे एक प्रयोग की भांति लें, एक शोधकार्य जिस पर कि काम करना है। धर्म कोई ऐसी वस्तु नहीं जो कि दी जा सकते। उसे तो स्वयं में निर्मित करना होता है। वह कोई ऐसी वस्तु नहीं जो कि आपको दी गई हो या दी जा सकती हो। वह तो ऐसी वस्तु है, जिसे आपको अपने ही भीतर से उघाड़ना पड़ता है।

इसलिए कोई निश्चय न करें जब तक कि आप अनुभव न करें, जब तक कि आप जाने नहीं, कोई निर्णय न करें। पहले से कभी निश्चय न करें, अन्यथा आप चीजों के बारे में सतत सुनते चले जाएंगे, उनके बारे में सोचते चले जाएंगे और कुछ भी नहीं करेंगे। सोचना, करना नहीं है। सोचना तो करने से बचने का उपाय है।

दूसरा प्रश्नः भगवान, आपकी जो यह द्रुत श्वास लेने की विधि है, यह अचानक-विधि है या धीरे-धीरे होने वाली विधि?

यह धीरे-धीरे होने वाली विधि है। वस्तुतः अचानक होने वाली विधि सब लोगों के बीच में नहीं दी जा सकती; उन विधियों को सबको नहीं दिया जा सकता। अचानक विधियों के लिए सारे जीवन को दांव पर लगाना होता है, क्योंकि उनके लिए आपको समग्रता की आवश्यकता होती है। धीरे-धीरे होने वाली विधियों के लिए आपकी समग्रता की कोई आवश्यकता नहीं। आप उन्हें एक घंटे कर सकते हैं, और फिर तेईस घंटे संसार में रह सकते हैं। परन्तु अचानक विधियों के लिए, आपकी समग्रता की जरूरत पड़ती है। आपको कुछ भी दूसरा करने की इजाजत नहीं दी जा सकती। अतः सारा जीवन ही दे देना पड़ता है, और आपको पूरी तरह विधि के साथ ही रहना पड़ता है।

पूरी चेतना ही तैयार करनी पड़ती है, क्योंकि एक भी हिस्सा, जो कि बिना तैयार किया छूट जाएगा, तो खतरे पैदा करेगा, और वह कुछ भी खतरा उत्पन्न कर सकता है, क्योंकि हर एक क्षण संभावना का क्षण है। जो कुछ भी आपके चारों ओर आता है, उसे शुद्ध करना पड़ेगा; अंत आपको सारी अशुद्धताओं के अलग करना पड़ेगा, हर चीज से खाली होना पड़ेगा। धीरे-धीरे होने वाली विधियों के लिए बहुत सी दूसरी चीजों में से धर्म एक चीज हो सकती है। अचानक विधियों के लिए धर्म को समग्र होना पड़ेगा। कुछ और नहीं करने दिया जा सकता।

जब भी कोई गुरजिएफ के पास आता, तो वह पूछता—क्या तुम इसके लिए मरने को तैयार हो? इससे कम में काम नहीं चलेगा। क्या तुम इसके लिए मरने को राजी हो? उसका मतलब होता है—क्या तुम सब कुछ छोड़ सकने को तैयार हो? पूरी चेतना की जरूरत है। मरना जरूरी नहीं, परन्तु मरने की तैयारी अवश्य चाहिए उसके लिए।

धीरे-धीरे होने वाली विधियां के लिए ऐसी कोई अनिवार्यता नहीं होती। और जैसे भी रहते आए हैं रहते रहें और अपना काम करते चले जाएं। धीरे-धीरे, बढ़ना जारी रहेगा और बिना जाने भी किसी दिन आप उसके लिए मरने को तत्पर हो जाएंगे। परन्तु यह बढ़ना गर्भ के बढ़ने जैसा है। मां भी नहीं जानती कि क्या हो रहा है, क्या घटित हो रहा है। बच्चा बढ़ता चला जाता है, और बढ़ता चला जाता है। नौ महीने के बाद बच्चा इतना बड़ा हो जाता है कि उसको मां की कोई जरूरत नहीं रहती। इसलिए वह बाहर आ जाता है। मां को

इसमें नष्ट होता है। इसका कारण केवल शारीरिक ही नहीं है। भीतर गहरे में मनोवैज्ञानिक कारण भी है, क्योंकि उसका अपना बच्चा इतना बड़ा हो गया है कि उसका उसे छोड़ना मां को बच्चे द्वारा दिया जाने वाला पहला धोखा बन जाते हैं। जब इसके बाद दूसरे धोखे भी आएंगे। वह पहला दर्द जन्म का दर्द है, अब बहुत से अन्य दर्द भी पीछे-पीछे आएंगे। जब बच्चा यौन से प्रौढ़ होगा, तो वह फिर दूसरी बार किसी अन्य स्त्री के लिए मां को छोड़ उसे धोखा देगा।

अत: जन्म एक लगातार होने वाली प्रक्रिया है और एक मां को कितने ही दर्दों में से गुजरना पड़ेगा। और यदि वह इसे नहीं समझ सकती, तो वह उस दर्द को स्वयं पैदा करती है। जब बच्चा पैदा होने को होता है, तब वह सारे शरीर को सिकोड़ लेती है, इसीलिए दर्द पैदा होता है। अन्यथा प्रसव में शारीरिक व्यथा बिलकुल अनावश्यक है। वह सिर्फ एक द्वंद्व है। मां छोड़ने को राजी नहीं है, और बच्चा बाहर आने को ताकत लगा रहा है। इसीलिए बहुत से बच्चों को रात्रि को जन्म लेना पड़ता है इसीलिए बहुत से बच्चों को रात्रि को जन्म लेना पड़ता है। अस्सी प्रतिशत बल्कि इससे भी अधिक बच्चे रात में जन्मते हैं, क्योंकि तब मां सो रही होती है, तो वह कम से कम प्रतिरोध करती है।

आजकल बहुत से वैज्ञानिक और मनोवैज्ञानिक तरीके हैं। यदि एक माता को सहयोग देने के लिए राजी किया जा सके, तो फिर कोई दर्द नहीं होगा। पेरिस में, डाक्टर लोरन्जो ने बहुत सी विधियों पर काम किया है, मनोवैज्ञानिक व राजी करने वाली विधियों पर। उसने हजारों प्रसव करवाए हैं, माताओं को सहायता दी है और उन्हें कोई दर्द नहीं हुआ, बिलकुल भी नहीं। यह एक बच्चे के साथ, जो कि बाहर आ रहा है, सहयोग करने का तरीका है-न कि प्रतिरोध करने का। सहयोग करने का व यह महसूस करने का कि जो बच्चा बाहर आ रहा है, उसकी सहायता करनी है।

लोरन्जो बहुत सी माताओं को राजी कर सकता है, परन्तु उससे भी ज्यादा समस्या तब होती है, जब कि बच्चा दूसरी स्त्री के पास जाता है। उसे मां को फिर समझना पड़ेगा कि दु:ख न मनाए, बल्कि बच्चे की मदद करे किसी और स्वर्ग के पास जाने के लिए। मदद करे, सहयोग करे, क्योंकि यह दूसरी बार बच्चे का जन्म है।

अत: ग्रेज्युअल मैथडम-धीरे-धीरे होने वाली विधियों में आप गर्भ की तरह से बढ़ते हैं। धीरे-धीरे आप पुन: जन्मते हैं। सडन मैथडम, अचानक विधियों में बात बिलकुल भिन्न है, पूर्णत: भिन्न। सब कुछ छोड़ देना अनिवार्य है अचानक विधियों के लिए। पुराने समय में, संन्यास अचानक विधियों से प्रारंभ हुआ। इसीलिए यह आवश्यक था कि सब कुछ छोड़ दिया जाए। विशेषत: भारत में हमने इस बात पर बहुत जोर दिया कि कोई भी संन्यास के लिए न जाए, जब तक कि वह वृद्ध न हो जाए। उसके पीछे मनोवैज्ञानिक कारण है। जब आप बूढ़े हो जाते हैं, तो आपने जीवन पूरी तरह जी लिया होता है। तब समग्र परित्याग आसान हो जाता है क्योंकि सूक्ष्म ढंग से जीवन भी तुम्हें त्याग रहा है, इसलिए तुम भी जीवन को त्याग सकते हो। आप एक सूखा पत्ता हो गए हो, अब आप पेड़ को छोड़ सकते हो बिना पेड़ को चोट पहुंचाए व बिना स्वयं को तकलीफ दिए। पेड़ जानेगा भी नहीं कि सूखा पत्ता कब गिर गया।

एक हरे, ताजे पत्ते को तोड़ें और वृक्ष को पीड़ा होती है, साथ में पत्ते को भी। घाव सदैव के लिए भी बना रह सकता है। इसलिए अचानक विधियों के लिए निश्चित किया गया था कि एक आदमी तभी छोड़े, जबकि जीवन भी उसे छोड़ रहा हो। तभी वह समग्रता से छोड़ सकेगा। धीरे-धीरे होने वाली विधियों के लिए यह आवश्यक नहीं था।

अब संसार में अचानक विधियां असंभव हो गई हैं, क्योंकि कोई प्रामाणिक स्कूल नहीं हैं, कोई संस्थाएं, कोई घनिष्ठ संस्थाएं नहीं हैं, जहां कि आप अचानक विधियों का अभ्यास कर सकें। यह जरूरी नहीं है कि आप

संसार को छोड़कर किसी पहाड़ या जंगल में ही चले जाएं। अब आप जहां हैं, वहां ही रह सकते हैं और धीरे-धीरे होने वाली विधियों को करते रह सकते हैं।

उपलब्धि तो वही होती है, धीमी विधियों के लिए केवल समय की अधिक आवश्यकता होती है, मात्र अधिक समय, और अचानक विधियों के लिए कम समय की जरूरत होती है,

तीसरा प्रश्नः भगवान, किस तरह का समाज ऐसे व्यक्तियों को पैदा कर सकता है, जिनमें कि अर्धचेतन मन उपयोगिता की तरह हो और आसानी से छोड़ा जा सके?

यह एक जटिल समस्या है, बहु आयामी, लेकिन कुछ आधारभूत सूत्र समझे जा सकते हैं। एक अच्छा समाज तभी संभव है, जब कि बच्चों को विरोध की भाषा, द्वैत, शरीर और चेतना के बीच, न सिखलाई जाए। पहली बात, उन्हें यह बात सिखलाई ही न जाए। उनसे यह न कहा जाए कि तुम शरीर में हो; उनसे यह न कहा जाए कि तुम शरीर को सम्हालते हो। यह कहा जाना चाहिए कि तुम शरीर हो। जब मैं यह कहता हूं कि यह कहा जाना चाहिए कि तुम शरीर हो, तो मेरा मतलब किसी भौतिक धारणा से नहीं है। वास्तव में, केवल इसी में से वह आत्मिक स्वरूप उत्पन्न हो सकता है। एकता को भंग नहीं करना चाहिए।

एक बच्चा एक समग्रता के साथ पैदा होता है; हम उसे दो में तोड़ देते हैं। पहला विभाजन शरीर और चेतना के बीच होता है। हम खंडता के बीज बो देते हैं। अब वह कभी भी खो गई एकता को आसानी से प्राप्त न कर सकेगा। जितना वह बड़ा होगा, अंतराल भी उतना ही बड़ा होता जाएगा। एक व्यक्ति जिसके शरीर और चेतना में अंतराल है, वह सहज नहीं होगा। जितना बड़ा अंतराल होगा, उतना ही विक्षिप्त वह होगा; क्योंकि तब शरीर और मन का भेद एक भाषागत भ्रांति होगी। हम साइकोसोमेटिक-शरीर और मन दोनों हैं, एक साथ। इन दोनों को बांटना संभव नहीं है। वे दो नहीं हैं बल्कि एक ही हैं।

इसलिए एक अच्छे समाज के लिए पहली चीज है कि एक खंडित मन निर्मित न करें, विभाजित मन पैदा न करें, क्योंकि पहला विभाजन शरीर और मन के बीच होता है, और तब दूसरे विभाजन आते हैं। आपने यदि एक बार विभाजन का मार्ग ले पकड़ लिया, तब फिर मन पुनः बांटा जाएगा, और शरीर भी फिर से बांटा जाएगा।

यह एक विचित्र तथ्य है। मुझे आश्चर्य है कि क्या आप भी यह अनुभव करते हैं कि आप शरीर और चेतन में बंटे हुए हैं? तब शरीर फिर बांटा जाता है ऊपर और नीचे में। तब फिर नीचे वाला बुरा है, और ऊपर वाला अच्छा है। कहां से ऊपर का हिस्सा और कहा से नीचे का हिस्सा शुरू होता है? हम कभी भी अपने नीचे के हिस्से के साथ आराम से नहीं होते-कभी भी नहीं। इसीलिए इतनी सारी मूर्खता कपड़ों के साथ प्रचलित है-इतनी सारी मूर्खता! हम नग्न नहीं हो सकते? क्यों? जिस क्षण भी आप नग्न होते हैं, शरीर एक हो जाता है।

हमारे पास दो तरह की पोशाकें हैं-एक नीचे के हिस्से के लिए, दूसरी ऊपर के लिए। कपड़ों का यह विभाजन आधारभूत शरीर के विभाजन से जुड़ा हुआ है। यदि आप नग्न खड़े हैं, तब आप कैसे विभाजन करेंगे कि कौन सा नीचे का हिस्सा है और कौन सा ऊपर का।

अतः जो लोग आदमी को बांटते हैं, वे आदमी की नग्नता के साथ राजी नहीं होंगे। यह केवल प्रारंभ है, क्योंकि भीतर और भी अधिक नग्नता है। यदि आप अपने शरीर से नंगे होने को भी तैयार नहीं हैं, तो आप अपनी भीतरी परतों के होने को भी तैयार नहीं हैं, तो आप अपनी भीतरी परतों के बारे में तो कभी भी सच्चे नहीं होंगे। हो भी कैसे सकते हैं आप? यदि आप अपने शरीर की नग्नता का भी सामना नहीं कर सकते, तो आप अपनी नग्न चेतना का सामना कैसे कर सकेंगे?

आत्मा पूजा भाग-१

प्रारंभ में एक बच्चा एक अखंडता लिए हुए पैदा होता है और वही बच्चा फिर एक भीड़ की तरह–एक समग्र पागलखाने की तरह मरता है। सब कहीं वह बंट जाता है और इन विभाजनों में एक सतत द्वंद्व, एक निरंतर संघर्ष चलता रहता है। ऊर्जा का उपव्यय होता है, और वस्तुत: आप कभी नहीं मरते; आप अपने को मारते हैं। हम सब आत्मघात करते हैं; क्योंकि यह ऊर्जा का अपव्यय ही है। इसलिए यह बड़ी मुश्किल से होता है कि एक आदमी मरता है–बहुत कम ऐसा होता है। प्रत्येक स्वयं को मारता है, धीमे-धीमे विष दे कर। उसके लिए भिन्न-भिन्न विधियां हैं–अलग-अलग तरकीबें हैं स्वयं को मारने की, किंतु प्रारंभ में सबके विभाजन ही है।

एक अच्छा समाज, एक नैतिक, समाज, एक धार्मिक समाज कभी अपने बच्चों को विभाजित करने की आज्ञा न देगा। परन्तु हम यह विभाजन कैसे उत्पन्न करते हैं? यह विभाजन कब आता है? मनोवैज्ञानिक को यह पता लग रहा है कि जिस क्षण बच्चा अपनी कामेंद्रिय को, अपने जनन के स्थान को स्पर्श करता है, विभाजन शुरू हो जाता है। जैसे ही बच्चा अपनी कामेंद्रिय को छेड़ता है, सारा समाज सजग हो जाता है कि कोई बुरी घटना होने वाली है। माता-पिता, भाई-बहन सारा परिवार इस बात के प्रति सजग हो जाता है। अपी आंखों से, अपने हाव-भाव से, अपने हाथों से, वे सब कहते हैं–नहीं, स्पर्श मत करो। बच्चा समझ ही नहीं पाता इस बात को। वह एक अखंडता है, चाहे लड़का चाहे लड़की। उसको यह बात समझ में नहीं आती कि वह अपने ही शरीर को क्यों नहीं छू सकता। उसमें गलत क्या है? वह नहीं जानता कि आदमी पाप में जन्मा है। वह बाइबिल को नहीं जानता, वह किसी धर्म को नहीं जानता। वह किसी गुरु को नहीं जानता, वह किसी महात्मा को नहीं जानता–संतों को भी नहीं। वह नहीं जान पाता कि क्यों शरीर का एक अंग अलग छोड़ दिया जाए।

समस्या और भी बड़ी हो जाती है, क्योंकि काम-केंद्र शरीर में सर्वाधिक संवेदनशील होते हैं, सर्वाधिक आनंद प्रदान करने वाला। बच्चे को उनके स्पर्श में आनंद का पहला अनुभव होता है। उसके जीवन का प्रथम अनुभव कि शरीर भी आनंद दे सकता है, या शरीर सुखद है, या शरीर का भी मूल्य है। आधुनिक मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि तीन महीने का बच्चा भी कामेंद्रिय का गहरे से गहरा अनुभव कर सकता है। वह अपनी कामेंद्रिय को शिखर तब अनुभव कर सकता है और इसमें सारा शरीर कांपने लग जाता है। यह उसके शरीर का प्रथम अनुभव है, परन्तु यही विषाक्त हो जाता है; क्योंकि माता-पिता उसे होने नहीं देते।

वे क्यों नहीं स्पर्श करने देते? क्योंकि उन्हें स्वयं ऐसा नहीं करने दिया गया। उसके लिए कोई न्याययुक्त कारण नहीं है। इसके साथ ही शरीर बंट जाता है, और मन व शरीर भी बंट जाते हैं बच्चा डर जाता है, भयभीत हो जाता है और उसमें दोष का भाव पैदा हो जाता है। वह छूएंगा, परन्तु छिपाकर। हमने एक छोटे बच्चे को अपराधी बना दिया। वह उसे करेगा, क्योंकि वह प्राकृतिक है; किंतु अब वह डरा हुआ रहेगा कि कहीं कोई देख तो नहीं रहा है, कि कहीं मां तो नहीं है! यदि कोई नहीं है तो वह छूएंगा, परन्तु यह चोरी से किया गया स्पर्श उतना आनंद नहीं देगा, जितनी कि यह दे सकता था। मन में अपराध का भाव जो आ गया। वह डरा हुआ है, वह भयभीत है। यही भय सारे जीवन भर चलता है।

विश्व में कोई भी अपने यौन-अनुभव से संतुष्ट नहीं है। भय चलता है, इसलिए वह बार-बार यौन क्रिया में आएगा, किंतु वह कभी भी तृप्ति का अनुभव नहीं करेगा और न वह उसमें गहरा आनंद ही कभी महसूस करेगा। क्योंकि वह असंभव बना दिया गया है। आपने जड़ को ही विषाक्त कर दिया। अब वह स्वयं को अपराधी महसूस करेगा।

हम सेक्स के कारण ही अपने को दोषी मानते हैं। हम सेक्स के कारण ही पापी हैं। आपने ही यह मूल विभाजन पैदा किया है कि शरीर में आपको चुनाव करना है। कुछ अंग अच्छे हैं, कुछ अंग खराब हैं। क्या

बेवकूफी है! या तो सारा शरीर अच्छा है, या सारा शरीर बुरा है, क्योंकि शरीर में कुछ भी पृथक नहीं है। वही खून सारे शरीर में घूमता है, वही नसों की प्रक्रिया है। सब कुछ भीतर से एक है, तब फिर बच्चे के लिए ही विभाजन क्यों? आपने उसके प्रथम आनंद को ही विषाक्त कर दिया। अब वह कभी आनंद का अनुभव नहीं करेगा।

मेरे पास रोज लोग आते हैं और मैं जानता हूं कि उनकी मूल समस्या ध्यान नहीं है, उनकी मूल समस्या धर्म नहीं है, उनकी मूल समस्या सेक्स है। मैं इस पर बहुत लाचार महसूस करता हूं कि उनकी मदद कैसे की जाए, क्योंकि यदि मैं वस्तुत: ही उनसे बात करना चाहूं, तो फिर वे दोबारा मेरे पास नहीं आएंगे। वे मुझसे डर जाएंगे; क्योंकि वे यौन से डरे हैं। यौन की तो बात ही नहीं की जानी चाहिए! परमात्मा की बात करो, कुछ और बातें करो। उसकी समस्या परमात्मा की नहीं है। यदि समस्या परमात्मा की हो, तो आसानी से उनकी मदद की जा सकती है, परन्तु वह तो समस्या ही नहीं है। उनकी आधारभूत समस्या तो सेक्स होती है, और वे किसी भी चीज का आनंद नहीं ले सकते, क्योंकि वे तो उस पहली भेंट का ही आनंद नहीं ले सके जो कि उन्हें प्रकृति द्वारा, दिव्य शक्तियां द्वारा दी गई थी। उनके पास आनंद की वह पहली अनुभूति ही नहीं है, इसलिए वे आनंद नहीं ले सकते।

मैंने कितनी ही बार अनुभव किया है कि एक व्यक्ति, जो कि सेक्स का आनंद नहीं ले सकता, वह ध्यान में गहरे नहीं जा सकता; क्योंकि जब कभी आनंद की अनुभूति होती है, वह डर जाता है। यह संबंध गहरा हो जाता है। इसके लिए आपने बाधा निर्मित की है। अब आप मन को भी बांटेंगे, क्योंकि मन से सेक्स का हिस्सा स्वीकार नहीं किया जा सकता सेक्स शरीर व मन दोनों का है। प्रत्येक चीज दोनों में है। आप में दोनों है। इसे सदैव यार रखें। सेक्स शरीर व मन दोनों में है। और सेक्स का मन का हिस्सा दबाया ही जाना चाहिए, तो यह दबाया गया हिस्सा ही अचेतन बन जाएगा। जो शक्तियां, विचार, धारणाएं, नैतिक उपदेश आदि उसे दबाएंगे, वे उससे अर्धचेतन का निर्माण करेंगे। एक बहुत छोटा सा हिस्सा मन का आपके पास होगा, एक बहुत छोटा सा हिस्सा चेतन होगा, जो कि रोजाना के काम के लिए होगा और वह कोई और काम नहीं आएगा।

कम से कम वह गहरे जीने के उपयोग में तो नहीं हो आएगा। आप जी सकते हैं, बस इतना ही काफी है। आप खा सकते हैं, आप कमा सकते हैं, आप मकान बना सकते हैं, परन्तु आप जीवन को नहीं जान सकते, क्योंकि मन के दस में से नौ हिस्से को तो मना ही कर दिया गया। आप कभी भी समग्र नहीं हो सकते, और केवल एक समग्र आदमी ही पवित्र हो सकता है। जब तक कि आप समग्र नहीं हैं, आप पवित्र नहीं हो सकते।

अत: पहली आधारभूत बात जो कि एक नए समाज, एक अच्छे समाज, एक धार्मिक समाज के निर्माण के लिए करनी है, वह है विभाजनों का निषेध। यही–विभाजन पैदा करना सबसे बड़ा पाप है। बच्चे को एक युनिटी, एक इकाई की भांति बढ़ने दो। उसे सब चीजों के साथ, उनमें एक अनुरूपता, एक एकता की तरह जो कि उसके भीतर है, बढ़ने दो। जल्दी ही वह सब का अतिक्रमण कर सकेगा, वह सेक्स। का अतिक्रमण कर सकेगा; वह अपनी वृत्तियों के पार जा सकेगा। वह उन सब के पार जा सकेगा एक इकाई की तरह, न कि विभक्त की तरह, यही बात है। वह उनका अतिक्रमण कर सकेगा, क्योंकि वह समग्र है–इतना शक्तियुक्त, इतना अविभक्त ऐक्य कि वह किसी भी चीज का अतिक्रमण कर सकता है।

जो कुछ भी रोग हो जाता है, वह उसे फेंक सकता है। जो कुछ भी मानसिक क्लेश हो जाते है, वह उसे फेंक सकता है।

वह शक्तिशाली है। एक अविभाजित एकता ही एक बहुत बड़ी ऊर्जा है। उससे वह कुछ भी बदल सकता है। परन्तु एक बंटा हुआ बच्चा कुछ भी नहीं कर सकता। वास्तव में, एक विभाजित बच्चे में, चेतन मन का एक बहुत छोटा हिस्सा रहता है और अचेतन मन का बहुत बड़ा। सारे जीवन, एक बंटा हुआ बच्चा, एक बहुत छोटी ऊर्जा के साथ एक बहुत बड़ी चाह से लड़ रहा होता है। इसलिए उसे लगातार हारना पड़ेगा और तब वह निराशा का अनुभव करेगा। और तब वह कहेगा—ठीक है; यह संसार केवल एक दु:ख है।

यह संसार दु:ख नहीं है—यह भलीभांति ध्यान रख लें। आप विभाजित हैं, इसलिए आप इस दुनिया में दु:ख का निर्माण कर लेते हैं। आप अपने से ही लड़ रहे हैं, इसलिए आप दु:खी हो जाते हैं। अत: पहली बात, विभाजन पैदा न करें। बच्चे बढ़ने दें, जैसा वह बढ़ सके। दूसरी बात, बच्चे को बजाय सख्त रुखों से अधिक लचीलेपन के लिए प्रशिक्षित करें—केवल लचीले पन के लिए। उसे सख्त, सब तरफ से बंद घर में प्रशिक्षित न करें। कभी न कहें कि यह अच्छा है और वह बुरा है, क्योंकि जीवन में यह एक प्रवाह है। एक वस्तु, जो इस क्षण में अच्छी है, वही दूसरे क्षण बुरी हो जाएंगी और जो चीज इस स्थिति में बुरी है, वह दूसरी स्थिति में अच्छी हो जाएगी। अतएव उसे नैतिक शास्त्र या धर्म शास्त्र की बंधी कसौटी न देकर खुली कसौटी दें—विवेक की।

बच्चे को अधिक सजग रहने के लिए प्रशिक्षित करें, जानने के लिए कि वस्तुत: बात क्या है। यह न कहें कि एक मुसलमान बुरा है, क्योंकि वह मुसलमान है। एक हिंदू अच्छा है, क्योंकि वह हिंदू है। ऐसी बातें कभी न कहें, क्योंकि अच्छी और बुरी बातें ठहरी हुई नहीं हैं। पक्के, सख्त विशेषण न दें। उसे प्रशिक्षण दें कि स्वयं पता लगाए कि कौन अच्छा है, कौन बुरा है। परन्तु यह बहुत कठिन है, क्योंकि नाम देना बहुत सरल है। आप नाम, लेबल व विभाजित खंडों के साथ जीते हैं। आप किसी को भी एक मापदंड में रख देते हैं—ठीक है। वह हिंदू है; वह अच्छा है या बुरा है। वह मुसलमान है; वह अच्छा या वह बुरा है। बात तय हो जाती है बिना व्यक्ति को देखे हुए। लेबल ही तय कर देता है। अत: कोई भी निश्‍चित विशेषण न दें। तरल सजगता दें। नहीं न कहें कि यह ठीक है; न कहें, यह बुरा है। इतना ही सिखलाएं कि उसे सतत खोजना पड़े कि क्या अच्छा है और क्या बुरा है। दिमाग को प्रशिक्षित करें कि खोज करे, जाने। यही विवेक है।

इस रुख के लचीलेपन के बहुत से आयाम हैं। बच्चे को एक तरह के मोनोगैमस (एक से प्रेम करने वाले) रुखों में जड़ न करें। बच्चे को न कहें—मुझे प्रेम करो, क्योंकि मैं तुम्हारी मां हूं। इससे बच्चे में असमर्थता पैदा हो जाएंगी और इससे फिर वह किसी को भी प्यार नहीं कर सकेगा। इससे फिर ऐसा होता है कि प्रौढ़ बच्चे (मैं बूढ़ों को भी प्रौढ़ हो गए बच्चे कहता हूं) बाद में भी बंधे हुए ही रहते हैं। आप अपनी पत्नी से प्रेम नहीं कर सकते, क्योंकि बहुत गहरे में भीतर आप केवल अपनी मां को ही प्रेम कर सकते हैं। आपकी मां आपकी पत्नी नहीं हो सकती, और आप मां के साथ ही अभी भी बंधे रहते हैं। आप अभी भी उन्हीं बातों की अपेक्षा करते हैं पत्नी से जैसे कि वह आपकी पत्नी न होकर आपकी मां हो, यद्यपि सचेतन रूप से नहीं। यदि वह मां की तरह व्यवहार नहीं करे तो आप बेचैन रहेंगे। समस्या और भी जटिल हो जाती है, क्योंकि यदि वह आपकी मां की तरह से व्यवहार करे, तब भी आप संतुष्ट नहीं होंगे। उसे आपकी पत्नी भी होना चाहिए।

एक मां को यह कभी नहीं कहना चाहिए मुझे प्रेम करो, क्योंकि मैं तुम्हारी मां हूं। उसे अपने बच्चे को अधिक से अधिक लोगों को प्रेम करना सिखलाना चाहिए। बच्चा जितना पोलीगेमस (एक से अधिक को प्रेम करने वाला) होगा, उतनी ही उसकी जिंदगी भरी-पूरी होगी। वह कभी रुका हुआ, जड़ महसूस नहीं करेगा और जहां भी जाएगा, वह प्रेम कर सकेगा। उससे नहीं कहें कि मां को प्यार करना चाहिए, बहन को प्यार

करना चाहिए, भाई को प्रेम करना चाहिए। उससे नहीं कहें कि चूंकि कोई अजनबी है इसलिए उससे तुम प्रेम मत करा। वह हमारे परिवार से संबंधित नहीं है, वह हमारे धर्म का नहीं है, वह अपने देश का नहीं है, इसलिए उससे प्रेम मत करो। यदि ऐसा कहेंगे, तो आप बच्चे को अपंग बना रहे हैं।

उससे कहें कि प्रेम करना एक आनंद है, इसलिए प्रेम करते चले जाओ। जितना तुम प्रेम करोगे, तुम बढ़ते चले जाओगे। एक व्यक्ति जो कि अधिक प्रेम कर सकता है, वह बढ़ता चला जाता है, संपन्न होता जाता है। हम सब गरीब हैं, हम सब दरिद्र हैं, क्योंकि हम प्रेम ही नहीं कर सकते। यह एक तथ्य है। यदि आप अधिक से अधिक लोगों को प्रेम करते हैं, तो आप किसी को भी प्रेम करने में समर्थ हो जाते हैं। यदि आप केवल एक व्यक्ति को ही प्रेम करें, तो अंत में आप उसे भी प्रेम नहीं कर सकेंगे। क्योंकि तब आपकी प्रेम करने की क्षमता ही संकीर्ण हो जाएगी, जम जाएगी। यह ऐसा ही है जैसे कि हम किसी वृक्ष से कहें—सारी जड़ों को काट दो, और केवल एक जड़ को रहने दो। यदि आप वृक्ष से कहें—केवल यही तुम्हारा प्रेय है, इसी जड़ से सारा प्रेम पा लो, तो वृक्ष मरने लगता है।

हमने एक मोनोगेमस माइंड (एक को प्रेम करने वाले चित्त) का निर्माण किया है। इसीलिए इतनी लड़ाइयां हैं, इतनी निर्दयता है, इतनी हिंसा है, कितने ही नामों में—रूपों में—धर्म, राजनीति, आदर्श; कोई भी मूर्खता चलेगी। आप सदैव कोई न कोई कारण हिंसक होने के लिए ढूंढ़ ही लेते हैं। और तब देखें लोग कैसे हो जाते हैं। उनकी आंखें चमक उठती हैं जब भी युद्ध होता है। प्रत्येक व्यक्ति मरने के भय से स्वतंत्र हो जाता है, अतः जब आप किसी को भी मार सकते हैं। आपको बड़ा रस आता है। जब भी आप किसी को मारते हैं।

जब आप किसी को प्रेम करते हैं, तो आपको कभी आनंद नहीं आता। जाएं और देखें बंगला देश में। जाएं और देखें जहां कि बहुत से लोग मरे हों और चखें उस रस को। जब कोई हिंसा शेष न हो, तो देखें लंगड़ेपन को, अपंगता को, मुर्झाई आंखों को। कोई भी निर्मल सरिता की भांति नहीं लगेगा। एक अर्थ हीनता लगता है। किसी को भी किसी को मारने के लिए तैयार करो और हर एक जिंदा हो जाता है। क्यों?

हमने प्रेम करने की क्षमता को ही नष्ट कर दिया है, इसलिए। एक बच्चा किसी को भी प्रेम कर सकने में समर्थन है। एक बच्चा सारे विश्व को प्रेम करने के लिए पैदा हुआ है। एक बच्चा हर चीज को प्रेम करने के लिए पैदा हुआ है, एक बच्चा सारे जगत को प्रेम करने के लिए उत्पन्न हुआ है—इतनी विराट क्षमता है, उसमें, किंतु यदि आप उसे संकीर्ण कर देते हैं, तो वह बच्चा उसी क्षण से मरना प्रारंभ कर देता है।

परन्तु यह मोनोगेमी (संकीर्णता) क्यों है? यह स्वामित्व का रुख क्यों है? यह दुष्चक्र है। मां स्वयं तृप्त नहीं है। उससे प्रेम नहीं किया गया, उसे प्रेम नहीं मिला, इसलिए वह अपने बच्चे की मालिक बन जाती है। वह चाहेगी कि बच्चे का संपूर्ण प्रेम उसी के लिए हो। वह कहीं और न जाए। उसे सारी प्रारंभ जड़ें काट डालनी पड़ेंगी। ताकि बच्चा पूर्णतः उसी का रहे। यह हिंसा है, प्रेम नहीं। मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि प्रारंभ के सात वर्ष जीवन के आधार स्तंभ के होते हैं। एक बार एक बात हो गई फिर उसे मिटाना असंभव हो जाता है, वस्तुतः असंभव, क्योंकि मूल ढांचा ही बच्चे की नींव बन जाता है। अब वह सब कुछ इसी ढांचे पर करेगा। यह ढांचा उसकी जिंदगी का आधार-स्तंभ हो गया। इसलिए प्रत्येक को इजाजत दो कि मालिक न बने, अधिक से अधिक प्रेम करे—बिना किसी शर्त के, बिना किसी आग्रह के।

इसका यह अर्थ नहीं होता कि कोई व्यक्ति प्रेम करने योग्य है इसलिए उसे प्रेम किया जाए। बल्कि जोर इस बात पर होना चाहिए। कि आप उसे बस प्रेम करें। प्रेम अपने में ही सुंदर है और बहुत गहरी तृप्ति देने वाला है, इसलिए प्रेम करें—जो कुछ भी आपको महसूस होता हो, जहां कहां भी होता हो। यह प्रेम का बहना ही

आत्मा पूजा भाग-१

आपको बृहत्तर जीवन के बारे में सचेतन करोगे, और वह बृहत्तर जीवन ही आपको परमात्मा की ओर, दिव्यता की ओर ले जाएगा।

प्रेम ही प्रार्थना के लिए आधार-भूमि है। जब तक कि आपे संपूर्णता से प्रेम नहीं किया हो, आप कृतज्ञता कैसे महसूस कर सकते हैं? किसके लिए आप कृतज्ञ हो सकते हैं? क्या है जिसके लिए अनुग्रह-भावना से भर जाएं? अगर तुम्हारे पास प्रेम ही नहीं है तो फिर क्या है जिसके लिए परमात्मा के प्रति धन्यवाद से भर जाएं? अत: जीवन नींव है, प्रेम शिखर है और यदि आपने प्रेम किया है, तो अचानक आप प्रेम से भरे संसार के प्रति सजग हो जाते हैं। यदि आपने प्रेम नहीं किया है, तो सब जगह घृणा है, ईर्ष्या है। परन्तु अब तक सारा जोर इसी बात पर रहा है कि हमें प्रेम मिले। इसलिए हर एक आदमी विषाद का अनुभव करता है, जब उसे प्रेम नहीं मिलता। और किसी को भी विषाद भाव महसूस नहीं होता, अब वह प्रेम नहीं दे रहा हो।

वस्तुत: जोर इस बात पर होना चाहिए कि आप स्वयं ही प्रेम दें, न कि प्रेम पाने पर। प्रत्येक इस प्रयास में लगा हुआ है कि कहीं से भी प्रेम को छीन ले। ऐसा नहीं हो सकता। आप सिर्फ दे सकते हैं; आप केवल देते रह सकते हैं। और जीवन इतना बेरुखा नहीं है यदि आप देते हैं, तो जीवन हजार गुना लौटा है। परन्तु आप उसके लौटने से मतलब न रखें, आप सिर्फ देते जाएं।

अत: हर एक बच्चे को अधिकाधिक प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए प्रेम देने के लिए—और गणित, हिसाब, भूगोल, इतिहास की शिक्षा कम। उसे प्रेम में ज्यादा प्रशिक्षित किया जाना चाहिए, क्योंकि भूगोल शिखर होने वाला नहीं है, और न गणित शिखर होने वाला है, न ही इतिहास या तकनीकी ज्ञान ही शिखर होने वाला है। किसी के साथ भी प्रेम की तुलना नहीं की जा कसती, क्योंकि प्रेम ही शिखर होने वाला है। यदि आप प्रेम को चूक जाते हैं, तो सब कुछ खोजता है। तब फिर आपका जीवन केवल शून्य होता है—एक बर्बादी, एक रिक्तता। और तब चिंता पैदा होती है।

इसलिए दूसरी बात: प्रेम को खूब गहरा खूब गहरा खुदने दो। एक बच्चे का। एक भी ऐसा मौका व्यर्थ मत जाने दो, जो कि उसे प्रेम की ओर अग्रसर करता हो। परन्तु हमारा ढांचा इसके लिए आज्ञा नहीं देगा, क्योंकि हम डरे हुए हैं। क्योंकि जब एक व्यक्ति अधिकाधिक व्यक्तियों या वस्तुओं से प्रेम करेगा, तो फिर विवाह का क्या होगा? इसका और उसका क्या होगा? हम चिंतित हो जाते हैं। वास्तव में, हम यह कभी नहीं सोचते कि विवाह में क्या घटित हो रहा है।

विवाह आज क्या है, और विवाह हमेशा से क्या रहा है? यह एक दर्दनाक वेदना है—एक लंबी वेदना—झूठे मुस्कुराते हुए चेहरों की प्रदर्शनी। वह सिर्फ एक दु:ख साबित हुआ है। ज्यादा से ज्यादा वह एक खाली सुविधा बना है। मेरा मतलब यह नहीं है कि जब आप अधिक लोगों से प्रेम करेंगे, तो आप विवाह नहीं करेंगे। जहां तक मैं सोचता हूं एक व्यक्ति जो कि अधिक से अधिक लोगों को प्रेम करेगा, वह प्रेम के कारण ही विवाह नहीं करेगा। कृपया मुझे समझें।

यदि कोई व्यक्ति बहुत व्यक्तियों को प्रेम करता है तो कोई कारण नहीं है कि वह किसी व्यक्ति विशेष से ही विवाह करे सिर्फ प्रेम के कारण। वह बहुत लोगों को बिना विवाह किए प्रेम कर सकता हैं। हमने प्रत्येक को विवाह करने के लिए बाध्य किया, इस संकीर्ण प्रेम के कारण। चूंकि आप अजनबी लोगों से प्रेम नहीं कर सकते, इसलिए आपने जबरदस्ती प्रेम और विवाह को एक साथ जोड़ दिया। विवाह गहरी चीजों के लिए होते हैं। वह एक और भी गहरा संबंध है। वह किसी ऐसे प्रयोजन के लिए हैं जोकि अकेले संभव नहीं है और जो कि किसी अन्य के साथ ही किया जाना चाहिए—जिसके लिए कि साथ की आवश्यकता है—एक गहरे संग की। इस प्रेम के भूखे समाज के कारण हम विवाह में पड़ते हैं एक कोरे काल्पनिक प्रेम के लिए।

प्रेम, विवाह के लिए कभी भी वस्तुतः एक बड़ा आधार नहीं बन सकता, क्योंकि प्रेम एक खेल और एक आनंद है। यदि आप किसी से प्रेम के कारण विवाह करते हैं, तो आपको जल्दी ही निराशा की अनुभूति होने लगेगी, क्योंकि खेल शीघ्र ही खत्म हो जाएगा, नयापन जल्दी ही विलीन हो जाएगा और ऊब आ जाएगी। विवाह तो एक गहरी मित्रता है—एक गहरी अखंडता। प्रेम उसमें होता ही है, लेकिन अकेला प्रेम ही नहीं होता इसलिए विवाह आध्यात्मिक है। उसमें आत्म प्रसार की इच्छा भी शामिल है। बहुत चीजें हैं जो कि आप अकेले नहीं बढ़ा सकते, विवाह उन्हीं बातों के लिए है। वह आपकी एक बड़ी आवश्यकता के लिए है कि कोई प्रतिसंवेदन करे—कोई इतना, इतना खुला हो कि आप अपने को पूर्णतः उसे सौंप सकें।

विवाह यौन संबंध बिलकुल नहीं होता। हमने उसे जबरदस्ती यौन संबंध बना दिया है। सेक्स हो सकता है उसमें, नहीं भी हो सकता है। विवाह तो गहरी आध्यात्मिक मैत्री है। और यदि ऐसा विवाह होता है, तो हम एक भिन्न ही प्रकार की आत्मा को जन्म देते हैं—एक बहुत गुणात्मक रूप से भिन्न आत्मा को। इस प्रकार की मैत्री से जो बच्चा उत्पन्न होता है, उसका आधार आध्यात्मिक हो सकता है। परन्तु हमारे विवाह तो खाली यौन-संबंध है—मात्र एक सेक्स तृप्ति की व्यवस्था। और इस व्यवस्था में क्या पैदा हो सकता है? या तो हमारे विवाह यौन-क्रिया के लिए इंतजाम होते हैं अथवा वे क्षणिक रोमांटिक प्यार में निकलते हैं और ऊब में समाप्त होते हैं।

वस्तुतः रोमांटिक (काल्पनिक) प्रेम रुग्ण होता है, क्योंकि आप बहुत लोगों को वैसा प्रेम नहीं कर सकते। अतः आप प्रेम करने की क्षमता इकट्ठी करते चले जाते हैं—संचय करते चले जाते हैं। जब आप उससे बुरी तरह भर जाते हैं, तब, जब कभी भी आपको कोई मिलता है और अवसर मिलता है तो वह जो बुरी तरह भर गया प्यार है प्रक्षेपित होता है। एक साधारण सी स्त्री देवी दिखलाई पड़ती है। एक साधारण सा पुरुष दिव्य हो जाता है, दिव्य मालूम पड़ता है—परमात्मा की तरह। परन्तु जब वह प्रवाह चला जाता है और आप सामान्य हो जाते हैं, तब आपको पता चलता है कि आप धो खा गए, और वह तो एक साधारण सा आदमी है, या कि वह एक साधारण सी स्त्री है।

यह रोमांटिक पागलपन हमारे मोनोगेमस सिस्टम के कारण निर्मित होता है। यदि एक व्यक्ति को प्रेम करने दिया जाए, तो वह तनाव इकट्ठे नहीं करता। जिन्हें कि प्रक्षेपित करना पड़े। रोमांस केवल एक बहुत रुग्ण समाज में ही संभव है। वास्तव में, एक बहुत स्वस्थ समाज में कोई रोमांस नहीं होगा। प्रेम होगा, परन्तु रोमांस (उत्तेजना) नहीं। और यदि कोई रोमांस नहीं होगा, तो विवाह एक गहरे तल पर होगा और वह कभी भी निराशाजनक नहीं होगा। और यदि विवाह केवल प्रेम के कारण नहीं है वरन एक और अधिक गहरे संग के लिए है, मैं तू के गहरे संबंध के लिए है ताकि आप दोनों बढ़ सकें मैं की तरह नहीं बल्कि हम की भांति, तब विवाह सचमुच एक प्रशिक्षण बन जाता है अहं-शून्यता के लिए। परन्तु हम इस तरह के विवाह के बारे में कुछ भी नहीं जानते। जो कुछ भी हम जानते हैं वह सिर्फ एक कुरूपता है, सिर्फ पूतें हुए चेहरे हैं और भीतर सब कुछ मृत है।

और अंततः एक बच्चे को विधायक रूप से प्रशिक्षित किया जाना चाहिए न कि निषेधात्मक ढंग से। हर चीज में एक विधायक जोर होना चाहिए। तभी एक बच्चा बढ़ सकता है, तभी वस्तुतः वह एक व्यक्ति हो सकता है। यही मेरा मतलब है विधायक जोर से। हमारा जोर हमेशा निषेधात्मक होता है। मैं कहता हूं—मैं किसी एक को प्रेम कर सकता हूं, किंतु मैं सबको प्रेम नहीं कर सकता। यह निषेधात्मक प्रशिक्षण है। इसके विपरीत मैं यह कहने में समर्थ होऊं—मैं सबको प्रेम कर सकता हूं, सिर्फ इस एक कोई नहीं। प्रेम करने की क्षमता बहुतों के लिए होनी चाहिए। सचमुच, कुछ व्यक्ति होते हैं जिन्हें कि आप प्रेम नहीं कर सकते, अतः

उन्हें प्रेम करने के लिए स्वयं को बाध्य न करें। परन्तु आपका जोर तो अभी इस बात पर है कि मैं केवल एक को प्रेम कर सकता हूं!

मजनू ने कहा—मजनू केवल लैला को प्रेम करता हूं। मैं किसी और को प्रेम नहीं कर सकता। यह निषेधात्मक है। सारे संसार को वर्जित कर दिया गया। एक विधायक रुख यह होगा: विधायक रूप से मैं इस एक को प्रेम नहीं कर सकता, परन्तु मैं सारे विश्‍व को प्रेम कर सकता हूं। सभी आयामों में वे क्षेत्रों में सदैव अधिक ज्यादा विधायकता के लिए सोचें। यदि मैं अपने रुखों में निषेधात्मक हूं, तो फिर मैं अपने ही निषेधों से घिरा हुआ हूं और मैं सब जगह निषेध ही देखता हूं। यह आदमी अच्छा नहीं है, क्योंकि यह झूठ बोलता है। किंतु यदि वह झूठ भी बोलता है फिर भी वह केवल झूठ ही तो नहीं है। क्यों नहीं और अधिक विधायक अंग की और देखें? क्यों बहुत जोर से झूठों के लिए ही चिंतित हों? और हम कहते हैं कि—वह आदमी चोर है। यदि वह आदमी चोर भी है, तो भी वह उससे कुछ अधिक ही है। एक चोर में भी अच्छे गुण हो सकते हैं। और वास्तव में उसमें होते हैं, क्योंकि बिना कुछ गुणों के आप चोर भी नहीं हो सकते। अत: क्यों नहीं हम उसके अच्छे गुणों की परवाह करते?

एक चोर साहसी होता है, इसलिए क्यों नहीं हम उसके साहस की सराहना करें? क्यों नहीं उसके साहस को प्रेम करें? यहां तक कि जो आदमी झूठ बोलता है, बुद्धिमान होता है। यदि आप बुद्धिमान नहीं हैं, तो आप झूठ नहीं बोल सकते। झूठ को बहुत गहरी बुद्धि की आवश्‍यकता पड़ती है, जिसकी सच को नहीं होती। आप मूर्ख हैं, इसीलिए आप सच बोलते रह सकते हैं। परन्तु झूठ बोलने के लिए आपको चतुराई व एक विस्तृत चेतना की आवश्‍यकता पड़ती है। यदि आप एक झूठ बोलती हैं, तो आपको एक सौ झूठ बोलना पड़ता है। तब आपको उन सब को याद रखना पड़ेगा। अत: क्यों नहीं विधायक गुणों की ही चिंता की जाए? निषेध पर ही जोर क्यों हो?

परन्तु हमारे समाज ने निषेधात्मक चित्त निर्मित किए हैं। और आप यह निषेधात्मक प्रत्येक में पा सकते हो। यह होगी ही, क्योंकि जीवन खाली विधायकताओं पर अवलबिंत नहीं हो सकता। इसलिए निषेध भी हैं, और यदि आप बच्चों को निषेध के लिए ही तैयार करते हैं तो वे अपने सारे जीवन निषेध की ही दुनिया में जीएंगे; प्रत्येक बुरा हो जाएगा। और जब प्रत्येक बुरा होगा, तो आप अहंमन्य अनुभव करेंगे। तब केवल आप ही अच्छे होंगे।

हम अपने बच्चों को हर चीज में बुराई ढूंढ़ने के लिए तैयार करते हैं। वे अच्छे होने की कोशिश करते हैं। हम उन्हें अच्छे होने के लिए जोर देते हैं और यह महसूस करने के लिए कि बाकी सब बुरे हैं। परन्तु कैसे कोई एक बुरे संसार में अच्छा हो सकता है? यह संभव नहीं है। आप केवल एक अच्छे संसार में ही अच्छे हो सकते हैं। इसलिए एक अच्छा समाज केवल एक विधायक मन से ही निर्मित हो सकता है। अत:, मन की विधायक स्थिति लाओ। और यहां तक कि कुछ नकारात्मक भी हो, तो भी उसमें भी सदैव कुछ विधायक देखो। वह वहां होगा हो। और यदि बच्चा विधायक को देखने में समर्थ हो जाए—निषेधात्मक में भी, तो आपने उसे कुछ दिया वह प्रसन्न होगा।

आपने उसे एक निषेधात्मक चित्त दिया है। और यदि वह विधायक में भी निषेध देखने में समक्ष हो जाए, तो समझ लीजिए आपने उसके लिए नरक निर्मित कर दिया। सारी जिंदगी वह नर्क में रहेगा। स्वर्ग तो विधायक जगत में जीने में ही है। निषेधात्मक जगत में तो केवल नर्क है।

यह सारा जगत एक नर्क हो गया है निषेधात्मक चित्त के कारण। मां अपने बच्चे से नहीं कह सकती कि वह स्त्री सुंदर है। कैसे हो सकता है यह? केवल वह स्वयं ही सुंदर है; कोई और नहीं। एक पति अपनी पत्नी से नहीं कह सकता, उस स्त्री की ओर देखो जो कि सड़क पर जा रही है, कितनी सुंदर है वह! वह ऐसा नहीं

कह सकता। वह कहता है, परन्तु अपने भीतर ही। और यदि पत्नी साथ है तो वह भीतर भी कहने में डरेगा। एक पति जो कि अपनी स्त्री के साथ जा रहा हो, तो इधर-उधर देखने में भी डरा है। वह नहीं देख सकता। इसलिए वह कभी अपनी पत्नी के साथ जाने में खुश नहीं होता। यह एक ऐसा नर्क है! यदि कोई सुंदर है, तो हम वैसा कह क्यों नहीं सकते?

एक मां अपने बच्चे की बात ही नहीं सुन सकती, यदि वह यह कह रहा हो कि कोई सुंदर है। वह तो महसूस करेगी कि सिर्फ वह ही सुंदर है, और सारा जगत कुरूप है। और अंततः बच्चा यह महसूस करेगा कि उसकी मां। सर्वाधिक कुरूप है, अतः कैसे आप एक कुरूप संसार में सुंदरता के दर्शन कर सकते हैं? इसीलिए एक पिता, एक शिक्षक जो सदा यही कहे चले जाते हैं कि केवल मैं ही सत्य का मालिक हूं बच्चे की श्रद्धा नहीं पा सकते।

कोई महिला दो दिन पहले ही यहां आई और उसने मुझसे कहा—मैं भी आपको सुनना चाहती हूं, परन्तु मेरा गुरु कहता है कि यह पाप है। तुम मेरी हो, तो फिर तुम कहीं और कैसे जा सकती हो? और जब मैं तुम्हें सत्य दे सकता हूं, तो क्या जरूरत है कहीं और जाने की? जल्दी या देर से यह गुरु गुरु नहीं रहेगा, यह शिक्षक नहीं रह पाएगा, क्योंकि वह निषेध की शिक्षा दे रहा है। और यही निषेध एक दिन अंततः इस पर लौटने वाला है।

झेन में, गुरु अपने शिष्यों को दूसरों के पास, अपने विरोधियों के पास भेजेंगे। कोई एक गुरु के पास करीब एक अर्थ रहेगा, तब गुरु उसे कहेगा—अब तुम मेरे विरोधी के पास जाओ। कुछ मैंने बतलाया, परन्तु शेष यह बतला सकता है—वह जो दूसरा हिस्सा है। इसलिए तुम जाओ।

यह गुरु सदा गुरु की तरह स्मरण किया जाएगा। आप उसका कभी निरादर नहीं कर सकते। आप कैसे निरादर कर सकते हैं? वह आपको विरोधी के पास भेजता है—दूसरे हिस्से का पता लगाने के लिए।

मैंने आपको कुछ कहा, परन्तु यह पूर्ण तो नहीं है और पूर्ण को कोई नहीं कह सकता, क्योंकि पूर्ण इतना विराट है। अतः विधायक रुख निर्मित करो और एक ज्यादा अच्छा संसार उसमें से उदित होगा। किंतु ये बहुत प्राथमिक बातें हैं; यह बहुत ही जटिल विषय है। अतएव हम इस पर फिर कभी बात करेंगे।

आज के लिए इतना ही।

बंबई, दिनांक २० फरवरी १९७२, रात्रि